ॐ नमः ।

प्रस्तावना ।

जासके मुखारविन्दतें प्रकाश भास वृंद,
स्याद्वाद जैनवैन इंद कुंदकुंदसे ।
तासके अभ्यासतें विकास भेदज्ञान होत,
मूढ सो लखै नहीं कुबुद्धि कुंदकुंदसे ॥
देत हैं अशीस शीस नाय इंद चंद जाहि,
मोह मार खंड मारतंड कुंदकुंदसे ।
विशुद्धि बुद्धि वृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धि सिद्धिदा,
हुए न हैं न होहिंगे मुनिंद कुंदकुंदसे ॥
(कविवर वृन्दावन)

आजसे २४३१ वर्ष पहिले अर्थात् सन् ईसवी से ५२७ वर्ष पहिले इस भारत वर्षकी पुण्यभूमिमें विपुलाचल पर्वतपर जगत्पूज्य परमभट्टारक भगवान् श्री १००८ महावीर (वर्द्धमान) स्वामी मोक्षमार्गका प्रकाश करनेकेलिये समस्त पदार्थोंका स्वरूप अपनी सातिशय दिव्यध्वनिद्वारा प्रगट करते थे । उस समय निकटवर्ती अगणित ऋषि मुनियोंद्वारा वंदनीय सप्तऋद्धि और चार ज्ञानके धारक श्रीगौतम (इन्द्रभूति) नामा गणधर देव भगवद्भाषित समस्त अर्थको धारण करके द्वादशांग श्रुतरूप रचना करते थे श्रीवर्द्धमानस्वामीके मोक्ष पधारनेके पश्चात् उक्त गौतम स्वामी १ सुधर्माचार्य २ और जम्बूस्वामी ३ ये तीन केवलज्ञानी हुये सो ६२ वर्ष पर्यन्त श्रीवर्धमान तीर्थंकर भगवान्के समान ही मोक्षमार्गकी यथार्थ प्ररूपणा (उपदेश) करते रहे । इनके पश्चात् क्रमसे विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्धन ४ और भद्रबाहु ५ ये पांच श्रुतकेवली द्वादशांगके पारगामी हुये इन्होंने एकसौ वर्षपर्यन्त केवली भगवानके समान ही यथार्थ मोक्षमार्गका उपदेश किया-इनके पश्चात् विशाखाचार्य १ प्रौष्ठिलाचार्य २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिमान् ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११ ये ग्यारह मुनि ग्यारह अंग और दश पूर्वके धारक क्रमसे हुये सो ये भी एकसौ तियासी वर्षतक मोक्षमार्गका यथार्थ उपदेश देते रहे इनके पश्चात् नक्षत्र १ जयपाल २ पांडु ३ ध्रुवसेन ४ कंसाचार्य ५ ये पांच महामुनि ग्यारह अंगमात्रके पाठी अनुक्रमसे दोयसौ वीसवर्षमें हुये इनके पश्चात् सुभद्र १ यशोधर २ महायश ३ लोहाचार्य ४ ये ४ मुनि एक अंगके पाठी अनुक्रमसे ११८ वर्षमें हुए ।

इस प्रकार वर्धमानस्वामीके पश्चात् ६८३ वर्षपर्यन्त अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही इनके पश्चात् अंगपाठी कोई भी नहीं हुये किन्तु वर्धमानस्वामीके मोक्षपधारनेके ६८३ वर्षके पश्चात् दूसरे भद्रबाहुस्वामी अष्टांग निमित्तज्ञानके (ज्योतिषके) धारक हुये इनके समयमें १२ वर्षका दुर्भिक्ष पड़नेसे इनके संघमेंसे अनेक मुनि शिथिलाचारी हो गये और स्वच्छंद प्रवृत्ति होनेसे जैनमार्ग भ्रष्ट होने लगा तब भद्रबाहुके शिष्योंमेंसे एक **धरसेन** नामके मुनि हुये जिनको अग्रायणीपूर्वमें पंचमवस्तुके महाप्रकृति नाम चौथे प्राभृतका ज्ञान था सो इन्होंने अपने शिष्य भूतबली और पुष्पदन्त इन दोनों मुनियोंको पढ़ाया इन्होंने षट्खंड नामकी सूत्ररचना कर पुस्तकमें लिखा फिर उन षट्खंडसूत्रोंको अन्यान्य आचार्योंने पढ़कर उनके अनुसार विस्तारसे धवल महाधवल जयधवलादि टीकाग्रन्थ (सिद्धान्तग्रन्थ) रचे उन सिद्धान्तग्रन्थोंको नेमिचन्द्र सिद्धान्तिकदेवने पढ़कर लब्धिसार १ क्षपणासार गोमट्टसारादि ग्रंथोंकी रचना किया सो षट्खंड सूत्रसे लगाय गोमट्टसार पर्यन्तके ग्रंथसमूहको **प्रथमश्रुतस्कंध** वा **सिद्धान्तग्रन्थ** कहते हैं । इन सबमें जीव और कर्मके संयोगसे जो संसार पर्याय होती हैं उनका विस्तारसे स्वरूप दिखाया गया है अर्थात्

१ इनका बनाया हुआ एक अनकार्थ कोश ईडरके भंडारमें प्राप्त हुआ है ।

भव्य जीवोंके हितार्थ गुणस्थान मार्गणाओंका वर्णन पर्यायार्थिक नयकी प्रधानतासे समस्त कथन किया है पर्यायार्थिक नयको अनेकान्त शैलीसे अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे अशुद्ध निश्चय नय तथा व्यवहार नय भी कहते हैं।

उक्त धरसेनाचार्यके समयमें ही एक **गुणधर** नामा मुनि हुये उनको ज्ञानप्रवादपूर्वके दशम वस्तुमेंके तृतीय प्राभृतका ज्ञान था उनसे नागहस्त नामा मुनिने उस प्राभृतको पढा और इन दोनों मुनियोंसे फिर यतिनायक नामा मुनिने उक्त प्राभृतको पढकर उसकी ६००० चूर्णिकारूप सूत्र रचे उन सूत्रोंपर समुद्धरण मुनिने १२००० श्लोकोंमें एक विस्तृत टीका रची सो इस ग्रंथको **श्रीकुंदकुंदस्वामी** अपने गुरु जिनचन्द्राचार्यसे पढकर पूर्ण रहस्यके ज्ञाता हुये और उस ही ग्रंथके अनुसार **कुंदकुंदस्वामीने** नाटक समयसार पंचास्तिकायसमयसार प्रवचनसारादि ग्रंथ रचे ये सब ग्रन्थ **द्वितीयश्रुतस्कन्ध**के नामसे प्रसिद्ध हैं इन सबमें ज्ञानको प्रधान करके शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका कथन किया गया है अर्थात् अध्यात्मरीतिसे इन ग्रंथोंमें आत्माका ही अधिकार है इसकारण इस शुद्धद्रव्यार्थिक नयका शुद्धनिश्चयनय वा परमार्थ भी नाम है इन ग्रंथोंमें पर्यायार्थिक नयोंकी गौणता की गई है क्योंकि इस जीवको जबतक पर्यायबुद्धि रहती है तबतक संसार ही है और जब शुद्धनयका उपदेश श्रवण करनेसे द्रव्यबुद्धि होकर निज आत्माको अनादि अनन्त एक और परद्रव्य तथा परभावोंके निमित्तसे हुये जो निजभाव तिनसे भिन्न आपको जानकर अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभवकर शुद्धोपयोगमें लीन होवे तब ही कर्मोंका अभावकर यह जीव मोक्षपदको प्राप्त होता है।

पट्टावलियोंके अनुसार ये कुंदकुंदस्वामी नंदिसंघके आचार्योंमें विक्रम संवत् ४९ में हुए हैं तथा पद्मनंदी एलाचार्य गृध्रपिच्छ और वक्रग्रीव ये ४ नाम भी इनहींके प्रसिद्ध किये गये हैं यद्यपि ये नाम इनहीके हों तो कोई आश्चर्य नहीं परन्तु पद्मनंदी आचार्यके बनाये हुये जगत्प्रसिद्ध पद्मनंदि पंचविंशतिका व जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति आदि ग्रंथ भी इनके बनाये हुये हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि पद्मनंदी नामके आचार्य कई हो गये हैं जैसें एक तो जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिके कर्ता पद्मनंदि हैं जो कि वीरनंदीके शिष्य बलनंदी और बलनंदिके शिष्य पद्मनंदी हैं सो विजयगुरुके निकट वारानगरके शक्तिभूपालके समयमें हुये हैं **दूसरे**—पद्मनंदि पंचविंशतिका, चरणसारप्राकृत धर्मरसायन प्राकृत, ये तीन ग्रंथ बनाये हैं इनका समयादि कुछ प्राप्त नहीं हुवा **तीसरे** पद्मनंदी कर्णखेट ग्राममें हुये हैं जिन्होंने मुक्तावल्यादि ग्रंथ बनाये हैं **चौथे**—पद्मनंदी कुन्दकुन्दपुरनिवासी हुये हैं जिन्होंने चूलिका सिद्धान्तकी व्याख्या वृत्तिनामक १२००० श्लोकोंमें बनायी है **पांचवे**—पद्मनंदी विक्रम सं १३९५ में हुये हैं **छट्ठे** पद्मनंदी भट्टारक नामसे प्रसिद्ध हुये हैं जिनकी बनाई रत्नत्रयपूजा देवपूजा पूनाकी दक्षिणकालेज लाइब्ररीमें प्राप्त हुई है **सातवे**—पद्मनंदी संवत १३६२ में भट्टारक नामसे हुये हैं इनकी लघुपद्मनंदी संज्ञा भी है इनके बनाये हुये यत्याचार परमात्मा प्रकाशकी टीका, निघण्टवैद्यक, श्रावकाचार कलिकुण्डपार्श्वनाथविधान, अनन्तकथा आदि ग्रंथ हैं। इस प्रकार एक नामके धारी अनेक आचार्य हो गये हैं यह सब नाम हमने [illegible]की रिपोर्टोंपरसे संग्रहीत किये हैं इनमें तथ्य कितना है सो हम नहीं कह सकते और न इनका [illegible] समय निर्णय करनेका ही कोई साधन है। किंतु इस पंचास्तिकायसमयसारजीके कर्ता कुंदकुंदस्वामी प्रसिद्ध हैं इनके बनाये समस्त ग्रंथोंको दिगम्बरीय श्वेताम्बरीय दोनोंही [illegible] विद्वज्जन प्रमाणभूत परम आदरकी दृष्टिसे इनका स्वाध्याय अवलोकन किया करते रहते हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जैनी नहीं इनके वचनोंमें अश्रद्धा करता हो।

[illegible] महाराजके बनाये हुये ग्रन्थोंके पूर्ण [illegible] पुरुषार्थसिद्धयुपाय तत्त्वार्थसार ग्रंथ [illegible]
[illegible] विक्रम संवत ९६२ में [illegible] हो गये हैं इन्होंने ही समयप्राभृत (समयसार

[illegible] (प्राकृत) [illegible] है जिनमेंसे [illegible] प्राप्त है।

[illegible]

द्वितीयावृत्तिकी सूचना।

प्रियविज्ञपाठकोंको विदित होवे कि इसकी पहली आवृत्तिमें केवल दो टीकायें थीं। उनमेंसे भी श्रीअमृतचन्द्रस्वामीकी टीकाके सूक्ष्म अक्षर थे। अबकी बार **श्रीप्रवचनसार**की तरह इसमें भी पूर्वटीकाके स्थूल अक्षर तथा **श्रीजयसेनाचार्य**की तात्पर्यवृत्ति नामकी संस्कृत टीका बीचमें लगा दीगई है जिससे कि पाठकोंको शब्दार्थ समझनेमें सरलता मालूम होवे। दूसरी बात यह है कि इसमें विषयानुक्रमणिका तथा गाथानुक्रमणिका इसप्रकार समयके अनुकूल दो सूचीं भी लगादी गई हैं और जो पहले संस्करणमें अशुद्धियां रहगईं थीं वो भी यथाशक्ति सुधार दीगई हैं। अब भी बुद्धिके क्षयोपशमकी न्यूनतासे त्रुटियां रहगईं हों तो उनको पाठकगण मेरे ऊपर क्षमाकरके शुद्धकरते हुए पढ़ें। क्योंकि ऐसे महान् शास्त्रमें अशुद्धियोंका रहजाना संभव है। इस तरह क्षमाप्रार्थना करता हुआ इस सूचनाको समाप्त करताहूं। अलं विज्ञेषु।

श्री॰ हु॰ दि॰ जैनमहाविद्यालय
नशियां इंदौर।
भाद्रपद कृष्णा १२ वीरनिर्वाण सं॰२४४१

जैनसमाजका सेवक
मनोहरलाल
पाढम (मैनपुरी) निवासी।

अथ पञ्चास्तिकायस्य विषयानुक्रमणिका ।

॥ इति विषयानुक्रमणिका ॥

श्रीवीतरागाय नमः

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

पंचास्तिकायः ।

(टीकात्रयोपेत)

श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृता तत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः ।

सहजानन्दचैतन्यप्रकाशाय महीयसे ।
नमोऽनेकान्तविश्रान्तमहिम्ने परमात्मने ॥ १ ॥
दुर्निवारनयानीकविरोधध्वंसनौषधिः ।
स्यात्कारजीविता जीयाज्जैनी सिद्धान्तपद्धतिः ॥ २ ॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः ।

स्वसंवेदनसिद्धाय जिनाय परमात्मने ।
शुद्धजीवास्तिकायाय नित्यानन्दचिदे नमः ॥ १ ॥

अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा वीतरागसर्वज्ञश्रीमन्दरस्वामितीर्थंकरपरमदेवं दृष्ट्वा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसारार्थं गृहीत्वा पुनरप्यागतैः श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्त्यर्थं, अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रे यथाक्रमेणाधिकारशुद्धिपूर्वकं तात्पर्यव्याख्यानं कथ्यते । अथ प्रथमतः

श्रीपांडे हेमराजजीकृत बालावबोधभाषाटीका ।

[जिनेभ्यो नमः] सर्वज्ञ वीतरागको नमस्कार होहु । अनादि चतुर्गति संसारके कारण, रागद्वेषमोहजनित अनेक दुःखोंके उपजानेवाले जो कर्मरूपी शत्रु तिनको

१ पूर्व इति पाठः । २ [illegible] । [illegible] व्यवहारनिश्चय ।

दोषास्पदत्वाद्विशदवाक्यम् । दिव्यो ध्वनिर्येषामित्यनेन समस्तवस्तुयाथात्म्योपदेशित्वात्प्रे-
क्षावत्प्रतीक्ष्यत्वमाख्यातम् । अन्तमतीत क्षेत्रानवच्छिन्न कालानवच्छिन्नश्च परमचैतन्य-

---

रूपपारमार्थिकसुखरसास्वादपरमसमरसीभावरसिकजनमनोहारित्वा मधुर चरितप्रतिपत्तिगच्छत्तृण-
स्पर्शशुक्तिकारजतविज्ञानरूपसशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन शुद्धजीवास्तिकायादिसप्ततत्त्वनवपदार्थ
षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादकत्वात् अथवा पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वात् अथवा कर्णाटमागधमा-
लवलाटगौडगुर्जरप्रत्येक त्रयमित्यष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषातदन्तर्भेदगतबहुभाषारूपेण यु-
गपत्सर्वजीवाना स्वकीयस्वकीयभाषाया स्पष्टार्थप्रतिपादकत्वात्प्रतिपत्तिकारकत्वात् सर्वजीवाना ज्ञाप-
कत्वात् विशद स्पष्ट व्यक्त वाक्य दिव्यध्वनिर्येषा त्रिभुवनहितमधुरविशदवाक्यास्तेभ्य । तथाचोक्त ।
"यत्सर्वात्महित न वर्णसहित न स्पन्दितोष्ठद्वय नो वाञ्छाकलित न दोषमलिन नो श्वासरुद्धक्रम ।
शान्तामर्षविषै सम पशुगणैराकर्णित कर्णिभिस्तन्न सर्वविदो विनष्टविपद पायादपूर्व वच ॥१॥"
इत्यनेन वचनातिशयप्रतिपादनेन तद्वचनमेव प्रमाण न चैकान्तेनापौरुषेयवचन न चित्रकथाक-
ल्पितपुराणवचन चेतीत्युक्त भवति । अन्तातीतद्रव्यक्षेत्रकालभावपरिच्छेदकत्वादन्तातीत केवल-
ज्ञानगुण स विद्यते येषा ते तातीतगुणास्तेभ्य इत्यनेन ज्ञानातिशयप्रतिपादनेन बुद्ध्यादिसप्तर्द्धि
मतिज्ञानादिचतुर्विधज्ञानसपन्नानामपि गणधरदेवादियोगीन्द्राणा वद्यास्ते भवन्तीत्युक्त । जितो
भव पञ्चप्रकारससार आजव जवो यस्तै जितभवास्तेभ्य इत्यनेन घातिकर्मापायातिशयप्रतिपादनेन
कृतकृत्यत्वप्रकटनादन्येषामकृतकृत्याना तदेव शरण नान्य इति प्रतिपादित भवति । एव विशे-
षणचतुष्टययुक्तेभ्यो नम , इत्यनेन मगलार्थमनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपो भावनमस्कार कृत । इद
विशेषणचतुष्टय अनेकभवगहनविषयव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयन्तीति जिन इति
व्युत्पत्तिपक्षे श्वेतशङ्खवत्स्वरूपकथनार्थं, अव्युत्पत्तिपक्षे नामजिनव्यवच्छेदनार्थं । एव विशेष्य-
विशेषणसबन्धरूपेण शब्दार्थ कथित । अनन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपभावनमस्कारोऽशुद्धनिश्च-
यनयेन, नमो जिनेभ्य इति वचनात्मकद्रव्यनमस्कारोऽप्यसद्भूतव्यवहारनयेन, शुद्धनिश्चयनयेन स्व
स्मिन्नेवाराध्याराधकभाव इति नयार्थोऽप्युक्त । स एव नमस्कारोऽश नाम्ये चेत्यादिरूपेण मतार्थोऽप्युक्त ।
इन्द्रशतवन्दिता इत्यागमार्थ प्रसिद्ध एव । अनन्तज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकायमेवोपादेय इति
भावार्थ । अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थ । अनेन प्रकारेण शब्दनयमतागमभावार्थ
व्याख्यानकाले सर्वत्र योजनायमिति सक्षेपेण मगलार्थमिष्टदेवतानमस्कार कृत । मगलमुपलक्षण
निमित्तहेतुपरिमाणनामकर्तृरूपा पञ्चाधिकारा यथासभव व्याख्या । इदानी पुनर्विस्तररुचिशिष्याणा
व्यवहारनयमाश्रित्य यथाक्रमेण मगलादिषडधिकाराणामियत्तापरिमितविशेषणव्याख्यान क्रियते—
"मगलणिमित्तहेउ परिमाण णाम तह य कत्तार । वागरिय छप्पि पच्छा वक्खाणउ

येभ्य] जाता है पचपरावर्तनरूप अर्थात् ससार जिन्होंन, अर्थात्—जो कुछ करना

---

१ य गत्य रि चराचराणि विविधद्रव्याणि तथा गुणान् पर्यायानपि भूतभाविभवन सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमत सर्वज्ञ इत्युच्यते सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नम ॥ १ ॥

शक्तिविलासलक्षणो गुणो येषामित्यनेन तु परमाद्भुतज्ञानातिशयप्रकाशनादवाप्तज्ञाना

सत्थमाइरिओ ॥ १ ॥" वक्खाणउ व्याख्यातु । स च कर्ता । आइरिओ आचार्य । कि । सत्थ शास्त्र पच्छा पश्चात् । किं कृत्वा पूर्व । वागरिय व्याकृत्य व्याख्याय । कान् । छप्पि पडणि मगलणिमित्तहेऊ परिमाणा णाम तह य कत्तार मगलनिमित्तहेतुपरिमाण नामकर्तृत्वाधिकाराणीति । तद्यथा—मल पाप गालयति विध्वसयतीति मगल, अथवा मग पुण्य सुख तल्लाति आदत्त गृह्णाति वा मगल । चतुष्टयफल समीक्ष्यमाणा ग्रथकारा शास्त्रस्यादौ त्रिधा देवतायास्त्रेधा नमस्कार कुर्वन्ति मगलार्थं ॥ "नास्तिक्यपरिहारस्तु शिष्टाचारप्रपालनम् । पुण्यावाप्तिश्च निर्विघ्न शास्त्रादौ तेन सस्तुति ॥ १ ॥" त्रिधा देवता कथ्यते । केन । इष्टाधिकृताभिमतभेदेन । आशीस्तुननमस्क्रियाभेदेन नमस्कारस्त्रिधा । तत्र मगल द्विविध मुख्यामुख्यभेदेन । तत्र मुख्यमगल कथ्यते "आदौ मध्येऽवसाने च मगल भाषित बुधै । तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्र तदविघ्नप्रसिद्धये ॥ १ ॥" तथाचोक्त । "विघ्ना प्रणश्यन्ति भय न जातु न क्षुद्रदेवा परिलघयन्ति । अर्थान् यथेष्टाश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमानां परिकीर्तनेन ॥" "आइ मगलकरणे सिस्सा लहु पारगा हवन्तित्ति । मज्झ अव्वुच्छित्ति विज्जा विज्जाफल चरिमे ॥" अमुख्यमगल कथ्यते—"सिद्धत्थ पुण्णकुभो वदणमाला य पडुर छत्त । सेदो वण्णो आदस्स णाय कण्णा य जत्तस्सो ॥ १ ॥ वयणियमसजमगुणेहिं साहिदो जिणवरेहिं परमट्ठो । सिद्धा सण्णा जेसि सिद्धत्था मगल तेण ॥२॥ पुण्णा मणोरहेहि य केवलणाणेण चावि सपुण्णा । अरहता इदि लोए सुमगल पुण्णकुभो दु ॥ ३ ॥ णिग्गमणपवेसम्हि य इह चउवीसंपि वदणीज्जा त । वदणमालेत्ति कया भरहेण य मगल तेण ॥ ४ ॥ सव्वजणणिव्वुदियरा छत्तायारा जगस्स अरहता । छत्तायार सिद्धित्ति मगल तेण छत्त त ॥ ५ ॥ सेदो वण्णो झाण लेस्सा य अघाइसेसकम्म च । अरहाण इदि लोए सुमगल सेदवण्णो दु ॥ ६ ॥ दीसइ लोयालोओ केवलणाणे तहा जिणिदस्स । तह दीसइ मुकुर विमगल तण त मुणह ॥ ७ ॥ जह वीयराय सव्वण्हू जिणवरो मगल हवइ लोए । हयरायबालकण्णा तह मगलमिदि वियाणाहि ॥ ८ ॥ कम्मारिणिणज्जिणु जिणवरेहिं मोक्खु जिणाशिव जण । ज चउरउअरिबलजिणइ मगलु वुच्चइ तेण ॥ ९ ॥ अथवा निबद्धानिबद्धभेदेन द्विविध मगल तत्र प्रथकारेण कृत । निबद्धमगल यथा मोक्षमार्गस्य नेतारमित्यादि । शास्त्रान्तरानीतो नमस्कारोऽनिबद्धमगल यथा जगत्त्रयनाथेत्यादि । अस्मिन्प्रस्तावे शिष्य प्रश्न करोति—[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

तिशयानामपि योगीन्द्राणा वन्द्यत्वमुदितम्। नितो मम आनन जगो यैरित्यनेनैं तु कृतकृ-

तदयुक्त, पूर्वाचार्या इष्टदेवतानमस्कारपुरस्सरमेव कार्यं कुर्वन्ति, यदुक्त भवता नमस्कारे कृते पुण्य भवति पुण्येन निर्विघ्न भवति इति नच वक्तव्य तदप्ययुक्त। कस्मात्। देवतानमस्कारकरणे पुण्य भवति तेन निर्विघ्न भवतीति तर्कादिशास्त्रे व्यवस्थापितत्वात्। पुनश्च यदुक्त त्वया व्यभिचारो दृश्यते तदप्ययुक्त। कस्मादितिचेत्। यत्र देवतानमस्कारदानपूजादिधर्मे कृतेपि विघ्न भवति तत्रेद ज्ञातव्य पूर्वकृतपापस्यैव फल तत् नच धर्मदूषण, यत्र पुनर्देवतानमस्कारदानपूजादिधर्माभावेपि निर्विघ्न दृश्यते तत्रेद ज्ञातव्य पूर्वकृतधर्मस्यैव फल तत् नच पापस्य। पुनरपि शिष्यो ब्रूते— शास्त्र मगलममगल वा? मगल चेत्तदा मगलस्य मगल किं प्रयोजन, यद्यमगल तर्हि तेन शास्त्रेण किं प्रयोजन। आचार्या परिहारमाहु—भक्त्यर्थं मगलस्यापि मगल क्रियते। तथा-चोक्त "प्रदीपेनार्चयेदर्कमुदकेन महोदधिम्। वागीश्वरीं तथा वाग्भिर्मंगलेनैव मगलम्॥ १॥" किंच। इष्टदेवतानमस्कारकरणे प्रत्युपकार कृत भवति। तथाचोक्त—"श्रेयोमार्गस्य ससिद्धि प्रसादात्परमेष्ठिन। इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्र शास्त्रादौ मुनिपुगवा॥" "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपाय सुबोध स च भवति सुशास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्। इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादाप्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति॥" इति सक्षेपेण मगल व्याख्यान। निमित्त कथ्यते निमित्त कारण। वीतरागसर्वज्ञदिव्यध्वनिशास्त्रे प्रवृत्ते किं कारण? भव्यपुण्यप्रेरणात्। तथाचोक्त "छद्दव्वणवपयत्थे सुयणाणाइच्चदिव्वतेएण। पस्सतु भव्वजीवा इय सुयरविणो हवे उदओ॥" अथ प्राभृतग्रथे शि-वकुमारमहाराजो निमित्त अन्यत्र द्रव्यसग्रहादौ सोमाश्रेष्ठ्यादि ज्ञातव्य। इति सक्षेपेण निमित्त कथित। इदानीं हेतुव्याख्यान। हेतु फल, हेतुशब्देन फल कथ भण्यत इति चेत्। फलकारणात्फलमुपचा रात्। तच्च फल द्विविध प्रत्यक्षपरोक्षभेदात्। प्रत्यक्षफल द्विविध साक्षात्परपराभेदेन। साक्षात्प्रत्यक्ष किं? अज्ञानविच्छित्ति सज्ञानोत्पत्तिसख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा इत्यादि। परपराप्रत्यक्ष किं? शिष्यप्रतिशिष्यपूजाप्रशसाशिष्यनिष्पत्त्यादि। इति सक्षेपेण प्रत्यक्षफल। इदानीं परोक्षफल भण्यते। तच्च द्विविध अभ्युदयनिश्रेयससुखभेदात्। अभ्युदयसुख कथ्यते। अष्टादशश्रेणीनां पति स एव मुकुटधर कथ्यते, तस्माद्द्विगुणद्विगुणक्रमेण सकलचक्रिपर्यत इति अभ्युदयसुख। अथ निश्रेयससुख कथ्यते "तित्थयरगणहरत्त चउतीसातिसया पचकल्लाणा। अट्ठ महापाडिहेरा अरहता मगल मज्झ॥" सिद्धपद कथ्यते "मूलुत्तरपयडीण बधोदयसत्तकम्मउम्मुक्का। मगलभूदा सिद्धा अट्ठगुणातीदससारा॥" इति सक्षेपेण अभ्युदयनिश्रेयससुख कथित। इदमत्र तात्पर्य— यत्कोपि पचास्तिकायप्रवचनसारसमयसारादिक शास्त्र पठति श्रद्धत्ते तथा च भावयति स एव इत्थभूत सुख प्राप्नोतीत्यर्थ। इदानीं परिमाण प्रतिपाद्यते। तच्च द्विविध ग्रथार्थभेदात्। ग्रथप रिमाण ग्रन्थसख्या यथासभव, अर्थपरिमाणमनन्त इति सक्षेपेण परिमाण भणित। नाम कथ्यते। नाम

छद्मस्थाको) प्राप्त नहिं हुये, उन पुरुषोंको शरणरूप हैं उसे जो जिन हैं तिनको

१ धर्मविध्वसकापापापादितत्वम् २ इच्छावत्सत्वावनात्।

समन्तेनाभिधीयमानो वस्तुतयैकोऽभिधेय । सफलत्वं तु चतसृणां नारकतिर्यग्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां निवारणत्वात्, साम्यात् पारतन्त्र्यनिवृत्तिलक्षणस्य निर्वाणस्य शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भरूपस्य परम्परया कारणत्वात्, स्वातन्त्र्यप्राप्तिलक्षणस्य च फलस्य सद्भावादिति ॥ २ ॥

सकलकर्मविमोचनलक्षणनिर्वाणं । इयमूत शब्दसमय कथमूत । "गंभीरं मधुरं मनोहरतर दोषव्यपेतं हितं कण्ठोष्ठादिवचोनिमित्तरहितं नो वातरोधोद्गत । स्पष्टं तत्तदभीष्टवस्तुकथकं निःशेषभाषात्मकं दूरासन्नसमं समं निरुपमं जैनं वचः पातु न" ॥ तथाचोक्तं । "एनाननमवृत्ति-विघटते श्रेये हिते चाहिते हानादानमुपेक्षणं च समभूतस्मिन् पुन प्राणिनि । येनेव त्वयति ता परमतां वृत्तं च येनानिशं तज्ज्ञानं मम मानसाम्बुजमुदे स्तात्सूर्यवर्योदय ॥" इत्यादि गुणविशिष्टवचनात्मकं नत्वा किं करोमि । वोच्छामि वक्ष्यामि । कं । अर्थसमयं सुणुह शृणुत यूय हे भव्या इति क्रियाकारकसंबंध । अथवा द्वितीयव्याख्यानं । श्रमणमुखोद्गतं पञ्चास्तिकायलक्षणार्थसमयप्रतिपादकत्वादर्थं परपरया चतुर्गतिनिवारणं चतुर्गतिनिवारणत्वादेव सनिर्वाणं एवोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमना कुन्दकुन्दाचार्यः प्रणम्य नमस्कृत्य नत्वा । केन । शिरसा मस्तकेनोत्तमाङ्गेन । कं प्रणम्य । पूर्वोक्तश्रमणमुखोद्गतादिविशेषणचतुष्टयसंयुक्तं समयं शब्दरूपं द्रव्यागमसंज्ञं प्रत्यक्षीभूतं तं शब्दसमयं प्रणम्य । पश्चात् किं करोमि । वक्ष्यामि कथयामि प्रतिपादयामि शृणुत हे भव्या यूयं । कं वक्ष्यामि । तमेव शब्दसमयवाच्यमर्थसमयं शब्दसमयं नत्वा पश्चादर्थसमयं वक्ष्ये ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थमिति । वीतरागसर्वज्ञमहाश्रमणमुखोद्गतं शब्दसमयं कश्चिदासन्नभव्य पुरुष शृणोति शब्दसमयवाच्यं पञ्चास्तिकायलक्षणमर्थसमयं जानाति तदन्तर्गते शुद्धजीवास्तिकायलक्षणेऽर्थे वीतरागनिर्विकल्पसमाधिना स्थित्वा चतुर्गतिनिवारणं करोति चतुर्गतिनिवारणादेव निर्वाणं लभते स्वात्मोत्थमनाकुलत्वलक्षणं निर्वाणफलभूतमनन्तसुखं च लभते जीवस्तेन कारणेनायं द्रव्यागमरूपशब्दसमयो नमस्कर्तुं व्याख्यातुं च युक्तो भवति । इत्यनेन व्याख्यानक्रमेण संबंधाभिधेयप्रयोजनानि सूचितानि भवन्ति । कथमिति चेत् । विवरणरूपमाचार्यवचनं व्याख्यानं, गाथासूत्रं व्याख्येयमिति व्याख्यानव्याख्येयसंबंध । द्रव्यागमरूपशब्दसमयोऽभिधानं वाचकं तेन शब्दसमयेन वाच्यं पञ्चास्तिकायलक्षणोऽर्थसमयोऽभिधेय इति अभिधानाभिधेयलक्षणसंबंध, फलं प्रयोजनं चाज्ञानविच्छित्त्यादि निर्वाणसुखपर्यन्तमिति संबंधाभिधेयप्रयोजनानि ज्ञातव्यानि भवन्तीति भावार्थ ॥ २ ॥ एवमिष्टाभिमतदेवतानमस्कारमुख्यतया गाथाद्वयेन प्रथमस्थलं गतं ।

योंका निवारण करनेवाला है, अर्थात् समस्त दुःखोंका विनाश करनेवाला है। फिर कैसा है आगम ?–[**सनिर्वाणं**] मोक्षफलकर सहित है अर्थात् शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्तिरूप मोक्षपदका परंपरायकारणरूप है इस प्रकार भगवत्प्रणीत आगमको नमस्कार करके पञ्चास्तिकायनामक समयसारको कहता आगम दो प्रकारका है –एक **अर्थसमय** रूप है, दूसरा **शब्दसमयरूप** है। शब्दसमयरूप जो आगम है सो भी शब्दसमय

क्यसन्निवेशविशिष्टः पाठो वादः, शब्दसमयः शब्दागम इति यावत्। तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयोच्छेदे सति सम्यगवायः परिच्छेदो ज्ञानसमयो ज्ञानागम इति यावत्। तेषामेवाभिधानप्रत्ययपरिच्छिन्नानां वस्तुरूपेण समवायः संघातोऽर्थसमयः सर्वपदार्थसार्थ इति यावत्। तदत्र ज्ञानसमयप्रसिद्ध्यर्थं शब्दसमयसंबन्धेनार्थसमयोऽभिधातुमभिप्रेतः। अथ तस्यैवार्थसमयस्य द्वैविध्यं लोकालोकविकल्पनात्। स एव पञ्चास्तिकायसमवायो यावांस्ता-

---

विभागं च प्रतिपादयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयन्ति, एवमग्रेऽपि यथासंभवं विवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्य, अथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवतीति निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयन्तीति पातनिकालक्षणमनेन क्रमेण यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्,—**समवाओ पंचण्हं** पञ्चानां जीवाद्यर्थानां समवायः समूहः **समयमिण** समय इति **जिणवरेहिं पण्णत्तं** जिनवरैः प्रज्ञप्तं कथितं **सो चेव हवदि लोगो** स चैव पञ्चानां मेलापकः समूहो भवति। स कः। लोकः। **तत्तो** ततस्तस्मात्पञ्चानां जीवाद्यर्थानां समवायाद्बहिर्भूतः **अमओ** अमितोऽनन्तः अथवा 'अमओ' अकृत्रिमो न केनापि कृतः न केवलं लोकः **अलोयक्खं** अलोक इत्याख्या संज्ञा यस्य स भवत्यलोकाख्यः, अलोयं खं इति भिन्नपदपाठान्तरे च अलोक इति कोऽर्थः खं शुद्धाकाशमिति सम्प्रदायार्थः। तद्यथा—समयशब्दस्य शब्दज्ञानार्थभेदेन पूर्वोक्तमेव त्रिधा व्याख्यानं क्रियते,—पञ्चानां जीवाद्यस्तिकायानां प्रतिपादको वर्णपदवाक्यरूपो वादः पाठः शब्दसमयो द्रव्यागम इति यावत्, तेषामेव पञ्चानां मिथ्यात्वोदयाभावे सति संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सम्यगवायो बोधो निर्णयो निश्चयो ज्ञानसमयोऽर्थपरिच्छित्तिर्भावश्रुतरूपो भावागम इति यावत्, तेन द्रव्यागमरूपशब्दसमयेन वाच्यो भावश्रुतरूपज्ञानसमयेन परिच्छेद्यः पञ्चानामस्तिकायानां समूहोऽर्थसमय इति

इन तीनों भेदोंमेंसे समयशब्दका अर्थ और लोकालोकका भेद कहते हैं,—[**पचाना**] पचास्तिकायका जो [**समवाय**] समूह सो [**समय**] समय है [**इति**] इस प्रकार [**जिनोत्तमैः**] सर्वज्ञ वीतरागदेव करके [**प्रज्ञप्त**] कहा गया है, अर्थात् समय शब्द तीन प्रकार है—शब्दसमय, ज्ञानसमय, और अर्थसमय। इन तीनों भेदोंमेंसे जो इन पचास्तिकायकी रागद्वेषरहित यथार्थ अक्षर, पद वाक्यकी रचना सो द्रव्यश्रुतरूप 'शब्द समय' है, और उस ही शब्दश्रुतका मिथ्यात्वभावके नष्ट होनेसे जो यथार्थ ज्ञान होना सो भावश्रुतरूप 'ज्ञानसमय' है, और जो सम्यग्ज्ञानके द्वारा पदार्थ जाने जाते हैं, उनका नाम 'अर्थसमय' कहा जाता है [**स एव च**] वह ही अर्थसमय पचास्तिकायरूप सबका सब [**लोकः भवति**] लोक नामसे कहा जाता है [**ततः**] तिस लोकसे भिन्न [**अमितः**] मर्यादारहित अनन्त [**खं**] आकाश है सो [**अलोकः**] अलोक है।

भावार्थ—अर्थसमय लोक अलोकके भेदसे दो प्रकार है जहां पचास्तिकायका समूह

---

१ द्रव्यरूपशब्दसमय २ भावागमसम्यग्ज्ञानम् ३ ज्ञातानाम् ४ अत्र ग्रन्थ त्रिषु मध्ये वा
५ वाञ्छित प्रारब्ध।

सामान्यविशेषास्तित्वञ्च तेषामुत्पादव्ययध्रौव्यमय्यां सामान्यविशेषसत्तायां नियतत्वाद्व्यवस्थितत्वादवसेयम् । अस्तित्वे नियतानामपि न तेषामन्यमयत्वम् । यतस्ते सर्वदैवानन्यमया आत्मनिर्वृत्ताः । अनन्यमयत्वेऽपि तेषामस्तित्वनियतत्वं नयप्रयोगात् । द्वौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च । तत्र न खल्वेकनयायत्ताऽऽदेशना किन्तु तदुभयायत्ता । ततः पर्यायार्थादेशादस्तित्वे स्वतः कथंचिद्भिन्नेऽपि व्यवस्थिताः द्रव्यार्थादेशात्स्वयमेव सन्तः सतोऽनन्यमया भवन्तीति । कायत्वमपि तेषामणुमहत्त्वात् । अणवो ऽत्र प्रदेशा मूर्ताऽमूर्ताश्च निर्विभागांशास्तैः महान्तोऽणुमहान्तः प्रदेशप्रचयात्मका इति सिद्धं तेषां कायत्वं । अणुभ्यां महान्त इति व्युत्पत्त्या द्व्यणुकपुद्गलस्कन्धानामपि तथाविधत्वं ।

[illegible]नामन्यविशेषसत्तायां नियताः स्थिताः । तर्हि सत्तायाः सकाशात्कुण्डे बदराणीव भिन्ना भविष्यन्ति । नैवं । अणण्णमइया अनन्यमया अपृथग्भूताः यथा घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः स्तम्भे सार इत्यनेन व्याख्यानेनाधाराधेयभावेऽप्यभिन्नास्तित्वं भणितं भवति । इदानीं कायत्वं प्रोच्यते अणुमहंता अणुमहान्तः अणुना परेणोत्कृष्टेनैकप्रदेशेनाधिका प्रदेशा गृह्यन्ते, अणुभिः प्रदेशैर्महान्तः [illegible] द्व्यणुकस्कन्धापेक्षया [illegible] महान्तोऽणुमहान्तः इति कायत्वमुक्तं । एकप्रदेशाणो

[अनन्यमयाः] अपनी सत्तासे भिन्न नहीं हैं । अर्थात्—जो उत्पादव्ययध्रौव्यरूप है सो सत्ता है, और जो सत्ता है सो ही अस्तित्व कहा जाता है । यह अस्तित्व सामान्य विशेषात्मक है । ये पंचास्तिकाय अपने अपने अस्तित्वमें हैं अस्तित्व है सो अभेदरूप है ऐसा नहीं है जैसे कि किसी बर्तनमें कोई वस्तु हो, किन्तु जैसे घट घटरूप होता है वैसे अस्तित्वरूप एक है । निश्चय भगवानने दो नय बतलाये हैं—एक द्रव्यार्थिकनय, और दूसरा पर्यायार्थिकनय है । इन दो नयोंके आश्रय ही कथन है । यदि इनमेंसे एक नय न हो तो कथन बन नहीं आवै, इस कारण अस्तित्व गुण होनेके कारण द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यसे अभेद है पर्यायार्थिकनयसे भेद है जैसे कि गुण गुणीमें होता है । इसप्रकार अस्तित्वरूपसे ये पंचास्तिकाय वस्तुसे अभिन्न ही हैं । फिर पंचास्तिकाय कैसे हैं कि, [अणुमहान्तः] निर्विभाग मूर्तीक अमूर्तीक प्रदेशोंकर बड़े हैं, अनेक

[illegible]

धत्वम् । अणवश्च महान्तश्च व्यक्तिशक्तिरूपाभ्यामिति परमाणूनामेकप्रदेशात्मकत्वेऽपि तत्सिद्धिः । व्यक्त्यपेक्षया शक्त्यपेक्षया च प्रदेशप्रचयात्मकस्य महत्त्वस्याभावात्कालाणूनामस्तित्वनियतत्वेऽप्यकायत्वमनेनैव साधितम् । अतएव तेषामस्तिकायप्रकरणे सतामप्यनुपादानमिति ॥ ४ ॥

अत्र पञ्चास्तिकायानामस्तित्वसंभवप्रकारः कायत्वसंभवप्रकारश्चोक्तः —

जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं ।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णा जेहिं तइलुक्कं ॥ ५ ॥

येषामस्तिस्वभावः गुणैः सह पर्यायैर्विविधैः ।
ते भवन्त्यस्तिकायाः निष्पन्नं यैस्त्रैलोक्यम् ॥ ५ ॥

अस्ति ह्यस्तिकायानां गुणैः पर्यायैश्च विविधैः सह स्वभावो आत्मभावोऽनन्यत्वम् ।

कथं कायत्वमिति चेत् । स्कन्धानां कारणभूताया स्निग्धरूक्षत्वशक्तेः सद्भावादुपचारेण कायत्वं भवति कालाणूनां पुनर्बन्धकारणभूताया स्निग्धरूक्षत्वशक्तेरभावादुपचारेणापि कायत्वं नास्ति । शक्त्यभावोपि कस्मात् ? अमूर्तत्वादिति पञ्चास्तिकायानां विशेषसंज्ञा अस्तित्वं कायत्वं चोक्तं । अत्र गाथासूत्रेऽनन्तज्ञानादिरूप शुद्धजीवास्तिकाय उपादेय इति भावार्थः ॥ ४ ॥ अथ पूर्वोक्तमस्तित्वं कायत्वं च केन प्रकारेण संभवतीति प्रज्ञापयति,—जेसिं अत्थिसहाओ गुणेहिं सह पज्जयेहिं विविहेहिं ते होंति अत्थि येषां पञ्चास्तिकायानामस्तित्वं विद्यते ।

प्रदेशी हैं । **भावार्थ**—ये जो पहिले पांच द्रव्य अस्तित्वरूप कहे वे कायवंत भी हैं, क्योंकि ये सब ही अनेक प्रदेशी हैं । एक जीवद्रव्य, धर्म, और अधर्मद्रव्य ये तीनों ही असंख्यात प्रदेशी हैं । आकाश अनंत प्रदेशी है । बहु प्रदेशीको काय कहा गया है । इस कारण ये ४ द्रव्य तो अखण्ड कायवंत हैं । पुद्गलद्रव्य यद्यपि परमाणुरूप एक प्रदेशी है, तथापि मिलन शक्ति है, इसकारण काय कहा जाता है द्व्यणुक स्कन्धसे लेकर अनंत परमाणुस्कन्ध पर्यंत व्यक्तिरूप पुद्गल कायवंत कहा जाता है इस कारण पुद्गलसहित ये पांचों ही अस्तिकाय जानने । कालद्रव्य (कालाणु) एक प्रदेशी है, शक्ति व्यक्तिकी अपेक्षासे कालाणुओंमें मिलन शक्ति नहीं है, इस कारण कालद्रव्य कायवंत नहीं है ॥ ४ ॥ आगे पंचास्तिकायके अस्तित्वका स्वरूप दिखाते हैं और काय किस प्रकारसे है सो भी दिखाया जाता है,—[येषां] जिन पंचास्तिकायोंका [विविधैः] नाना प्रकारके [गुणैः] सह भूतगुण और [पर्यायैः]व्यतिरेकरूप अनेक पर्यायों कर [सह] सहित [अस्तिस्वभावः] अस्ति स्वभाव है [ते] वे ही पंचा

[illegible]

वस्तुनो विशेषा हि व्यतिरेकिण पर्य्याया गुणास्तु त एवान्वयिनै । तत एकेन पर्यायेण प्रलीयमानस्यान्येनोपजायमानस्यान्वयिना गुणेन ध्रौव्य बिभ्राणस्यैकस्यापि वस्तुन समुच्छेदोत्पादध्रौव्यलक्षणमस्तित्वमुपपद्यत एव । गुणपर्यायै सह सर्वथान्यत्वे त्वन्यो विनश्यत्यन्य प्रादुर्भवत्यन्यो ध्रुवत्वमालम्बत इति सर्वं विप्लवते । तत साध्वस्तित्वसम्भवप्रकारकथन । कायत्वसम्भवप्रकारस्त्वयमुपदिश्यते । अवयविनो हि जीवपुद्गलधर्म्माधर्म्माऽऽकाश-पदार्थास्तेषामवयवा अपि प्रदेशाख्या परस्परव्यतिरेकित्वात्पर्याया उच्यन्ते । तेषा तै

स क । स्वभाव सत्ता अस्तित्व तन्मयत्व स्वरूपमिति यावत् । यै सह । गुणपर्यायै । कथ भूतै । विविधैर्नानाप्रकारैस्तै अस्ति भवति इत्यनेन पचानामस्तित्वमुक्तमिति । वार्तिक तथा कथ्यते—अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिण पर्याया, अथवा सहभुवो गुणा क्रमवर्तिन पर्यायास्ते च द्रव्यात्सकाशात् सज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन भिन्ना प्रदेशरूपेण सत्तारूपेण वा चाभिन्ना । पुनरपि कथभूता । विविधा नानाप्रकारा । केन कृत्वा । स्वेन स्वभावविभावरूपेणार्थव्य जनपर्यायरूपेण वा । जीवस्य तावत्कथ्यते । केवलज्ञानादय स्वभावगुणा मतिज्ञानादयो विभाव गुणा सिद्धरूप स्वभावपर्याय नरनारकादिरूपा विभावपर्याया । पुद्गलस्य कथ्यते । शुद्ध परमाणौ वर्णादय स्वभावगुणा द्व्यणुकादिस्कन्धे वर्णादयो विभावगुणा शुद्धपरमाणुरूपेणाव-

स्तिकाय [**अस्तिकायाः**] अस्तिकायवाले [**भवन्ति**] हैं कैसे हैं वे पचास्तिकाय ? [**यै.**] जिनके द्वारा [**त्रैलोक्य**] तीन लोक [**निष्पन्न**] उत्पन्न हुए हैं । [**भावार्थ**]—इन पचास्तिकायोंको नानाप्रकारके गुणपर्यायके स्वरूपसे भेद नहीं है, एकता है । पदार्थोंमें अनेक अवस्थारूप जो परिणमन है, वे पर्याय कहलाती हैं और पदार्थोंमें सदा अविनाशी साथ रहते हैं, वे गुण कहे जाते हैं । इस कारण एक वस्तु एक पर्यायकर उपजती है, और एक पर्यायकर नष्ट होती है और गुणोंकर ध्रौव्य है यह उत्पादव्ययध्रौव्यरूप वस्तुका अस्तित्वस्वरूप जानना, और जो गुणपर्यायोंसे सर्वथा प्रकार वस्तुकी पृथक्ता ही दिखाई जाय तो अन्य ही विनशै, और अन्य ही उपजै और अन्य ही ध्रुव रहै इस प्रकार होनेसे वस्तुका अभाव होजाता है इस कारण कथचित् साधनिका मात्र भेद है स्वरूपसे तो अभेद ही है । इसप्रकार पचास्तिकायका अस्तित्व है । इन पाचों द्रव्योंको कायत्व कैसे है सो कहते हैं—कि, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये पाच पदार्थ अशरूप अनेक प्रदेशोंको लिये हुए

१ वस्तुन द्रव्यस्य २ केवलज्ञानादयो गुणा ३ एकस्यापि वस्तुन भूतभाविभवत्पर्यायभेदेषु वर्तमानस्य यदनुगतप्रत्ययोत्पादक सोऽन्वय स एषामिति त अन्वयिन ४ विप्लव ५ विनश्यति ६ प्रदेशाख्या अवयवा विद्यन्ते यथा त अवयविन ७ तथा जीवादिपदार्थाना त्रिभुवनाकारपरिणताना । सावयवत्वात् स. प्रस्तावस्य ८ अ या यभिन्नत्वात् भिन्नत्वात् पृथग्भावाद्वा ९ अस्तिकायाना १० तै पदार्थै ।

त्मैषां भूतभावीनि गुणपर्यायैक्यत्वेनास्तित्वानि भावानि। धर्माधर्माकाश-
कायानामूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणतत्वात् कायत्वाख्यं सावयवत्वमस्ति। जीवानामपि
प्रत्येकमूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपेण परिणतलोकपूरणावस्थाव्यवस्थितव्यक्तेः स-
दा संनिहितशक्तेस्तदनुमीयत एव। पुद्गलानामप्यूर्ध्वाधोमध्यलोकविभागरूपपरिणतमहा-
स्कन्धत्वप्राप्तिव्यक्तिशक्तियोगित्वात्तथाविधा सावयवत्वसिद्धिरस्त्येवेति ॥ ५ ॥

अत्र पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यत्वमुक्तम्।—

ते चेव अत्थिकाया तेकालियभावपरिणदा णिच्चा ।
गच्छंति दवियभावं परियट्टणलिंगसंजुत्ता ॥ ६ ॥

ते चैवास्तिकायास्त्रैकालिकभावपरिणता नित्याः ।
गच्छन्ति द्रव्यभावं परिवर्तनलिङ्गसंयुक्ताः ॥ ६ ॥

द्रव्याणि हि सहक्रमभुवां गुणपर्यायाणामनन्यतयाधारभूतानि भवन्ति। ततो वृत्तवर्त-

---

उत्पादव्ययध्रौव्यत्वमस्तित्वं कथ्यते। तदपि कथंचित् । उत्पादव्ययध्रौव्य गतिरिति
वचनात् ऊर्ध्वाधोमध्यभागरूपेण जीवपुद्गलादीनां त्रिभुवनाकारपरिणामानां सावयवत्वसंभ-
वत्वात् सप्रदेशत्वात् कायत्वं विज्ञेयं कायत्वं च विज्ञेयं वैवम् पूर्वोक्तप्रकारेण, अनेन च
प्रकारेणास्तित्वं कायत्वं च ज्ञातव्यं। तत्र शुद्धजीवास्तिकायस्य यानन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्ध-
पर्यायसत्ता च शुद्धासंख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ५ ॥ एवं गाथात्रयेण
पञ्चास्तिकायसंक्षेपव्याख्यानं द्वितीयस्थलं गतं। अथ पञ्चास्तिकायानां कालस्य च द्रव्यसंज्ञां कथ-
यति,—**ते चेव अत्थिकाया तिकालियभावपरिणदा णिच्चा** ते चैव पूर्वोक्ताः पञ्चास्तिकायाः
यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन त्रैकालिकभावपरिणतास्त्रिकालविषयपर्यायपरिणताः सन्तः क्षणिकाः अनित्याः
विनश्वरा भवन्ति तथापि द्रव्यार्थिकनयेन नित्या एव। एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यां नित्यानित्या-
त्मकाः सन्तः **गच्छंति दवियभावं** द्रव्यभावं गच्छन्ति द्रव्यसंज्ञां लभन्ते। पुनरपि कथंभूताः

भाव त्रैलोक्यकी रचनारूप हैं। धर्म, अधर्म, आकाशका परिणमन; ऊर्ध्वलोक, अधो-
लोक, मध्यलोक, इस प्रकार तीन भेद लिये हुए है। इस कारण इन तीनों द्रव्योंमें
कायकथन, अंशकथन है, और जीवद्रव्य भी दण्ड कपाट प्रतर लोकपूर्ण अवस्थाओंमें
लोकप्रमाण होता है इस कारण जीवमें भी सकाय वा अंशकथन है। पुद्गलद्रव्यमें मिलन-
शक्ति है, इस कारण व्यक्तरूप महास्कन्धकी अपेक्षासे ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मध्यलोक
इन तीनोंलोकरूप परिणमता है इस कारण अंशकथन पुद्गलमें भी सिद्ध होता है
इन पञ्चास्तिकायोंके द्वारा लोककी सिद्धि इसीप्रकार है ॥ ५ ॥ आगे पञ्चास्तिकाय और

---

१ शुद्धजीवास्तिकायस्य या अनन्तज्ञानादिगुणसत्ता सिद्धपर्यायसत्ता च शुद्धासंख्यातप्रदेशरूपं कायत्वमुपा-
देयमिति २ द्रव्यस्य सहभुवो गुणाः ३ द्रव्यस्य क्रमभुवः पर्यायाः।

अत्र षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरेऽपि प्रतिनियतस्वरूपादप्रच्यवनमुक्तम्,—

अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति ॥ ७॥

अन्योऽन्यं प्रविशन्ति ददन्त्यवकाशमन्योऽन्यस्य।
मिलन्त्यपि च नित्यं स्वकं स्वभावं न विजहन्ति ॥ ७ ॥

अत एव तेषां परिणामवत्त्वेऽपि प्राग्नित्यत्वमुक्तम्। अत एव च न तेषामेकत्वापत्तिर्न च जीवकर्मणोर्व्यवहारनयादेशादेकत्वेऽपि परस्परस्वरूपोपादानमिति ॥ ७ ॥

भावार्थः ॥ ६ ॥ इति कालसहितपञ्चास्तिकायानां द्रव्यसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता। अथ षण्णां द्रव्याणां परस्परमत्यन्तसंकरे स्वकीयस्वकीयस्वरूपादच्यवनमुपदिशति;—**अण्णोण्ण पविसंता** अन्यक्षेत्रात्क्षेत्रान्तरं प्रति परस्परसंबन्धार्थमागच्छन्तः **दिंता ओगासमण्णमण्णस्स** आगतानां परस्परमवकाशदानं ददतः **मेलंतावि य णिच्चं** अवकाशदानानंतरं परस्परमेलापकेन स्वकीयस्वस्थानकाळपर्यन्तं युगपत्प्राप्तिरूपं संकरं परस्परविषयगमनरूपव्यतिकरं ताभ्यां विना नित्यं सर्वकालं तिष्ठन्तोपि **सगसब्भावं ण विजहंति** स्वस्वरूपं न त्यजन्तीति। अथवा अन्योन्यं प्रविशन्तः सक्रियवन्तः जीवपुद्गलापेक्षया, आगतानामवकाशं ददतः इति सक्रियनिष्क्रियद्रव्यमेलापकापेक्षया, नित्यं सर्वकालं मेलापकेन तिष्ठन्त इति धर्माधर्माकाशकालनिष्क्रियद्रव्यापेक्षया, इति षड्द्रव्यमध्ये ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतकृष्णनीलकापोतादिअशुभलेश्यादिसमस्तपरद्रव्याऽवलम्बनोत्पन्नसंकल्पविकल्पकल्लोलमालारहित वीतरागनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नपरमानन्दरूपसुखरसास्वादपरमसमरसीभावस्वभावेन स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यं प्राप्यं सालम्बं आधारं भरितावस्थं शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनेति पाठः। निश्चयनयेन स्वकीयदेहान्तर्गत शुद्धजीवास्तिकायमेव जीवद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थः। यत्पुनरन्येषामेकान्तवादिनां रागद्वेषमोहवतामपि वायुधारणादिसर्वशून्यध्यानव्याख्यानमाकाशध्यानं वा तत्सर्वं निरर्थकमेव।

(टांकीमें उकेरे हुएके समान जैसेका तैसा) सदा अविनाशी हैं ॥६॥ आगे यद्यपि षड्द्रव्य परस्पर अत्यन्त मिले हुये हैं, तथापि अपने स्वरूपको छोड़ते नहीं ऐसा कथन करते हैं,—**[अन्योऽन्यं प्रविशन्ति]** छहों द्रव्य परस्पर सम्बन्ध करते हैं, अर्थात् एक दूसरेसे मिलते हैं, और **[अन्योऽन्यस्य]** परस्पर एक दूसरेको **[अवकाशं]** स्थानदान **[ददन्ति]** देते हैं कोई भी द्रव्य किसी द्रव्यको बाधा नहीं देता **[अपि च]** और **[नित्यं]** सदाकाल **[मिलन्ति]** मिलते रहते हैं अर्थात् परस्पर एक क्षेत्रावगाहरूप मिलते हैं, तथापि **[स्वकं]** आत्मीक शक्तिरूप **[स्वभावं]** परिणामोंको **[न विजहन्ति]** नहीं छोड़ते हैं। **भावार्थ**—यद्यपि छहों द्रव्य एक क्षेत्रमें रहते हैं, तथापि अपनी सत्ताको कोई भी द्रव्य छोड़ता नहीं है।

---

१ अर्हद्देवर्षिस्वरूप दृ. २ स्था द्रव्या।

करूपत्वं वस्तुनो भवतीत्येकरूपत्वं सविश्वरूपाया प्रतिपर्यायनियताभिरेव सत्ताभिः प्रतिनियतैकपर्यायाणामानन्त्यं भवतीत्येकपर्यायत्वमनन्तपर्याया । इति सर्वमनवद्यम्

अवान्तरसत्ता प्रतिपक्ष इति शुद्धसंग्रहनयविवक्षायामेका महासत्ता अशुद्धसंग्रहनयविवक्षायां व्यवहारनयविवक्षायां वा सर्वपदार्थसविश्वरूपाद्यवान्तरसत्ता सप्रतिपक्षव्याख्यानं सर्वं नैगमनयापेक्षया ज्ञातव्यं । एवं नैगमसंग्रहव्यवहारनयत्रयेण सत्ताव्याख्यानं योजनीयं, यथैका महासत्ता शुद्धसंग्रहनयेन, सर्वपदार्थाद्यवान्तरसत्ता व्यवहारनयेनेति नयद्वयव्याख्यानं कर्तव्यं । अत्र शुद्ध

कथंचित्प्रकार सत्ताकी अपेक्षासे एकता है । सत्ता वही है जो नित्यानित्यात्मक है । उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक जो है वह सकल विस्तारलिये पदार्थोंमें सामान्य कथनके करनेसे सत्ता एक है समस्त पदार्थोंमें रहती है, क्योंकि 'पदार्थ है' ऐसा जो कथन है और 'पदार्थ है' ऐसी जो जाननेकी प्रतीति है सो उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है । उसीसे सत्ता है । यदि सत्ता नहीं होय तो पदार्थोंका अभाव होजाय, क्योंकि सत्ता मूल है, और जितना कुछ समस्त वस्तुका विस्तार स्वरूप है, सो भी सत्तासे गर्भित है । और अनन्त पर्यायोंके जितने भेद हैं, उतने सब इन उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप भेदोंसे जाने जाते हैं । यह ही सामान्यस्वरूप सत्ता विशेषताकी अपेक्षासे प्रतिपक्ष लिये है । इस कारण सत्ता दो प्रकारकी है, अर्थात् महासत्ता और अवान्तर सत्ता । जो सत्ता उत्पादव्ययध्रौव्यरूप त्रिलक्षणसंयुक्त है, और एक है, तथा समस्त पदार्थोंमें रहती है, समस्तरूप है, और अनन्तपर्यायात्मक है सो तो महासत्ता है और जो इसकी ही प्रतिपक्षिणी है, सो अवान्तरसत्ता है । सो यह महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है । उत्पादादि तीन लक्षण गर्भित नहीं है, अनेक है एक पदार्थमें रहती है, एक स्वरूप है, एक पर्यायात्मक है इस प्रकार प्रतिपक्षिणी अवान्तरसत्ता जाननी । इन दोनोंमेंसे जो समस्त पदार्थोंमें सामान्यरूपसे व्याप रही है, वह तो महासत्ता है । और जो दूसरी है सो अपने एक एक पदार्थके स्वरूपमें निश्चिन्त विशेषरूप वर्त्त है इस कारण उसे अवान्तरसत्ता कहते हैं । महासत्ता अवान्तर सत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है अवान्तर सत्ता महासत्ताकी अपेक्षासे असत्ता है इसी प्रकार सत्ताकी असत्ता है उत्पादादि तीन लक्षणसंयुक्त जो सत्ता है, वह ही तीन लक्षणसंयुक्त नहीं है । क्योंकि जिस स्वरूपसे उत्पाद है, उसकर उत्पाद ही है, जिस स्वरूपकर व्यय है, उसकर व्ययही है, जिस स्वरूपकर ध्रौव्यता है, उसकर ध्रौव्य ही है इस कारण उत्पादव्ययध्रौव्य जो वस्तुके स्वरूप हैं, उनमें एक एक स्वरूपको उत्पादादि तीन लक्षण नहीं होते इसी कारण तीन लक्षणरूप सत्ताके तीन लक्षण नहीं हैं और उस ही महासत्ताको अनेकता है, क्योंकि भिन्न भिन्न पदार्थोंमें जो सत्ता है उससे पदार्थोंका निश्चय होता है । इस कारण सर्वपदार्थोंकरि महासत्ता, फिर २ एक पदार्थकी अपेक्षासे एक एक पदार्थों लिये है,

च लक्ष्यलक्षणभावादिभ्य कथंचिद्भेदेऽपि वस्तुत सत्ताया अपृथग्भूतत्वेति मैनत्यम् । ततो यत्पूर्व सत्त्वमसत्त्व त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकत्वमनेकत्व सर्वपदार्थस्थितत्वमेकपदार्थस्थितत्व विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्व च प्रतिपादित सत्ताया स्तत्सर्वं तदनर्थान्तरभूतस्य द्रव्यस्यैव द्रष्टव्य । ततो न कश्चिदपि तेषु सत्ताविशेषोऽवशिष्येत य सत्ता वस्तुतो द्रव्यात्पृथक् व्यवस्थापयेदिति ॥ ९ ॥

अत्र त्रेधा द्रव्यलक्षणमुक्तम्,—

दव्व सल्लक्खणिय उप्पादव्वयधुवत्तसजुत्त ।
गुणपज्जयासय वा ज त भण्णति सव्वण्हू ॥ १० ॥

द्रव्य सल्लक्षणक उत्पादव्ययध्रुवत्वसयुक्त ।
गुणपर्यायाश्रय वा यत्तद्भणन्ति सर्वज्ञा ॥ १० ॥

सद्द्रव्यलक्षणमुक्तलक्षणाया सत्ताया अविशेषाद्द्रव्यस्य सत्स्वरूपमेव लक्षणम्, नचानेकान्तात्मकस्य द्रव्यस्य सन्मात्रमेव स्वरूप । यतो लक्ष्यलक्षणविभाग-

यनयेन । यत एव सत्तालक्षणप्रयोजनादिभेदपि निश्चयनयेन सत्ताया द्रव्यमभिन्न तत एव पूर्व गाथाया यत्सत्तालक्षण कथित सर्वपदार्थस्थितत्व एकपदार्थस्थितत्व विश्वरूपत्वमेकरूपत्वमनन्तपर्यायत्वमेकपर्यायत्व त्रिलक्षणत्वमत्रिलक्षणत्वमेकरूपत्वमनेकरूपत्व चेति तत्सर्व लक्षण सत्ताया अभिन्नत्वात् द्रव्यस्यैव द्रष्टव्यमिति सूत्रार्थ ॥ ९ ॥ एव द्वितीयस्थले सत्ताद्रव्ययोरभेदस्य द्रव्य शब्दस्य व्युत्पत्तिश्चेति कथनरूपेण गाथा गता । अथ त्रेधा द्रव्यलक्षणमुपदिशति,—दव्व सलक्खणीय द्रव्य सत्तालक्षण द्रव्यार्थिकनयेन बोद्ध प्रति उप्पादव्वयधुवत्तसजुत्त उत्पा

परस्पर अभेद है । लक्ष्य वह होता है कि जो वस्तु जानी जाय लक्षण वह होता है कि जिसकेद्वारा वस्तु जानी जाय द्रव्य लक्ष्य है सत्ता लक्षण है । लक्षणसे लक्ष्य जाना जाता है । जैसे उष्णतालक्षणसे लक्ष्यस्वरूप अग्नि जानी जाती है । तैसे ही सत्ता लक्षणके द्वारा द्रव्य लक्ष्य लखिये है अर्थात् जाना जाता है । इस कारण पहिले जो सत्ताके लक्षण अस्तित्वस्वरूप, नास्तित्वस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूप, तीनलक्षणस्वरूपसे रहित, एकस्वरूप और अनेकस्वरूप, सकलपदार्थव्यापी और एक पदार्थव्यापी, सकल रूप और एकरूप, अनन्तपर्यायरूप और एकपर्यायरूप इस प्रकार कहे थे, वे सब ही पृथक् नहीं हैं, एक स्वरूप ही हैं । यद्यपि वस्तुस्वरूपको दिखानेके लिये सत्ता और द्रव्यमें भेद कहते हैं तथापि वस्तुस्वरूपसे विचार किया जाय तो कोइ भेद नहीं है । जैसे उष्णता और अग्नि अभेदरूप हैं ॥ ९ ॥ आगे द्रव्यके तीन प्रकार लक्षण दिखाते हैं,—**[यत्]** जो **[सल्लक्षणक]** सत्ता है लक्षण जिसका ऐसा है **[तत्]** उस वस्तुको **[सर्वज्ञा]** सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं वे **[द्रव्य]** द्रव्य **[भणन्ति]** कहते हैं **[वा]** अथवा **[उत्पादव्ययध्रुवत्वसयुक्त]** उत्पादव्ययध्रौव्यसयुक्त द्रव्यका

१ संज्ञालक्षणप्रयोजनेन २ परमार्थत ३ ज्ञातव्य अवबोद्धव्य वा ४ द्रव्यम् ।

श्चोत्पादव्ययध्रौव्यत्रचेति । सद्धि नित्यानित्यस्वभावत्वाद्ध्रुवत्वमुत्पादव्ययात्मकताञ्च प्रथ यति । ध्रुवत्वात्मकैर्गुणैरुत्पादव्ययाद् व्ययात्मकै पर्यायैश्च सहैकत्वञ्चाख्याति । उत्पा दव्ययध्रौव्याणि तु नित्यानित्यस्वरूप परमार्थं सदावेदयन्ति । गुणपर्यायाश्चात्मलाभनि बन्धनभूतान् प्रथयन्ति । गुणपर्यायास्त्वन्वयव्यतिरेकित्वाद्ध्रौव्योत्पत्तिविनाशान् सूचयन्ति, नित्यानित्यस्वभाव परमार्थं सच्चोपलक्षयन्ति ॥ १० ॥

त्युक्ते सत्युत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणत्व सत्तालक्षण च नियमेन लभ्यते । एकस्मिन्लक्षणेऽभिहिते सत्यन्यलक्षणद्वय कथ लभ्यत इति चेत् त्रयाणा लक्षणाना परस्पराविनाभावित्वादिति । अत्र मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धसत्तालक्षण अगुरुलघुत्वपट्स्थानि वृद्धिरूपेण शुद्धोत्पादव्ययध्रौव्यलक्षण अकृत्रिमानन्तगुणलक्षण सहजशुद्धसिद्धपर्यायलक्षण च शुद्धजीवास्तिकायसज्ञ शुद्धजीवद्रव्यमुपादेयमिति भावार्थ । क्षणिकैकान्तरूप बौद्धमत नित्यैकान्तरूप सांख्यमत उभयैकान्तरूप नैयायिकमत मीमांसकमत च सर्वत्र मतान्तरव्याख्यानकाले ज्ञातव्य । क्षणिकैकान्ते किं दूषण? येन घटादिक्रिया प्रारब्धा स तस्मिन्नेव क्षणे गत क्रियानिष्पत्तिर्नास्तीत्यादि । नित्यैकान्ते च योऽसौ तिष्ठति स तिष्ठत्येव सुखी सुख्येव दु खी दु ख्येवेत्यादिकौटस्थ्यनित्यत्वेन पर्यायान्तरं न घटते, परस्परनिरपेक्षद्रव्यपर्यायोभयैकान्ते पुन पूर्वोक्तदूषणद्वयमपि प्राप्नोति । जैनमते पुन परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायत्वान्नास्ति दूषण ॥ १० ॥ इति तृतीयस्थले द्रव्यस्य सत्तालक्षणत्रयसूचन

करके विनाशीक हैं वे पर्याय हैं । ये द्रव्योंमें गुण और पर्याय कथंचित् प्रकारसे अभेद रूप हैं और कथंचित्प्रकार भेदलिये हैं संज्ञादि भेदकर तो भेद है, वस्तुत अभेद है । यह जो पहिले ही तीन प्रकार द्रव्यके लक्षण कहे, उनमेंसे जो एक ही कोई लक्षण कहा जाय तो शेषके दो लक्षण भी उसमें गर्भित हो जाते हैं । यदि द्रव्यका लक्षण सत् कहा जाय तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य और गुणपर्यायवान् दोनों ही लक्षण गर्भित होते हैं क्योंकि जो 'सत्' है सो नित्य अनित्यस्वरूप है नित्य स्वभावमें ध्रौव्यता आती है अनित्य स्वभावमें उत्पाद और व्यय आता है । इस प्रकार उत्पादव्यय ध्रौव्य सत्लक्षणके कहनेसे आते हैं और गुणपर्याय लक्षण भी आता है गुणोंके कहनेसे ध्रौव्यता आती है और पर्यायके कहनेसे उत्पाद व्यय आते हैं । और इसी प्रकार उत्पाद व्ययध्रौव्य लक्षण कहनेसे सत्लक्षण आता है गुणपर्याय लक्षण भी आता है और गुणपर्याय द्रव्यका लक्षण कहनेसे सत्लक्षण आता है और उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण भी आता है क्योंकि–द्रव्य नित्य अनित्यस्वरूप है लक्षण नित्य अनित्य स्वभावको सूचन करता है इस कारण इन तीनों ही लक्षणोंमें सामान्य विशेषताकरके तो भेद है वस्तुतासे कुछ भी भेद नहीं है ॥ १० ॥ आगे द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदकर

[illegible]

स्कथंचिद् भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति ॥ १२ ॥

अत्र द्रव्यगुणानामभेदो निर्दिष्टः —

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि ।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥ १३ ॥

द्रव्येण विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति ।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात् ॥ १३ ॥

पुद्गलपृथग्भूतस्पर्शरसगन्धवर्णवद्द्रव्येण विना न गुणाः संभवन्ति । स्पर्शरसगन्धवर्णपृथग्भूतपुद्गलवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति । ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशात् कथंचिद्भेदेऽप्ये

शुद्धपर्यायादभिन्न शुद्धजीवास्तिकायोऽसौ शुद्धजीवद्रव्य शुद्धनिश्चयनयेनोपादेयमिति भावार्थः ॥ १२ ॥ यस्मिन् वाक्ये तथाशब्दोच्चारण नास्ति तत्र नयशब्दो व्यवहार कर्तव्य क्रियाकारकयोरन्यतराध्याहारवत् स्यात्शब्दाध्याहारवद्वा । अथ द्रव्यगुणानां निश्चयनयेनाभेदं समर्थयति;— **दव्वेण विणा ण गुणा** पुद्गलरहितवर्णादिवद्द्रव्येण विना गुणा न सन्ति **गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि** वर्णादिगुणरहितपुद्गलद्रव्यवद्गुणैर्विना द्रव्यं न संभवति **अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा** द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात् एककालोत्पादव्ययाविनाभावित्वेनाभिन्नकालत्वात् एकस्वरूपत्वेनाभिन्नभावत्वादिति, यस्मात् द्रव्यक्षेत्रकालभावरभेदस्तस्मात् अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति । कोसौ । भावस्सत्तास्तित्व । केषां । द्रव्यगुणानां । अथवा द्वितीयव्याख्यान—अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति । स कः । भावः पदार्थो वस्तु । केषां संबन्धित्वेन । द्रव्यगुणानां, इत्यनेन द्रव्यगुणात्मकः पदार्थ इत्युक्तं भवति । निर्विकल्पसमाधिबलेन जातसुखरूप वीतरागसहजपरमानन्दसुखरसे

द्रव्यपर्यायोंमेंसे एकका अभाव होनेसे दोनोंका अभाव होता है इसकारण इन दोनोंमें एकता (अभेद) माननी योग्य है ॥ १२ ॥ आगे द्रव्य और गुणमें अभेद दिखाते हैं,—[**द्रव्येण विना**] सत्तामात्र वस्तुके बिना [**गुणाः**] वस्तुओंके जनानेवाले सहभूतलक्षणरूप गुण [**न सम्भवन्ति**] नहीं होते [**गुणैः विना**] गुणोंके बिना [**द्रव्यं**] द्रव्य [**न सम्भवति**] नहीं होता [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**द्रव्यगुणानां**] द्रव्य और गुणोंका [**अव्यतिरिक्तः**] जुदा नहीं है ऐसा [**भावः**] स्वरूप [**भवति**] होता है । **भावार्थ**—द्रव्य और गुणोंकी एकता (अभिन्नता) है अर्थात् गुण द्रव्यसे जुदे स्पर्श रस गंध वर्ण नहीं पाये जाते सो ऐसा न विचारना कि [illegible] जाता है । जैसे एक [illegible] (आमफल) द्रव्य है और उसमें स्पर्श रस गंध वर्ण गुण हैं [illegible] स्पर्शादि गुण हैं उसका अभाव हो जाय क्योंकि [illegible] बिना गुण कहांसे होय [illegible] और जो [illegible] गुण नहीं होय तो

[illegible]

अत्र द्रव्यपर्यायाणामभेदो निर्दिष्टः,—

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्ता य पज्जया णत्थि ।
दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूविंति ॥ १२ ॥

पर्ययवियुतं द्रव्यं द्रव्यवियुक्ताश्च पर्याया न सन्ति ।
द्वयोरनन्यभूतं भावं श्रमणाः प्ररूपयन्ति ॥ १२ ॥

दुग्धदधिनवनीतघृतादिवियुतगोरसवत्पर्यायवियुतं द्रव्यं नास्ति । गोरसवियुक्तदुग्धदधिनवनीतघृतादिवद्द्रव्यवियुक्ताः पर्य्याया न सन्ति । ततो द्रव्यस्य पर्य्यायाणाञ्चादेशवशा

पपर्यायेण परिणतं सहितं शुद्धजीवास्तिकायमत्र शुद्धजीवद्रव्यमेवोपादेयमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ११ ॥ एवं द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकलक्षणनयद्वयव्याख्यानेन सूत्रं गतं । अथ द्रव्यपर्यायाणां निश्चयनयेनाभेदं दर्शयति,—**पज्जयरहियं दव्वं** दधिदुग्धादिपर्यायरहितगोरसवत्पर्यायरहितं द्रव्यं नास्ति **दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि** गोरसरहितदधिदुग्धादिपर्यायवत् द्रव्यविमुक्ता द्रव्यविरहिताः पर्याया न सन्ति **दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परूवेंति** यत एवमभेदनयेन द्रव्यपर्याययोर्भेदो नास्ति तत एव कारणात् द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं सत्तामस्तित्वस्वरूपं प्ररूपयन्ति । कथयन्ति । श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञा इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं–द्वयोर्द्रव्यपर्याययोरनन्यभूतमभिन्नभावं पदार्थं वस्तु श्रमणाः प्ररूपयन्ति । भावशब्देन कथं पदार्थो भण्यत इति चेत् । द्रव्यपर्यायात्मको भावः पदार्थो वस्त्विति वचनात् । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायादभिन्न

है और पर्यायार्थिकनयसे उपजै और विनशै भी है । इस प्रकार द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो नयोंके भेदसे द्रव्यस्वरूप निराबाध सधै है । ऐसा ही अनेकान्तरूप द्रव्यका स्वरूप मानना योग्य है ॥ ११ ॥ आगे–यद्यपि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंके भेदसे द्रव्यमें भेद है तथापि अभेद दिखाते हैं;—[**पर्ययवियुतं**] पर्यायरहित [**द्रव्यं न**] द्रव्य (पदार्थ) नहीं है [**च**] और [**द्रव्यवियुक्ताः**] द्रव्यरहित [**पर्यायाः**] पर्याय [**न सन्ति**] नहीं हैं [**श्रमणाः**] महामुनि जे हैं ते [**द्वयोः**] द्रव्य और पर्यायका [**अनन्यभूतं भावं**] अभेद स्वरूप [**प्ररूपयन्ति**] कहते हैं । **भावार्थ—** जैसे गोरस अपने दूध दही घी आदिक पर्यायोंसे जुदा नहीं है, उसी प्रकार द्रव्य अपनी पर्यायोंसे जुदा (पृथक्) नहीं है और पर्याय भी द्रव्यसे जुदे नहीं हैं इसी प्रकार द्रव्य और पर्यायकी एकता है यद्यपि कथंचित् प्रकार कथनकी अपेक्षा समभावोंकरिके भेद है तथापि वस्तुस्वरूपके विचारते भेद नहीं है क्योंकि द्रव्य और पर्यायका परस्पर एक अस्तित्व है जो द्रव्य न होय तो पर्यायका अभाव हो जाय और पर्याय नहीं होय तो द्रव्यका अभाव हो जाय । जिस प्रकार दुग्धादि पर्यायके अभावसे गोरसका अभाव है और गोरसके अभावसे दुग्धादि पर्यायोंका अभाव होता है इसीप्रकार द्रव्य दोनों

१ निश्चयनयेन २ सत्ताम् ३ द्रव्यार्थिक ।

स्कथचिद् भेदेऽप्येकास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनाम् वस्तुत्वेनाभेद इति ॥ १२ ॥

अत्र द्रव्यगुणानामभेदो निर्दिष्ट —

दव्वेण विणा ण गुणा गुणेहिं दव्वं विणा ण सम्भवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा ॥ १३ ॥

द्रव्येण विना न गुणा गुणैर्द्रव्यं विना न सम्भवति।
अव्यतिरिक्तो भावो द्रव्यगुणानां भवति तस्मात् ॥ १३ ॥

पुद्गलमूर्तस्पर्शरसगन्धवर्णवद्द्रव्येण विना न गुणाः सम्भवन्ति । स्पर्शरसगन्धवर्णपृथग्भूतपुद्गलवद्गुणैर्विना द्रव्यं न सम्भवति । ततो द्रव्यगुणानामप्यादेशात् कथंचिद्भेदेऽप्ये

शुद्धपर्यायादभिन्न शुद्धजीवास्तिकायसंज्ञं शुद्धजीवद्रव्यं शुद्धनिश्चयनयेनोपादेयमिति भावार्थः ॥ १२ ॥ यस्मिन् वाक्ये नयसंज्ञोच्चारणं नास्ति तत्र नययोर्मन्दव्यवहारः कर्तव्य क्रियाकारकयोरन्यतराध्याहारवत् स्याच्छब्दाध्याहारवद्वा । अथ द्रव्यगुणानां निश्चयनयेनाभेदं समर्थयति;— **दव्वेण विणा ण गुणा** पुद्गलरहितवर्णादिवद्द्रव्येण विना गुणा न सन्ति **गुणेहिं दव्वं विणा ण सम्भवदि** वर्णादिगुणरहितपुद्गलद्रव्यवद्गुणैर्विना द्रव्यं न सम्भवति **अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा** द्रव्यगुणयोरभिन्नसत्तानिष्पन्नत्वेनाभिन्नद्रव्यत्वात् अभिन्नप्रदेशनिष्पन्नत्वेनाभिन्नक्षेत्रत्वात् एककालोत्पादव्ययाविनाभावित्वेनाभिन्नकालत्वात् एकस्वरूपत्वेनाभिन्नभावत्वादिति, यस्मात् द्रव्यक्षेत्रकालभावैरभेदस्तस्मात् अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति । कोसौ । भावस्सत्तास्तित्वं । केषां । द्रव्यगुणानां । अथवा द्वितीयव्याख्यानं—अव्यतिरिक्तो भवत्यभिन्नो भवति । स कः । भावः पदार्थो वस्तु । केषां संबंधित्वेन । द्रव्यगुणानां, इत्यनेन द्रव्यगुणात्मकः पदार्थ इत्युक्तं भवति । निर्विकल्पसमाधिबलेन जातसुखस्य वीतरागसहजपरमानन्दसुखर

द्रव्यपर्यायोंमेंसे एकका अभाव होनेसे दोनोंका अभाव होता है इसकारण इन दोनोंमें एकता (अभेद) माननी योग्य है ॥ १२ ॥ आगे द्रव्य और गुणमें अभेद दिखाते हैं,—[**द्रव्येण विना**] सत्तामात्र वस्तुके विना [**गुणाः**] वस्तुओंके जनानेवाले सहभूलक्षणरूप गुण [**न सम्भवन्ति**] नहीं होते [**गुणैः विना**] गुणोंके विना [**द्रव्यं**] द्रव्य [**न सम्भवति**] नहीं होता [**तस्मात्**] तिस कारणसे [**द्रव्यगुणानां**] द्रव्य और गुणोंका [**अव्यतिरिक्तः**] जुदा नहीं है ऐसा [**भावः**] स्वरूप [**भवति**] होता है । **भावार्थ**—द्रव्य और गुणोंकी एकता (अभिन्नता) है अर्थात् पुद्गलसे जुदे स्पर्श रस गंध वर्ण नहीं पाये जाते सो दृष्टान्त विशेषता कर दिखाया जाता है । जैसे एक आम (आमफल) द्रव्य है और उसमें स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं जो आमफल न होय तो जो स्पर्शादि गुण हैं उनका अभाव हो जाय क्योंकि आधारविना गुण कहांसे होय ? और जो स्पर्शादि गुण नहीं होय तो

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ निश्चयनयेन।

कास्तित्वनियतत्वादन्योन्याजहद्वृत्तीनां वस्तुत्वेनाभेद इति ॥ १३ ॥

अत्र द्रव्यस्यादेशवशेनोक्ता सप्तभङ्गी,—

सिय अत्थि णत्थि उहयं अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं ।
दव्वं खु सत्तभंगं आदेसवसेण सम्भवदि ॥ १४ ॥

स्यादस्ति नास्त्युभयमवक्तव्यं पुनश्च तत्त्रितयं ।
द्रव्यं खलु सप्तभङ्गमादेशवशेन सम्भवति ॥ १५ ॥

स्यादस्ति द्रव्यं स्यान्नास्ति द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति च द्रव्यं स्यादवक्तव्यं द्रव्यं स्यादस्ति चावक्तव्यं स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च द्रव्यं स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यमिति । अत्र सर्वथात्वनिषेधकोऽनैकान्तिको द्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो

विशुपलब्धिप्रतीत्यनुभूतिरूपं यत्स्वसंवेदनज्ञानं तेनैव परिच्छेद्यं प्राप्यं रागादिविभावरहितस्वजात्यजा- लश्च यमपि केवलज्ञानादिगुणसमूहेन भरितावस्थं यत् शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं शुद्धात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्यातव्यं तदेव वचसा वक्तव्यं कायेन तदनुकूलानुष्ठानं कर्तव्यमिति सूत्रतात्प- र्यार्थं ॥ १३ ॥ एवं गुणपर्यायरूपलक्षणप्रतिपादनरूपेण गाथाद्वयं । इति पूर्वसूत्रेण सह गाथात्रयसमुदायेन चतुर्थस्थलं गतं । अथ सर्वविप्रतिपत्तीनां निराकरणाय प्रमाणसप्तभंगी क- थ्यते । "एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः । सदादिकल्पना या च सप्तभङ्गीति सा मता ॥" **सिय अत्थि** स्यादस्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया अस्तीत्यर्थः १ **सियणत्थि** स्यान्नास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तीत्यर्थः २ **सिय अत्थिणत्थि** स्यादस्तिनास्ति स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतु ष्टयापेक्षया अस्तिनास्तीत्यर्थः ३ **सिय अवत्तव्व** स्यादवक्तव्यं स्यात्कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण

आमका (आम्रफलका) अभाव होय क्योंकि गुणके विना आमका अस्तित्व कहां ? अपने गुणोंकर ही आमका अस्तित्व है इसी प्रकार द्रव्य और गुणकी एकता (अभे- दता) जाननी यद्यपि किसी ही एक प्रकारसे कथनकी अपेक्षा द्रव्य और गुणमें भेद भी है, तथापि वस्तुस्वरूपकर तो अभेद ही है ॥ १३ ॥ आगे जिसकेद्वारा द्रव्यका स्वरूप निराबाध सधता है, ऐसी स्यात्पदगर्भित जो सप्तभङ्गिवाणी है, उसका स्वरूप दिखाया जाता है,—[**खलु**] निश्चयसे [**द्रव्यं**] अनेकान्तस्वरूप पदार्थ [**आदे शवशेन**] विवक्षाके वशसे [**सप्तभङ्गं**] सातप्रकारसे [**सम्भवति**] होता है । वे सात प्रकार कौन कौनसे हैं सो कहते हैं,—[**स्यात् अस्ति**] किस ही एक प्रकार अस्तिरूप है [**स्यात् नास्ति**] किस ही एक प्रकार नास्तिरूप है [**उभयं**] किस ही एक प्रकार अस्तिनास्ति रूप है [**अवक्तव्यं**] किस ही एक प्रकार वचन नहीं है [**पुनश्च**] फिर भी [**तत् त्रितयं**] वे ही आदिके तीनों भंग

निपात । तथैं स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्टमस्ति द्रव्य । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैरादिष्ट नास्ति द्रव्य । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावै परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च क्रमेणादिष्टमस्ति च नास्ति च द्रव्य स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावै परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपदादिष्टमवक्तव्य द्रव्य । स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैयुगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्टमस्ति चावक्तव्यम् द्रव्यं । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चादिष्ट नास्ति चावक्तव्य द्रव्यं ।

युगपद्वक्तुमशक्यत्वात् 'क्रमप्रवृत्तिभारती' इति वचनात् युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया वक्तव्यमित्यर्थ ४ पुणोवि तत्तिदय पुनरपि तद्वितय 'सिय अत्थि अवत्तव्व' स्यादस्त्यवक्तव्य स्यात्कथचिद्विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्त्यवक्तव्य मित्यर्थ ५ 'सियणत्थि अवत्तव्व' स्यान्नास्त्यवक्तव्य स्यात्कथचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थ सिय अत्थिणत्थि अवत्तव्व' स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्य स्यात्कथचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया च अस्ति नास्त्यवक्तव्यमित्यर्थ ७ सभवदि संभवति । कि कर्तृ । दव्व द्रव्य खु स्फुट । कथभूत । सत्तभग सप्तभग । केन । आदेसवसेण

अवक्तव्यसे कहिये हैं प्रथम ही-[स्यात् अस्ति अवक्तव्य] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्तिरूप अवक्तव्य है दूसरा भग—[स्यात् नास्ति अवक्तव्य] किसी एक प्रकार द्रव्य नास्तिरूप अवक्तव्य है और तीसरा भग—[स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य] किस ही एक प्रकार द्रव्य अस्ति नास्तिरूप अवक्तव्य है । ये सप्तभङ्ग द्रव्यका स्वरूप दिखानेकेलिये वीतरागदेवने कहे हैं । यही कथन विशेषताकर दिखाया जाता है । १ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव इस अपने चतुष्टयकी अपेक्षा तो द्रव्य अस्तिस्वरूप है अर्थात् आपसा है ॥ २ परद्रव्य परक्षेत्र परकाल और परभाव इस परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य नास्ति स्वरूप है अर्थात् परसदृश नहीं है । ३ उपर्युक्त स्वचतुष्टय परचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य क्रमसे तीन कालमें अपने भावोंकर अस्तिनास्ति स्वरूप है अर्थात् आपसा है परसदृश नहीं है । ४ और स्वचतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य एक ही काल वचनगोचर नहीं है इस कारण अवक्तव्य है अर्थात् कहनेमें नहीं आता ५ और वही स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षासे द्रव्य अस्तिस्वरूप कहिये तथापि अवक्तव्य है । ६ और वही द्रव्य परचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही काल स्वपरचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति स्वरूप है तथापि कहा जाता नहीं । ७ और वही द्रव्य स्वचतुष्टयकी अपेक्षा और परचतुष्टयकी अपेक्षा और एक ही बार

[illegible]

न चापि गोरसव्यतिरिक्तस्यार्थान्तरस्यासत उत्पाद किंतु गोरसस्यैव सदुच्छेदमनुत्पा दश्चानुपलभ्यमानस्य स्पर्शरसगन्धवर्णादिषु परिणामिषु गुणेषु पूर्वावस्थया विनश्यत्सूत्तरावस्थया प्रादुर्भवत्सु नश्यति च नवनीतपर्यायो घृतपर्याय उत्पद्यते तथा सर्वभावानामपीति ॥ १५ ॥

अत्र भावगुणपर्याया प्रज्ञापिता,–

भावा जीवादीया जीवगुणा चेदणा य उवओगो ।
सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा ॥ १६ ॥

भावा जीवाद्या जीवगुणाश्चेतना चोपयोग ।
सुरनरनारकतिर्यञ्चो जीवस्य च पर्याया बहव ॥ १६ ॥

भावा हि जीवादय षड् पदार्थो । तेषाम् गुणा पर्यायाश्च प्रसिद्धा । तथापि जीवस्य वक्ष्यमाणोदाहरणप्रसिद्ध्यर्थमभिधीयन्ते । गुणा हि जीवस्य ज्ञानानुभूति

मानमायालोभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपनिदानबन्धादिपरभावशून्यमपि उत्पादव्ययरहितेन वा पाठ । आचरणरहितेन चिदानन्दैकस्वभावेन भरितावस्थ शुद्धजीवास्तिकायाभिधान शुद्धात्मद्रव्य ध्यातव्यमित्यभिप्राय ॥ १५ ॥ इति द्वितीयसप्तकमध्ये प्रथमस्थले बौद्ध प्रति द्रव्यस्थापनार्थ सूत्रगाथा गता । अथ पूर्वगाथोक्तान् गुणपर्यायभावान् प्रज्ञापयति;—**भावा जीवादीया** भावा पदार्था भवन्ति । कानि । जीवादिषड्द्रव्याणि, धर्मादिचतुर्द्रव्याणा गुणपर्यायानग्रे यथा स्थान विशेषेण कथयति, अत्र तावत् जीवगुणा अभिधीयन्ते **जीवगुणा चेदणा य उव ओगो** जीवगुणा भवन्ति । के ते । शुद्धाशुद्धरूपेण द्विविधा चेतना ज्ञानदर्शनोपयोगौ चेति

गोरस अपने द्रव्यत्वकर उपजता विनशता नहीं है–अन्यद्रव्यरूप होकर नहीं परणमता है आपसरीखा ही है, परतु उसी गोरसमें दधि, माखन, घृतादि, पर्याय उपजै विनशै हैं, वे अपने स्पर्श रस गध वर्ण गुणोंके परिणमनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाते हैं इसी प्रकार द्रव्य अपने स्वरूपसे अन्यद्रव्यरूप होकरके नहीं परिणमता है सदा आपसरीखा है अपने २ गुण परिणामनसे एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें हो जाता है, इस कारण उपजन विनशने कहे जाते हैं ॥ १५ ॥ आगे षट्द्रव्योंके गुणपर्याय कहते हैं,—[भावा] पदार्थ [जीवाद्याः] जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल ये छै जानने । इन षट् द्रव्योंके जो गुणपर्याय हैं, वे सिद्धांतमें प्रसिद्ध हैं, तथापि इनमें जीवनामा पदार्थ प्रधान है । उसका स्वरूप आगे कहिये असाधारण लक्षण कहा जाता है [जीवगुणा चेतना च उपयोग] और द्रव्यका निज लक्षण एक तो शुद्धाशुद्ध अनुभूतिरूप चेतना है और दूसरा–शुद्धाशुद्ध

१ अनन्तरूप २ 'चेतना' ४ ।

लक्षणा शुद्धचेतना, कार्यानुभूतिलक्षणा कर्मफलानुभूतिलक्षणा चाशुद्धचेतना, चै तन्यानुविधायिपरिणामलक्षण सविकल्पनिर्विकल्परूप शुद्धाशुद्धतया सकलविकलता

समुदायवाक्य वार्तिक समुदायकथन तात्पर्यार्थकथन मपिंडितार्थकथनमिति यावत्। तद्यथा। ज्ञान-चेतना शुद्धचेतना भण्यते, कर्मचेतना कर्मफलचेतना अशुद्धा भण्यते सा त्रिप्रकारापि चेतना अग्रे चेतनाधिकारे विस्तरेण व्याख्यायते। इदानीमुपयोग कथ्यते। सविकल्पो ज्ञानोपयोगो निर्विकल्पो दर्शनोपयोग । ज्ञानोपयोगोऽष्टधा, मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानानीति सज्ञानपञ्चक कु मतिकुश्रुतविभगरूपेणाज्ञानत्रयमित्यष्टधा ज्ञानोपयोग । तत्र केवलज्ञान क्षायिक निरावरणत्वात् शुद्ध, शेषाणि सप्त मतिज्ञानादीनि क्षायोपशमिकानि सावरणत्वादशुद्धानि। दर्शनोपयोगश्चक्षुरचक्षु रवधिकेवलदर्शनरूपेण चतुर्धा। तत्र केवलदर्शन क्षायिक निरावरणत्वात् शुद्ध, चक्षुरादित्रय क्षायोपशमिक सावरणत्वादशुद्ध। इदानी जीवपर्याया कथ्यन्ते **सुरणरणारयतिरिया जीवस्स य पज्जया बहुगा** सुरनरनारकतिर्यंचो जीवस्य विभावद्रव्यपर्याया बहवो भवन्ति। किंच। द्विधा पर्याया द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च। द्रव्यपर्यायलक्षण कथ्यते---अनेकद्रव्यात्मिकाया ऐक्यप्रतिपत्तेर्निबन्धनकारणभूता द्रव्यपर्याय अनेकद्रव्यात्मिकैकपर्यायवत्। स च द्रव्यपर्यायो द्विविध समानजातीयोऽसमानजातीयश्चेति। समानजातीय कथ्यते---द्वे त्रीणि वा चत्वारीत्यादिपरमाणु पुद्गलद्रव्याणि मिलित्वा स्कन्धा भवन्तीत्यचेतनस्यापरेणाचेतनेन सबधात्समानजातीयो भण्यते। असमानजातीय कथ्यते---जीवस्य भवान्तरगतस्य शरीरनोकर्मपुद्गलेन सह मनुष्यदेवादिपर्यायो भवति चेतनजीवस्याचेतनपुद्गलद्रव्येण सह मेलापकादसमानजातीय द्रव्यपर्यायो भण्यते। एते समानजातीया असमानजातीयाश्च अनेकद्रव्यात्मिकैकरूपा द्रव्यपर्याया जीवपुद्गलयोरेव भवन्ति अशुद्धा एव भवन्ति। कस्मादिति चेत्। अनेकद्रव्याणा परस्परसश्लेषरूपेण सबधात्। धर्मा

चैतन्यपरिणामरूप उपयोग है ये जीवद्रव्यके गुण हैं [च] फिर [जीवस्य] जीवके [बहव] नानाप्रकारके [सुरनरनारकतिर्यञ्च पर्याया] देवता मनुष्य नारकी तिर्यञ्च ये अशुद्धपर्याय जानने। **भावार्थ**---जीव द्रव्यके दो लक्षण हैं एक तो चेतना है दूसरा उपयोग है। अनुभूतिका नाम चेतना है। वह अनुभूति ज्ञान कर्म कर्मफलके भेदसे तीन प्रकारकी है। जो ज्ञानभावस्वरूपका वेदना सो तो **ज्ञानचेतना** है और जो कर्मका वेदना सो **कर्मचेतना** है और कर्मफलका वेदना सो **कर्मफलचेतना**। शुद्धाशुद्धभावकी साक्षी ये लक्षण हैं। जो चैतन्यभावको परिणतिरूप होय प्रवर्ते सो **उपयोग** है वह उपयोग दो प्रकारका है एक सविकल्प और दूसरा

दधानो द्वेधोपयोगश्च । पर्यायास्त्वगुरुलघुगुणहानिवृद्धिनिर्वृत्ताः शुद्धाः । सूत्रोपात्तास्तु सुरनारकतिर्यङ्मनुष्यलक्षणाः परद्रव्यसंबन्धनिर्वृत्तत्वादशुद्धाश्चेति ॥ १६ ॥

धन्यद्रव्याणा परस्परसश्लेषसंबधन पर्यायो न घटते परद्रव्यसबधेनाशुद्धपर्यायोपि न घटते। इदानीं गुणपर्याया कथ्यन्ते । तेपि द्विधा स्वभावविभावभेदेन । गुणद्वारेणान्वयरूपाया एकत्वप्रतिपत्तेर्निबधन कारणभूतो गुणपर्याय , स चैकद्रव्यगत एव सहकारफले हरितपाण्डुरादिवर्णवत् । कस्य । पुद्गलस्य । मतिज्ञानादिरूपेण ज्ञानान्तरपरिणमनवज्जीवस्य । एव जीवपुद्गलयो विभावगुणरूपा पर्याया ज्ञातव्या । स्वभावगुणपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्हानिवृद्धिरूपा सर्वद्रव्यसाधारणा । एव स्वभावविभावगुणपर्याया ज्ञातव्या । अथवा द्वितीयप्रकारेणार्थव्यञ्जनपर्यायरूपेण द्विधा पर्याया भवन्ति । तत्रार्थपर्याया सूक्ष्मा क्षणक्षयिणस्तथावाग्गोचरा विषया भवन्ति। व्यजनपर्याया पुन स्थूलाश्चिरकालस्थायिनो वाग्गोचराश्छद्मस्थदृष्टिविषयाश्च भवन्ति । एते विभावरूपा व्यजनपर्याया जीवस्य नरनारकादयो भवन्ति, स्वभावव्यञ्जनपर्यायो जीवस्य सिद्धरूप । अशुद्धार्थपर्याया जीवस्य षट्स्थानगतकषायहानिवृद्धिविशुद्धिसक्लेशरूपशुभाशुभलेश्यास्थानेषु ज्ञातव्या । पुद्गलस्य विभावार्थपर्याया द्व्यणुकादिस्कन्धेषु वर्णान्तरादिपरिणमनरूपा । विभावव्यञ्जनपर्यायाश्च पुद्गलस्य द्व्यणुकादिस्कन्धेष्वेव चिरकालस्थायिनो ज्ञातव्या । शुद्धार्थपर्याया अगुरुलघुकगुणषड्हानिवृद्धिरूपेण पूर्वमेव स्वभावगुणपर्यायव्याख्यानकाले सर्वद्रव्याणा कथिता । एते चार्थव्यजनपर्याया पूर्व "जेसिं अत्थिसहाओ" इत्यादिगाथाया ये भणिता जीवपुद्गलयो स्वभावविभावद्रव्यपर्याया स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च ये भणितास्तेषु मध्ये तिष्ठन्ति । अत्र गाथाया च ये द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च भणितास्तेषु च मध्ये तिष्ठन्ति । तर्हि किमर्थं पृथक्कथिता इति चेदेकसमयवर्तिनोऽर्थपर्याया भण्यन्ते चिरकालस्थायिनो व्यजनपर्याया भण्यन्ते इति कालकृतभेदज्ञापनार्थं । अत्र सिद्धरूपशुद्धपर्यायपरिणत शुद्धजीवास्तिकायाभिधान उपादेयमिति भावार्थ ॥ १६ ॥

निर्विकल्प। सविकल्प उपयोग तो ज्ञानका लक्षण है और अवस्था ज्ञान आठ प्रकारका है । कुमति १ कुश्रुति २ कुअवधि ३ ... ॥ १५ मन पर्यय ७ और केवल ८ । दर्शन भी चक्षु अचक्षु अव] जीव, ... प्रकारका है । केवल ज्ञान और केवल दर्शन ये शेष अशुद्धपर्याय ... हैं बाकीके दश उपयोग अशुद्ध जीवके होते हैं ये तो ... के पर्याय भी शुद्धाशुद्धके भेदसे दो प्रकारकी हैं । जो अगुरुलघु ... आगम प्रमाणकर जानी जाती है, वह तो शुद्ध पर्याय कहलाती है और जो परद्रव्यके संबंधसे चारगतिरूप नरनारकादि हैं, वे अशुद्ध आत्माकी पर्याय हैं ॥ १६ ॥

अत्र कथंचिद्व्ययोत्पादवत्त्वेऽपि द्रव्यस्य सदा विनष्टानुत्पन्नत्वं ख्यापितं,—

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो ।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसुत्ति पज्जाओ ॥ १८ ॥

स च एव याति मरणं याति न नष्टो न चैवोत्पन्नः ।
उत्पन्नश्च विनष्टो देवो मनुष्य इति पर्यायः ॥ १८ ॥

यदेव पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कापादितामुभयीमवस्थामात्मसात्कुर्वाणमुच्छिद्यमानमुत्पद्यमानं च द्रव्यमालक्ष्यते । तदेव तथाविधोभयावस्थाव्यापिना प्रतिनियतैकवस्तुत्वनिबन्धनभूतेन स्वभावेनाविनष्टमनुत्पन्नं वा वेद्यते । पर्यायास्तु तस्य पूर्वपूर्वपरिणामोपमर्दोत्तरो

सूत्रार्थ ॥ १७ ॥ अथ तमेवार्थं नयद्वयेन पुनरपि द्रढयति;—**सो चेव जादि मरणं** स च एव जीवपदार्थः पर्यायार्थिकनयेन देवपर्यायरूपां जातिमुत्पत्तिं **जादि** याति गच्छति स चैव मरणं याति **ण णट्ठो ण चेव उप्पण्णो** द्रव्यार्थिकनयेन पुनर्न नष्टो न चोत्पन्नः । तर्हि कोसौ नष्टः कोसौ उत्पन्नः ? **उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसोत्ति पज्जाओ** पर्यायार्थिकनयेन देवपर्याय उत्पन्नो मनुष्यपर्यायो विनष्टः । ननु यद्युत्पादविनाशौ तर्हि तस्यैव पदार्थस्य नित्यत्वं कथं ? नित्यत्वं तर्हि तस्यैवोत्पादव्ययद्वयं च कथं ? परस्परविरुद्धमिदं शीतोष्णवदिति पूर्वपक्षे परिहारमाह । येषां मते सर्वथैकान्तेन नित्यं वस्तु क्षणिकं वा तेषां दूषणमिदं । कथमिति चेत् । येनैव रूपेण नित्यत्वं तेनैवानित्यत्वं न घटते, येन च रूपेणानित्यत्वं तेनैव नित्यत्वं न घटते कस्मात् । एकस्वभावत्वाद्वस्तुनस्तन्मते । जैनमते पुनरनेकस्वभावं वस्तु तेन कारणेन द्रव्यार्थि

सदा निःकलंक शुद्धस्वरूप है ॥ १७ ॥ आगे यद्यपि पर्यायार्थिक नयसे कथंचित्प्रकारसे द्रव्य उपजता विनशता है, तथापि न उपजता है न विनशता है, ऐसा कहते हैं,—**[स च एव]** वह ही जीव **[याति]** उपजै है, जो कि **[मरणं]** मरणभावको **[याति]** प्राप्त होता है **[न नष्टः]** स्वभावसे वही जीव न विनशा है **[च]** और **[एव]** निश्चयसे **[न उत्पन्नः]** न उपजा है । सदा एकरूप है । तब कौन उपजा विनशा है ? **[पर्यायः]** पर्याय ही **[उत्पन्नः]** उपजा **[च]** और **[विनष्टः]** विनशा है । कैसें ? जैसें कि—**[देवः]** देवपर्याय उत्पन्न हुवा **[मनुष्यः]** मनुष्यपर्याय विनशा है **[इति]** यह पर्यायका उत्पाद व्यय है जीवको ध्रौव्य जानना । **भावार्थ**—जो पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा पहिले पिछले पर्यायनिकर उपजता विनशता देखा जाता है, वही द्रव्य उत्पादव्यय अवस्थाके होतेसंते भी अपने अविनाशी एक स्वभावकर सदा न तो उपजता है और न विनशता है और जो वे

पूर्वोत्तरपर्यायौ विवेकसंपर्कौ पूर्वपर्यायस्य मनुष्यस्य विवेकः वियोगः विनाश इति यावत्, देवलक्षणस्य संपर्कः संबंधः उत्पादः इत्यर्थः इति पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कौ ताभ्यां ।
१ याता तां । २ उत्पादव्ययमयीम् । ३ उपमर्दो विनाशः ।

धारपरिणामोत्पादरूपा पणाशसंभवधर्माणोऽभिधीयन्ते। ते च वस्तुत्वेन द्रव्यादपृथग्भूता एवोक्ताः। ततः पर्य्यायैः सदैकवस्तुत्वाज्जायमानं म्रियमाणमपि जीवद्रव्यं सर्वदानुत्पन्नाविनष्टं द्रष्टव्यम्। देवमनुष्यादिपर्यायास्तु क्रमवर्तित्वादुपस्थितातिवाहितस्वसमया उत्पद्यन्ते विनश्यन्ति चेति ॥ १८ ॥

अत्र सदसतोर्विनाशानुत्पादौ स्थितिपक्षत्वेनोपन्यस्तौ,—

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णत्थि उप्पादो।
तावदिओ जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो ॥ १९ ॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य नास्त्युत्पादः।
तावज्जीवानां देवो मनुष्य इति गतिनाम ॥ १९ ॥

यदि हि जीवो य एव म्रियते स एव जायते य एव जायते स एव म्रियते तदेव सतो विनाशोऽसत उत्पादश्च नास्तीति व्यवतिष्ठते। यत्तु देवो जायते मनुष्यो म्रियते इति

यनयेन द्रव्यरूपेण नित्यत्वं घटते पर्यायार्थिकनयेन पर्यायरूपेणानित्यत्वं च घटते। तौ च द्रव्य-पर्यायौ परस्परं सापेक्षौ, तच्च सापेक्षत्वं "पज्जयरहियं दव्वं दव्वविमुत्ता य पज्जया णत्थि" इत्यादि पूर्वं व्याख्यातं तेन कारणेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययोः परस्परगौणमुख्यभावव्याख्यानादेक-देवदत्तस्य जन्यजनकादिभाववत् एकस्यापि द्रव्यस्य नित्यानित्यत्वं घटते नास्ति विरोध इति सूत्रार्थः ॥ १८ ॥ अथैवं द्रव्यार्थिकनयेन सतो विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति स्थितमिति निश्चिनोति —**एवं सदो विणासो असदो भावस्स णत्थि उप्पादो** एवं पूर्वोक्तगाथात्रय

पूर्व उत्तर पर्याय हैं वे ही विनाशीक स्वभावको धरे हैं। पहिले पर्यायोंका विनाश होता है अगले पर्यायोंका उत्पाद होता है। जो द्रव्य पहिले पर्यायोंमें तिष्ठता (रहता) है, वह ही द्रव्य अगले पर्यायोंमें विद्यमान है। पर्यायोंके भेदसे द्रव्यमें भेद कहा जाता है परन्तु वह द्रव्य जिस समय जिन पर्यायोंमें परिणमता है उस समय उन ही पर्यायोंमें तन्मय है ऐसा यह ही स्वभाव है जो कि परिणामसे एकभाव (एकता) धरता है। क्योंकि कथंचित् प्रकारसे परिणाम परिणामी। गुणगुणी की एकता है। इसकारण परिणमनसे द्रव्य यद्यपि उपजता विनशता भी है तथापि ध्रौव्य जानना ॥ १८ ॥ आगे द्रव्यके स्वाभाविक ही उत्पादव्यय सत्का नाश नहीं 'असत्का उत्पाद नहीं' ऐसा कहते हैं—[एवं] पूर्वोक्त प्रकार [सतः] स्वा

पर्यायेषु विद्यमानोऽपि मनुष्यादिपर्यायरूपेण देवादिपर्यायेषु नास्तीत्यविद्यमानोऽ
ि न स एवानित्यः कथं घटत इति चेत् । यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले
ि पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकन
शाया पर्यायरूपेणानित्यत्व गौण पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण
त्वात् । विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेऽपि शुद्धद्र

मात्र ध्रौव्यस्वरूप दिखानेकेलिये ऐसे ही कथन किया जाता है । और जो
की अपेक्षा जीवद्रव्यका कथन किया जाता है कि और ही उपजे है, औ
है, सो यह कथन गतिनामकर्मके उदयसे जानना । कैसे कि जैसे—
विनसै है, देवपर्याय उपजै है सो कर्मजनित विभावपर्यायकी अपेक्षा यह कथ
है यह बात सिद्ध है । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि ध्रौव्यताकी
तो वही जीव उपजै और वही जीव विनसै है और उत्पाद व्ययकी अपेक्षा अ
उपजै है और अन्य ही विनसै है । यह ही कथन दृष्टान्तसे विशेष दिखाया जा
जैसे—एक बड़ा बांस है, उसमें क्रमसे अनेक पोरी हैं उस बांसका जो
किया जाता है तो दो प्रकारके विचारसे उस बांसकी सिद्धि होती है एक सा
रूप बांसका कथन है एक उसमें विशेषरूप पोरियोंका कथन है जब पोरि
कथन किया जाता है तो जो पोरी अपने परिणामको लियेहुये जितनी हैं, उतन
हैं । अन्य पोरीसे मिलती नहीं हैं अपने अपने परिमाण लियेहुये सब पोरी न्यारी न्
है बांस सब पोरियोंमें एक ही है जब बांसका विचार पोरियोंकी पृथक्तासे कि
जाय, तब बांसका एक कथन आवै नहीं जिस पोरीकी अपेक्षासे बांस कहा जाय
निस ही पोरीका बांस होता है उसको और पोरीका बांस नहीं कहा जाता अ
पोरीकी अपक्षा वही बांस अन्य पोरीका कहा जाता है, इस प्रकार पोरियोंकी अपे
क्षास बांसकी अनेकता है और जो सामान्यरूप सब पोरियोंमें बांसका कथन न किया जाय
सो एक बांसका कथन कहा जाता है इस कारण बांसकी अपेक्षा एक बांस है।
पोरीनकी अपक्षा एक बांस नहीं है इसी प्रकार त्रिकाल अविनाशी जीव द्रव्य एक है
उसमें क्रमवर्ती देवमनुष्यादि अनेक पर्याय हैं, सो वे पर्याय अपने २ परिमाण लियेहुये
हैं । किसी भी पर्यायसे कोई पर्याय मिलता नहीं है, सब न्यारी न्यारी हैं । जब पर्यायोंकी
अपेक्षा जीवका विचार किया जाता है तो अविनाशी एक जीवका कथन आता नहीं
और जो पर्यायोंकी अपक्षा नहीं लीजाय तो जीवद्रव्य त्रिकालविषै अभेदस्वरूप एक ही
कहा जाता है इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि—जीवद्रव्य निजभावकर तो सदा
टंकोत्कीर्ण एकस्वरूप नित्य है और पर्यायकी अपक्षा नित्य नहीं है
अनेक होता है अन्य पर्यायकी अपक्षा अ
१ पञ्चा

व्यपदिश्यते तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्यायनिर्वर्तकस्य देवमनुष्यगतिनामकर्मणो मात्रत्वादवि रुद्धं । यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यनेकानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणाव च्छिन्नत्वात् पर्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभावभाञ्जि भवन्ति । वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसंबन्धेन पर्वान्तरसंबन्धाभावाद् अभावभाग्भवति । तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादिपर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः परस्थानेष्वभावभाजो भवन्ति । जीवद्रव्यं तु सर्वपर्यायस्थानेषु भावभागपि पर्यायान्तरसंबन्धेन पर्यायान्तरसंबन्धाभावादभावभाग्भवति ॥ १९ ॥

व्याख्यानेन यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन नरनारकादिरूपेणोत्पादविनाशत्व घटते तथापि द्रव्यार्थि कनयेन सतो विद्यमानस्य विनाशो नास्त्यसतश्चाविद्यमानस्य नास्त्युत्पाद । कस्य । भावस्य जीव पदार्थस्य । *ननु यद्युत्पादव्ययौ न भवतस्तर्हि पल्यत्रयपरिमाणं भोगभूमौ स्थित्वा पश्चात् म्रियते,* यत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देवलोके नारकलोके तिष्ठति पश्चान्म्रियत इत्यादि व्याख्यानं कथं घटते। **तावदियो जीवाण देवो मणुसोत्ति गदिणामो** तावत्पल्यत्रयादिरूप परिमाण यज्जीवानां कथ्यते देवो मनुष्य इति योसौ गतिनामकर्मोदयजनितपर्यायस्तस्य तत्परिमाणं न च जीवद्रव्यस्येति वेणुदण्डवन्नास्ति विरोध । तथाहि—यथा महतो वेणुदण्डस्यानेकानि पर्वाणि स्वस्थानेषु भावभाञ्जि विद्यमानानि भवन्ति परपर्वस्थानेष्वभावभाञ्ज्यविद्यमानानि भवन्ति वेणुदण्ड स्तु सर्वपर्वस्थानेष्वन्वयरूपेण विद्यमानोपि प्रथमपर्वरूपेण द्वितीयपर्वे नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते, तथा वेणुदण्डस्थानीयजीवे नरनारकादिरूपा पर्वस्थानीया अनेकपर्याया स्वकीयायु कर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति जीवश्चान्वयरूपेण सर्वपर्वस्थानीयपर्या

भाविक अविनाशी स्वभावका [**विनाश**] नाश [**न अस्ति**] नहीं है [**अस त. जीवस्य**] जो स्वाभाविक जीवभाव नहीं है तिसका [**उत्पाद**] उपजना [**"नास्ति"**] नहीं है [**तावत्**] प्रथम ही यह जीवका स्वरूप जानना और [**जीवाना**] जीवोंका [**देव मनुष्य इति**] देव है, मनुष्य है, इत्यादि कथन है सो [**गतिनाम.**] गतिनामवाले नामकर्मकी विपाकअवस्थासे उत्पन्न हुवा कर्मज नित भाव है । *भावार्थ*—जीव द्रव्यका कथन दो प्रकार है । एक तो उत्पादव्ययकी मुख्यता लियेहुये, दूसरा ध्रौव्यभावकी मुख्यता लियेहुये । इन दोनों कथनोंमें जब ध्रौ व्यभावकी मुख्यताकर कथन किया जाय, तब इस ही प्रकार कहा जाता है कि जो जीवद्रव्य मरता है, सो ही उपजता है और जो उपजता है, वही मरता है । पर्या योंकी परंपरामें यद्यपि अविनाशी वस्तुका कथनका प्रयोजन नहीं है, तथापि व्यवहार

---

१ कथ्यते २ आयु प्रमाणम् ३ इ यत्व्ययमात्रत्वात् ४ स्वकीयप्रमाणपरिच्छिन्नत्वात्, ५ उत्पत्तिमोक्षात् ६ विद्यमानत्व भवन्ति ७ दत्तत्वभोक्तृत्व भावभोक्तृत्व ८ ननु पर्यायान्तरै भावसंबन्धाभावात् ।

पर्यायेषु विद्यमानोपि मनुष्यादिपर्यायरूपेण देवादिपर्यायेषु नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते । स
नित्य स एवानित्य कथ घन्त इति चेत् । यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौ
पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्ववि
क्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्व गौण पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्व गौण
कस्मात् । विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनावि

मात्र ध्रौव्यस्वरूप दिखानेकेलिये ऐसे ही कथन किया जाता है । और जो उत्पादव्य
यकी अपेक्षा जीवद्रव्यका कथन किया जाता है कि और ही उपजै है, और ही विनशै
है, सो यह कथन गतिनामकर्मके उदयसे जानना । कैसे कि जैसे—मनुष्यपर्याय
विनशै है, देवपर्याय उपजै है सो कर्मजनित विभावपर्यायकी अपेक्षा यह कथन अविरुद्ध
है यह बात सिद्ध है । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि ध्रौव्यताकी अपेक्षासे
तो वही जीव उपजै और वही जीव विनशै है और उत्पाद व्ययकी अपेक्षा अन्य जीव
उपजै है और अन्य ही विनशै है । यह ही कथन दृष्टान्तसे विशेष दिखाया जाता है ।
जैसे—एक बड़ा बांस है, उसमें क्रमसे अनेक पोरी हैं उस बांसका जो विचार
किया जाता है तो दो प्रकारके विचारसे उस बांसकी सिद्धि होती है एक सामान्य
रूप बांसका कथन है एक उसमें विशेषरूप पोरियोंका कथन है जब पोरियोंका
कथन किया जाता है तो जो पोरी अपने परिणामको लियेहुये जितनी हैं, उतनी ही
हैं । अन्य पोरीसे मिलती नहीं हैं अपने अपने परिमाण लियेहुये सब पोरी न्यारी न्यारी
हैं बांस सब पोरियोंमें एक ही है जब बांसका विचार पोरियोंकी पृथक्ताकर किया
जाय, तब बांसका एक कथन आवै नहीं जिस पोरीकी अपेक्षासे बांस कहा जाय तो
तिस ही पोरीका बांस होता है उसको और पोरीका बांस नहीं कहा जाता अन्य
पोरीकी अपेक्षा वही बांस अन्य पोरीका कहा जाता है, इस प्रकार पोरियोंकी अपे
क्षासे बांसकी अनेकता है और जो सामान्यरूप सब पोरियोंमें बांसका कथन न किया जाय
तो एक बांसका कथन कहा जाता है इस कारण बांसकी अपेक्षा एक बांस है।
पोरीनकी अपेक्षा एक बांस नहीं है इसी प्रकार त्रिकाल अविनाशी जीव द्रव्य एक है
उसमें क्रमवर्ती देवमनुष्यादि अनेक पर्याय हैं सो वे पर्याय अपने २ परिमाण लियेहुये
हैं । किसी भी पर्यायसे कोई पर्याय मिलता नहीं है सब न्यारे न्यारे हैं जब पर्यायोंकी
अपेक्षा जीवका विचार किया जाता है तो अविनाशी एक जीवका कथन [illegible]
[illegible] तो पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं कीजाय तो जीवका [illegible] त्रिकालवर्ती [illegible]
[illegible] जाता है [illegible] यह बात सिद्ध हुई कि जीव [illegible]
[illegible] होता है [illegible] और पर्यायकी अपेक्षा भिन्न [illegible]
[illegible] होता है [illegible] की अपेक्षा [illegible]
[illegible]
[illegible]

व्यपदिश्यते तदवधृतकालदेवमनुष्यत्वपर्यायनिर्वर्तकस्य देवमनुष्यगतिनाम्नस्तन्मात्रत्वादवरुद्ध । यथा हि महतो वेणुदण्डस्यैकस्य क्रमवृत्तीन्यनेकानि पर्वाण्यात्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्वान्तरमगच्छन्ति स्वस्थानेषु भावभाञ्जि परस्थानेष्वभावभाञ्जि भवन्ति। वेणुदण्डस्तु सर्वेष्वपि पर्वस्थानेषु भावभागपि पर्वान्तरसंबन्धेन पर्वान्तरसंबन्धाभावादभावभाग्भवति । तथा निरवधित्रिकालावस्थायिनो जीवद्रव्यस्यैकस्य क्रमवृत्तयोऽनेके मनुष्यत्वादिपर्याया आत्मीयात्मीयप्रमाणावच्छिन्नत्वात् पर्यायान्तरमगच्छन्तः स्वस्थानेषु भावभाजः परस्थानेष्वभावभाजो भवन्ति । जीवद्रव्यं तु सर्वपर्यायस्थानेषु भावभागपि पर्यायान्तरसंबन्धेन पर्यायान्तरसंबन्धाभावादभावभाग्भवति ॥ १९ ॥

व्याख्यानेन यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन नरनारकादिरूपेणोत्पादविनाशत्वं घटते तथापि द्रव्यार्थिकनयेन सतो विद्यमानस्य विनाशो नास्त्यसतश्चाविद्यमानस्य नास्त्युत्पाद । कस्य । भावस्य जीवपदार्थस्य । ननु यद्युत्पादव्ययौ न भवतस्तर्हि पल्यत्रयपरिमाणं भोगभूमौ स्थित्वा पश्चात् म्रियते, यत् त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देवलोके नारकलोके तिष्ठन्ति पश्चान्म्रियत इत्यादि व्याख्यानं कथं घटते । ताबदियो जीवाणं देवो मणुसोत्ति गदिणामो तावत्स्यत्प्रमादिरूप परिमाणं यज्जीवानां कथ्यते देवो मनुष्य इति योसौ गतिनामकर्मोदयजनितपर्यायस्तस्य तत्परिमाणं न च जीवद्रव्यस्येति वेणुदण्डवन्नास्ति विरोधः । तथाहि—यथा महतो वेणुदण्डस्यानेकानि पर्वाणि स्वस्थानेषु भावभाञ्जि विद्यमानानि भवन्ति परपरस्थानेष्वभावभाञ्ज्यविद्यमानानि भवन्ति वेणुदण्डस्तु सर्वपरस्थानेष्वन्वयरूपेण विद्यमानोपि प्रथमपर्वरूपेण द्वितीयपर्वे नास्तीत्यविद्यमानोपि भण्यते, तथा वेणुदण्डस्थानीयजीवे नरनारकादिरूपा पर्वस्थानीया अनेकपर्यायाः स्वकीयायुः कर्मोदयकाले विद्यमाना भवन्ति परकीयपर्यायकाले चाविद्यमाना भवन्ति जीवश्चान्वयरूपेण सर्वपरस्थानीयपर्वे

भाविक अविनाशी स्वभावका [**विनाश**] नाश [**न अस्ति**] नहीं है [**असत. जीवस्य**] जो स्वाभाविक जीवभाव नहीं है तिसका [**उत्पाद.**] उपजना [**"नास्ति"**] नहीं है [**तावत्**] प्रथम ही यह जीवका स्वरूप जानना और [**जीवानां**] जीवोंका [**देव' मनुष्य इति**] देव है, मनुष्य है, इत्यादि कथन है सो [**गतिनाम**] गतिनामवाले नामकर्मकी विपाकअवस्थासे उत्पन्न हुवा कर्मजनित भाव है । **भावार्थ**—जीव द्रव्यका कथन दो प्रकार है । एक तौ उत्पादव्ययकी मुख्यता लियेहुये, दूसरा ध्रौव्यभावकी मुख्यता लियेहुये । इन दोनों कथनोंमें जब ध्रौव्यभावकी मुख्यताकर कथन किया जाय, तब इस ही प्रकार कहा जाता है कि जो जीवद्रव्य मरता है, सो ही उपजता है और जो उपजता है, वही मरता है । पर्यायोंकी परपरामें यद्यपि अविनाशी वस्तुके कथनका प्रयोजन नहीं है, तथापि व्यवहार

१ कथ्यते २ आयु प्रमाणम् ३ [illegible] ४ स्वकीयप्रमाणपरिच्छिन्नत्वात्, ५ उत्पत्तिमोत्पद [illegible] ६ [illegible] ७ [illegible] ८ [illegible]

पदान्तु विनाशोऽपि मनुष्यादिपर्यायरूपेण देवादिपर्यायेषु नाम्नीत्यविद्यमानोऽपि भण्यते । स एव कि न स एवान्य एव इति चेत् । यथैकस्य देवदत्तस्य पुत्रविवक्षाकाले पितृविवक्षा गौणा पितृविवक्षाकाले पुत्रविवक्षा गौणा, तथैकस्य जीवस्य जीवद्रव्यस्य वा द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वविवक्षाकाले पर्यायरूपेणानित्यत्वं गौणं पर्यायरूपेणानित्यत्वविवक्षाकाले द्रव्यरूपेण नित्यत्वं गौणं । कस्मात् । विवक्षितो मुख्य इति वचनात् । अत्र पर्यायरूपेणानित्यत्वेऽपि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनावि-

---

मात्र ध्रौव्यस्वरूप दिखानेकेलिये ऐसा ही कथन किया जाता है । और जो उत्पादव्यय की अपेक्षा जीवद्रव्यका कथन किया जाता है कि और ही उपजे है, और ही विनसै है, सो यह कथन गतिनामकर्मके उदयसे जानना । जैसे कि जैसे—मनुष्यपर्याय विनसै है, देवपर्याय उपजे है सो कर्मजनित विभावपर्यायकी अपेक्षा यह कथन अविरुद्ध है यह बात सिद्ध है । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि ध्रौव्यताकी अपेक्षासे सो वही जीव उपजै और वही जीव विनसै है और उत्पाद व्ययकी अपेक्षा अन्य जीव उपजे है और अन्य ही विनसै है । यह ही कथन दृष्टान्तसे विशेष दिखाया जाता है । जैसे—एक बड़ा बांस है, उसमें क्रमसे अनेक पोरी हैं उस बांसका जो विचार किया जाता है सो दो प्रकारके विचारसे उस बांसकी सिद्धि होती है एक सामान्यरूप बांसका कथन है एक उसमें विशेषरूप पोरियोंका कथन है जब पोरियोंका कथन किया जाता है सो जो पोरी अपने परिणामको लियेहुये जितनी हैं, उतनी ही हैं । अन्य पोरीसे मिलती नहीं हैं अपने अपने परिमाण लियेहुये सब पोरी न्यारी न्यारी हैं बांस सब पोरियोंमें एक ही है जब बांसका विचार पोरियाकी पृथकृतासे किया जाय, तब बांसका एक कथन आवै नहीं जिस पोरीकी अपेक्षासे बांस कहा जाय सो तिस ही पोरीका बांस होता है उसको और पोरीका बांस नहीं कहा जाता अन्य पोरीकी अपेक्षा कहा बांस अन्य पोरीका कहा जाता है, इस प्रकार पोरियोंकी अपेक्षासे बांसकी अनेकता है और जो सामान्यरूप सब पोरियोंमें बांसका कथन न किया जाय तो एक बांसका कथन कहा जाता है इस कारण बांसकी अपेक्षा एक बांस है । पोरीकी अपेक्षा एक बांस नहीं है इसी प्रकार त्रिकाल अविनाशी जीव द्रव्य एक है उसमें क्रमवर्ती मनुष्यादि अनेक पर्याय हैं सो वे पर्याय अपने २ परिमाण लियेहुये हैं । किसी भी पर्यायसे कोई पर्याय मिलता नहीं है सब न्यारी न्यारी हैं । जब पर्यायोंकी अपेक्षा जीवका विचार किया जाता है तो अविनाशी एक जीवका कथन आता नहीं और जो पर्यायोंकी अपेक्षा नहीं लीजाय तो जीवद्रव्य त्रिकालविषै अभेदस्वरूप एक ही कहा जाता है इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि—जीवद्रव्य निजभावकर तो सदा त्रिकाल एकस्वरूप नित्य है और पर्यायकी अपेक्षा नित्य नहीं है पर्यायोंकी अनेकतासे अनेक होता है और पर्यायकी अपेक्षा अन्य भी कहा जाता है इस कारण एक अनेक

स्वकारणनिर्वृत्तौ निर्वृत्तेऽभूतपूर्वे एव चान्यस्मिन्नुत्पन्ने नासदुत्पत्तिः । तथा दीर्घकालान्वयिनि ज्ञानावरणादिकर्मसामान्योदयनिर्वृत्तिससारित्वपर्याये भव्यस्य स्वकारणनिवृत्तौ निर्वृत्ते समुत्पन्ने चाभूतपूर्वे सिद्धत्वपर्याये नासदुत्पत्तिरिति । किंच यथा द्राघीयसि वेणुदण्डे व्यवहिताव्यवहितविचित्रचित्रकिर्मीरताखचिताधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धोर्ध्वार्द्धभागेऽवतारिता दृष्टिः समन्ततो विचित्रचित्रकिर्मीरताव्याप्तिं पश्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वम् । तथा क्वचिदपि जीवद्रव्ये व्यवहिताव्यवहितज्ञानावरणादिकर्म्म

तेषां ज्ञानावरणादिभावानां द्रव्यभावकर्मरूपपर्यायाणामभावं विनाशं कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनाभूतपूर्वसिद्धो भवति द्रव्यार्थिकनयेन पूर्वमेव सिद्धरूप इति वार्तिकं । तथाहि—यथैको महान् वेणुदण्ड पूर्वार्धभागे विचित्रचित्रेण खचितः शबलितो मिश्रितः तिष्ठति तस्मादूर्ध्वार्द्धभागे विचित्रचित्राभावाच्छुद्ध एव तिष्ठति तत्र यदा कोपि देवदत्तो दृष्ट्यावलोकनं करोति तदा भ्रान्तिज्ञानेन विचित्रचित्रवशादशुद्धत्वं भाति तस्मादुत्तरार्धभागेप्यशुद्धत्वं मन्यते तथायं जीवः संसारावस्थायां मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामवशेन व्यवहारेणाशुद्धस्तिष्ठति शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनाभ्यन्तरे केवल

पर्यायार्थिकनयकी विवक्षाकर जीवद्रव्य जब जैसी देवादिकपर्यायको धारण करता है तब तैसा ही होकर परिणमता सता उत्पाद नाश अवस्थाको धरता है इन दो दोऊ नयोंका विलास दिखाया जाता है, अनादि कालसे लेकर ससारी जीवके ज्ञानावरणादि कर्मोंके सबधोंसे ससारी पर्याय है तहा भव्य जीवको काललब्धिसे सम्यग्दर्शनादि मोक्षकी सामग्री पानेसे सिद्ध पर्याय यद्यपि होती है तथापि द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा सिद्धपर्याय नूतन (नया) हुआ नहीं कहा जा सकता अनादिनिधन ज्योंका त्यों ही है । कैसे ? जैसे कि,—अपनी थोरी स्थिति लिये नामकर्मके उदयसे निपजित देवादिक पर्याय होते हैं, उनमें कोई एक पर्याय अशुद्ध कारणसे जीवके उत्पन्न हुये सते नवीन पर्याय हुआ नहीं कहा जाता क्योंकि—ससारीक अशुद्धपर्यायोंकी सतान होती ही है जो पहिले न होती तो नवीन पर्याय उत्पन्न हुआ कहा जाता । इस कारण जबतक जीव ससारमें है तबतक पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा नया ससार पर्याय उपजा नहीं कहा जाता पहिला ही है । इसी प्रकार द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा नवीन सिद्धपर्याय उपजा नहीं कहा जाता है [illegible] भावरूप सिद्ध पर्याय सिद्ध ही है । [illegible] सिद्ध पर्याय नवीन उत्पन्न हुआ ऐसा जो कहते हैं सो पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे है [illegible]

[illegible]

किर्म्मीरताखचितनहुतराधस्तनार्द्धभागे एकान्तव्यवहितसुविशुद्धनहुतरोर्ध्वभागेऽवतारिता बुद्धिः समन्ततो ज्ञानावरणादिकर्म्मकिर्मीरताव्याप्तिं व्यवस्यन्ती समनुमिनोति तस्य सर्वत्राविशुद्धत्वम् । यथा च तत्र वेणुदण्डे व्याप्तिज्ञानाभासनिबन्धनविचित्रकिर्म्मीरतान्वयः । तथा च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्म्मीरतान्वयः । यथैव च तत्र वेणुदण्डे विचित्रचित्रकिर्म्मीरताभावात्सुविशुद्धत्वं । तथैव च क्वचिज्जीवद्रव्ये ज्ञानावरणादिकर्मकिर्म्मीरतान्वयाभावादाप्तागमसम्यगनुमानातीन्द्रियज्ञानपरिच्छिन्नात्सिद्धत्वमिति ॥ २० ॥

ज्ञानादिस्वरूपेण शुद्ध एव तिष्ठति । यदा रागादिपरिणामाविष्टः सन् सविकल्पस्वरूपेन्द्रियज्ञानेन विचारं करोति तदा यथा बहिर्भागे रागाद्याविष्टमात्मानमशुद्धं पश्यति तथाभ्यन्तरेपि केवलज्ञानादिस्वरूपेप्यशुद्धत्वं मन्यते भ्रान्तिज्ञानेन । यथा वेणुदण्डे विचित्रचित्रमिश्रितत्वं भ्रान्तिज्ञानकारणं तथात्र जीवे मिथ्यात्वरागादिरूपं भ्रान्तिज्ञानकारणं भवति । यथा वेणुदण्डो विचित्रचित्रप्रक्षालने कृते शुद्धो भवति तथायं जीवोपि यदा गुरुणा पार्श्वे शुद्धात्मस्वरूपप्रकाशकं परमागमं जानाति । कीदृशमिति चेत् । 'एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः । बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वदा" इत्यादि । तथैव च देहात्मनोरत्यन्तभेदो भिन्नलक्षणलक्षितत्वाज्जलानलादिवदित्यनुमानज्ञानं जानाति तथैव च वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानं जानाति । तदित्थंभूतागमानुमानस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानात् शुद्धो भवति । अत्राभूतपूर्वसिद्धत्वरूपं शुद्धजीवास्तिकायाभिधानं

उसके आधे बाँसमें तो चित्र कियेहुये हैं और आधे वासमें चित्र कियेहुये नहीं है। जिस आधे भागमें चित्र नहीं, वह तो ढक रक्खा है और जिस अर्धभागमें चित्र हैं सो निरावरण (उघड़ा हुवा) है जो पुरुष इस वासके इस भेदको नहीं जानता होय, उसको यह वास दिखाया जाय तो वह पुरुष पूरे वासको चित्रित कहैगा, क्योंकि चित्ररहित जो अर्द्ध भाग निर्मल है, उसको जानता नहीं है। उसही प्रकार यह जीव पदार्थ एक भाग तो अनेक संसारपर्यायोंके द्वारा चित्रित हुआ बहुरूप है और एक भाग शुद्ध सिद्धपर्याय लियेहुये है जो शुद्धपर्याय है सो प्रत्यक्ष नहीं है ऐसे जीव द्रव्यका स्वरूप जो अज्ञानी जीव नहीं जानता होय, सो संसारपर्यायको देखकर जीवद्रव्यके स्वरूपको सर्वथा अशुद्ध ही मानेगा। जब सम्यग्ज्ञान होय, तब सर्वज्ञप्रणीत यथार्थ आगम ज्ञान अनुमान स्वसंवेदनज्ञान होय तब इनके बलसे यथार्थ शुद्ध आत्मीक स्वरूपको जान देख आचरण कर, समस्त कर्म पर्यायोंको नाश करके सिद्धपदको प्राप्त होता है जैसे चटाम्बिकसे धोनेपर चित्रित वास निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार

१ विस्तर्यन्ती २ अनुमानं करोति ३ तस्य जीवस्य ४ सर्वस्मिन् जीवस्य ज्ञानावरणादित्वम्, ५ चित्राबन्धनेन ६ यथाकथ्यताम् इति पाठान्तरम् ।

जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपपत्त्युपसंहारोऽयम्,—

एवं भावमभावं भावाभावं अभावभावं च ।
गुणपज्जयेहिं सहिदो संसरमाणो कुणदि जीवो ॥ २१ ॥

एवं भावमभावं भावाभावमभावभावं च ।
गुणपर्ययैः सहितः संसरन् करोति जीवः ॥ २१ ॥

द्रव्यं हि सर्वदाऽविनष्टानुत्पन्नमाम्नातं । ततो जीवद्रव्यस्य द्रव्यरूपेण नित्यत्वमुपन्यस्तं । तस्यैव देवादिपर्यायरूपेण प्रादुर्भवतो भावकर्तृत्वमुक्तं । तस्यैव च मनुष्यादिपर्यायरूपेण व्ययतो भावकर्तृत्वमाख्यातं । तस्यैव च सतो देवादिपर्यायस्योच्छेदमारभमाणस्य भावाभावकर्तृत्वमुदितं । तस्यैव चासतः पुनर्मनुष्यादिपर्यायस्योत्पादमारभमाणस्या भावभावकर्तृत्वमभिहितं । सर्वमिदमनवद्यं द्रव्यपर्यायाणामन्यतरगुणमुख्यत्वेन व्याख्या

शुद्धात्मद्रव्यमुपादेयमिति तात्पर्यार्थः ॥ २० ॥ एवं तृतीयस्थले पर्यायार्थिकनयेन सिद्धस्याभूतपूर्वोत्पादव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ जीवस्योत्पादव्ययसदुच्छेदासदुत्पादकर्तृत्वोपसंहारव्याख्यानमुपदिशति,—**एवं भावमभावं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेपि पर्यायार्थिकनयेन पूर्वं मनुष्यपर्यायस्य भावं व्ययं कृत्वा पश्चाद्देवोत्पत्तिकाले भावं देवपर्यायस्योत्पादं **कुणदि** करोति **भावाभावं** पुनरपि देवपर्यायव्ययनकाले विद्यमानस्य देवभावस्य पर्यायस्याभावं करोति **अभावभावं च** पश्चान्मनुष्यपर्यायोत्पत्तिकाले अभावस्याविद्यमानमनुष्यपर्यायस्य भावमुत्पादं करोति । स क कर्ता । **जीवो** जीवः । कथंभूतः । **गुणपज्जयेहिं**

सम्यग्ज्ञानकर मिथ्यात्वादि भावोंके नाश होनेसे आत्मा शुद्ध होता है ॥ २० ॥ आगे जीवके उत्पादव्यय दिखाकर '**सत्**का' उच्छेद '**असत्**' का उत्पाद इनकी सक्षेपतासे सिद्धि दिखाते हैं — [**एवं**] इस पूर्वोक्तप्रकार पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे [**संसरन्**] पंचपरावर्तन अवस्थाओंसे संसारमें भ्रमण करता हुआ यह [**जीवः**] आत्मा [**भावं**] देवादिक पर्यायोंको [**करोति**] करता है [**च**] और [**अभावं**] मनुष्यादि पर्यायोंका नाश करता है [**च**] तथा [**भावाभावं**] विद्यमान देवादिक पर्यायके नाशका आरंभ करता है [**च**] और [**अभावभावं**] जो विद्यमान नहीं है मनुष्यादि पर्याय तिसके उपजनेका आरंभ करता है । कैसा है यह जीव [**गुणपर्यायैः**] जैसी अवस्था नियतरूप है उसही तरह अपने शुद्ध अशुद्ध गुणपर्यायोंकर [**सहितः**] संयुक्त है । **भावार्थ**—अपने स्वरूपकर समस्त पदार्थ उपजते विनशते नहीं किंतु नित्य हैं इस कारण जीवद्रव्य भी अपने स्वरूपकर नित्य है। इस ही जीवद्रव्यके अशुद्धपर्यायकी अपेक्षा भाव अभाव भावाभाव अभावभाव इन

१ अभिप्राय । २ [illegible] । ३ [illegible] । ४ अविद्यमानस्य ।

नात् । तथा हि यदा जीव पर्य्यायगुणत्वेन द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते न विनश्यति न च क्रमवृत्त्या वर्तमानत्वात् सत्पर्य्यायजातमुच्छिनत्ति नासदुत्पादयति। यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्य्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति विनश्यति सत्पर्य्यायजातमतिवाहितस्वकालमुच्छिनत्ति असदुपस्थितं स्वकालमुत्पादयति चेति । स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोध ॥ २१ ॥ इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा ।

सहिदो कुमतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायसहित न च केवलज्ञानादिस्वभावगुणसिद्धरूपशुद्धपर्यायसहित । कस्मादिति चेत् । तत्र केवलज्ञानाद्यवस्थाया नरनारकादिविभावपर्यायाणामसंभवात् अगुरुलघुकगुणषड्हानिवृद्धिस्वभावपर्यायरूपेण पुनस्तत्रापि भावाभावादिकं करोति नास्ति विरोध । किं कुर्वन् सन् मनुष्यभावादिकं करोति । ससरमाणो ससरन् परिभ्रमन् सन् । क । द्रव्यक्षेत्रकालभवभावस्वरूपपञ्चप्रकारसंसारे । अत्र सूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे साक्षादुपादेयभूते शुद्धजीवास्तिकाये यत्सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरण तद्रूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं परमसामायिकं तदलभमानो दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञादिसमस्तपरभावपरिणाममूर्छितो मोहित आसक्त सन् नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण भावमुत्पादं करोति तथैव चाभावं व्ययं करोति येन कारणेन जीवस्तस्मात् तत्रैव शुद्धात्मद्रव्ये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं तथा

भेदोंसे चार प्रकार पर्यायका अस्तित्व कहा गया है । जहा देवादिपर्यायोंकी उत्पत्तिरूप होय परिणमता है, तहा तो भावका कर्तृत्व कहा जाता है और जहा मनुष्यादि पर्यायमें नाशरूप परिणमै है, तहा अभावका कर्तृत्व कहा जाता है । और जहा विद्यमान देवादिक पर्यायके नाशकी प्रारभदशारूप होय परिणमता है, तहा भावअभावका कर्तृत्व है । और जहा नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसकी प्रारभदशारूप होकर परिणमता है, तहा अभाव भावका कर्तृत्व कहा जाता है । यह चार प्रकार पर्यायकी विवक्षासे अरहित व्याख्यान जानना । द्रव्यपर्यायकी मुख्यता और गौणतासे द्रव्योंमें भेद होता है, वह भेद दिखाया जाता है । जब जीवका कथन पर्यायकी गौणता और द्रव्यकी मुख्यतासे किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकार कर्तृत्व नहीं संभवता । और जब द्रव्यकी गौणता और पर्यायकी मुख्यतासे जीवका कथन किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकारके पर्यायका कर्तृत्व अविरुद्ध संभवता है । इसप्रकार यह मुख्य गौण भेदके कारण व्याख्यान भगवत्सर्वज्ञप्रणीत अनेकांतवादमें विरोध भावको नहीं धरता है । स्यात्पदसे अविरुद्ध साधता है। जैसे द्रव्यकी अशुद्धपर्यायके कथनमें सिद्धि की, उसीप्रकार आगमप्रमाणसे शुद्ध पर्यायोंकी भी विवक्षा जाननी । अन्य द्रव्योंका भी सिद्धांतानुसार गुणपर्यायका कथन साध लेना । यह सामान्य स्वरूप षड्द्रव्योंका व्याख्यान आया॥२१॥

---

१ नैष्फल्य २ उच्छेदयति ३ असदुपस्थितम् ।

नात्। तथा हि यदा जीव पर्य्यायगुणत्वेन द्रव्यमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा नोत्पद्यते न विनश्यति न च क्रमवृत्त्या वर्तमानत्वात् सत्पर्य्यायजातमुच्छिनत्ति नासदुत्पादयति। यदा तु द्रव्यगुणत्वेन पर्य्यायमुख्यत्वेन विवक्ष्यते तदा प्रादुर्भवति विनश्यति सत्पर्य्यायजातमतिवाहितस्वकालमुच्छिनत्ति असदुपस्थितं स्वकालमुत्पादयति चेति। स खल्वयं प्रसादोऽनेकान्तवादस्य यदीदृशोऽपि विरोधो न विरोध ॥ २१ ॥ इति षड्द्रव्यसामान्यप्ररूपणा।

सहिदो शुभनिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायसहित न च केवलज्ञानादिस्वभावगुणसिद्धरूपशुद्धपर्यायसहित। कस्मादिति चेत्। तत्र केवलज्ञानाद्यवस्थाया नरनारकादिविभावपर्यायाणामसंभवात् अगुरुलघुकगुणषड्हानिवृद्धिस्वभावपर्यायरूपेण पुनस्तत्रापि भावाभावादिकं करोति नास्ति विरोध। किं कुर्वन् सन् मनुष्यभावादिकं करोति। समरमाणो संसरन् परिभ्रमन् सन्। क। द्रव्यक्षेत्रकालभवभावस्वरूपपंचप्रकारसंसारे। अत्र सूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावे साक्षादुपादेयभूते शुद्धजीवास्तिकाये यत्सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणं तद्रूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकं परमसामायिकं तदलभमानो दृष्टश्रुतानुभूताहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञादिसमस्तपरभावपरिणाममूर्छितो मोहित आसक्त सन् नरनारकादिविभावपर्यायरूपेण भावमुत्पाद करोति तथैव चाभाव व्ययं करोति येन कारणेन जीवस्तस्मात् तत्रैव शुद्धात्मद्रव्ये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं तथा

भेदोंसे चार प्रकार पर्यायका अस्तित्व कहा गया है। जहां देवादिपर्यायोंकी उत्पत्तिरूप होय परिणमता है, तहां तो भावका कर्तृत्व कहा जाता है और जहां मनुष्यादि पर्यायके नाशरूप परिणमै है, तहां अभावका कर्तृत्व कहा जाता है। और जहां विद्यमान देवादिक पर्यायके नाशकी प्रारम्भदशारूप होय परिणमता है, तहां भावअभावका कर्तृत्व है। और जहां नहीं है मनुष्यादि पर्याय उसकी प्रारम्भदशारूप होकर परिणमता है, तहां अभाव भावका कर्तृत्व कहा जाता है। यह चार प्रकार पर्यायकी विवक्षासे अस्त हित व्याख्यान जानना। द्रव्यपर्यायकी मुख्यता और गौणतासे द्रव्योंमें भेद होता है, वह भेद दिखाया जाता है। जब जीवका कथन पर्यायकी गौणता और द्रव्यकी मुख्यतासे किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकार कर्तृत्व नहीं संभवता। और जब द्रव्यकी गौणता और पर्यायकी मुख्यतासे जीवका कथन किया जाता है तो ये पूर्वोक्त चारप्रकारके पर्यायका कर्तृत्व अविरुद्ध संभवता है। इसप्रकार यह मुख्य गौण भेदके कारण व्याख्यान भगवत्सर्वज्ञप्रणीत अनेकांतवादमें विरोध भावको नहीं धरता है। स्यात्पदसे अविरुद्ध साधता है। जैसे द्रव्यकी अशुद्धपर्यायके कथनसे सिद्धि की, उसीप्रकार आगम प्रमाणसे शुद्ध पर्यायोंकी भी विवक्षा जाननी। अन्य द्रव्योंका भी सिद्धांतानुसार गुण पर्यायका कथन साध लेना। यह सामान्य स्वरूप षड्द्रव्योंका व्याख्यान जानना॥२१॥

---

१ गौणत्वन २ उच्छेदयति ३ असद्रूपणावस्थितम्।

रूप परिणाम । स खलु सहकारिकारणसद्भावे दृष्टः । गतिस्थित्यवगाहपरिणामवत् । यस्तु सहकारिकारणं स कालस्तत्परिणामान्यथानुपपत्तिगम्यमानत्वादनुक्तोऽपि निश्चयकालोऽस्तीति निश्चीयते । यस्तु निश्चयकालपर्यायरूपो व्यवहारकालः स जीवपुद्गलपरिणामेनाभिव्यज्यमानत्वात्तदायत्त एवाभिगम्यत एवेति ॥ २३ ॥

कालस्यारम्भाने क्रियमाणे परमाणुकालस्यानुक्तस्याप्यस्तित्वमित्युक्तं पातनिकायां तत् कथं घटत इति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह —पञ्चास्तिकायाः परिणामिनः परिणामश्च कार्यं कार्यं च कारणमपेक्षते स च द्रव्याणां परिणतिनिमित्तभूतः कालाणुरूपो द्रव्यकालः इत्यनया युक्त्या सामर्थ्येनानुक्तस्य दर्शितः । किंच समयरूपः सूक्ष्मकालः पुद्गलपरमाणुना जनितः स एव निश्चयकालो भण्यते घटिकादिरूपः स्थूलो व्यवहारकालो भण्यते स च घटिकानिमित्तभूतजलभाजनघटककाष्ठपुरुषहस्तव्यापाररूप क्रियाविशेषेण जनितो न च द्रव्यकालेनेति पूर्वपक्षे परिहारमाह —यद्यपि समयरूपः सूक्ष्मव्यवहारकालः पुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यज्यते प्रकटीक्रियते ज्ञायते घटिकादिरूपस्थूलव्यवहारकालश्च घटिकादिनिमित्तभूतजलभाजनपुरुषादिव्यापारविशेषेण ज्ञायते तथापि तस्य समयघटिकादिपर्यायरूपव्यवहारकालस्य कालाणुरूपो द्रव्यकाल एवोपादानकारणं । कस्मात् । उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात् । किंवदिति चेत् । कुम्भकारचक्रचीवरादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य घटकार्यस्य मृत्पिण्डोपादानकारणवत् कुविन्दतुरीवेमशलाकादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य पटकार्यस्य तन्तुसमूहोपादानकारणवत् इन्धनाग्न्यादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नस्य शाल्यादोदनकार्यस्य शाल्यादितन्दुलोपादानकारणवत्

गाथा ९ । भावार्थ—इस लोकमें जीव और पुद्गलके समय समयमें नवजीर्णतारूप स्वभाव ही से परिणाम है सो परिणाम किसी एक द्रव्यकी विना सहायताके होता नहीं । जैसे कि गतिस्थिति अवगाहना धर्मादि द्रव्यके सहाय विना नहीं होय, तैसे ही जीव पुद्गलकी परिणति किसी एक द्रव्यकी सहायताके विना नहीं होती इसकारण परिणमनको कोई द्रव्य सहाय चाहिये ऐसा अनुमान आता है अतएव आगम प्रमाणतासे कालद्रव्य ही निमित्त कारण बनता है इस कालके विना द्रव्यके परिणामकी सिद्धि होती नहीं । इस कारण निश्चयकाल अवश्य मानना योग्य है । इस निश्चय कालकी जो पर्याय है सो समयादिरूप व्यवहारकाल जानना । यह व्यवहारकाल जीव और पुद्गलकी परिणतिद्वारा प्रगट होता है । पुद्गलके नवजीर्णपरिणामके आधीन जाना जाता है । इस जीव पुद्गलके परिणामोंके और कालका आपसमें निमित्तनैमित्ति कभाव है । कालके आश्रय जीवपुद्गलके परिणामका अस्तित्व है । और जीवपुद्गलके

१ स परिणाम । २ अस्ति । सोऽपि । ३ द्रव्य । कथनमात्रः । आयत्तः तदधीन इत्यर्थः ।
५ पक्षा

अथ व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम्,—

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।
मासोदुअयणसंवच्छरोत्ति कालो परायत्तो ॥ २५ ।

भित्तिः । आकाशस्य सर्वसाधारणावकाशदानमिव धर्मद्रव्यस्य सर्वसाधारणगतिहेतुत्वमिव तथा धर्मस्य स्थितिहेतुत्वमिव । तदपि कथमिति चेत् । अन्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति संकरव्यतिकरदोषप्रसंगात् । किंच यदि सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीयपरिणतेरुपादानकारणवत् सहकारिकारणान्यपि भवन्ति तर्हि गतिस्थित्यवगाहपरिणतिविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यं सहकारिकारणभूतं किं प्रयोजनं गतिस्थित्यवगाहं स्वयमेव भविष्यति । तथा सति किं दूषणं । जीवपुद्गलद्वे एव द्रव्ये स्तः आगमविरोधः । अत्र विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावस्य शुद्धजीवास्तिकायस्याभिन्नीतनतकाले संसारचक्रे भ्रमितोऽयं जीवः ततः कारणाद्वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा समस्तरागादिरूपविकल्पविकल्पसंकल्पोल्माडपरिहारकाले जीवन् स एव निरंतरं ध्यातव्य इति भावार्थः ॥ २४ ॥ इति निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ समयादिव्यवहारकालस्य निश्चयेन परमार्थकालपर्यायस्यापि जीवपुद्गलनवजीर्णादिपरिणत्या व्यज्यमानत्वात् कथ-

---

रूप निश्चयकालद्रव्यका जानना । **भावार्थ—**कालद्रव्य अन्य द्रव्योंकी परिणतिको सहाई है कैसें? जैसें कि—शीतकालमें शिष्यजन पठनक्रिया अपने आप करते हैं, तिनको बहिरंगमें अग्नि सहाय होता है तथा जैसे कुंभकारका चाक आपहीतैं फिरता है, तिसके परिभ्रमणको सहाय नीचकी कीली होती है इसी प्रकार सब द्रव्योंकी परणतिको निमित्तभूत कालद्रव्य है ॥ २४ ॥ यहां कोई प्रश्न करै कि—लोकाकाशसे बाहर कालद्रव्य नहीं हैं वहाँ आकाश किसकी सहायतासे परिणमता है? तिसका **उत्तर—**जैसे—कुंभकारका चाक एक जगहँ फिराया जाता है, परन्तु वह चाक सर्वांग फिरता है तथा जैसें—एक जगहँ स्पर्शेन्द्रियका मनोज्ञ विषय होता है, परन्तु सुसका अनुभव सर्वांग होता है। तथा—सर्प एक जगहँ काटता है, परन्तु विष सर्वांगमें चढता है। तथा फोड आदि व्याधि एक जगह होती हैं, परन्तु वेदना सर्वांगमें होती है—तैसें ही कालद्रव्य लोकाकाशमें तिष्ठता है, परन्तु अलोकाकाशकी परिणतिको भी निमित्तकारणरूप सहाय होता है। फिर यहां कोई प्रश्न करै कि—कालद्रव्य अन्य द्रव्योंकी परणतिको तो सहाय है, परन्तु कालद्रव्यकी परणतिको कौन सहाय है? **उत्तर—**कालको काल ही सहाय है जैसें कि आकाशको आधार आकाश ही है तथा जैसें ज्ञान सूर्य रत्न दीपादिक पदार्थ स्वपरप्रकाशक होते हैं इनके प्रकाशको अन्य वस्तु सहाय नहीं होती है—तैसें ही कालद्रव्य भी स्वपरिणतिको स्वयं ही सहाय है इसकी परिणतिको अन्य निमित्त नहीं है। फिर कोई प्रश्न करै कि—जैसें काल अपनी परिण

अथ व्यवहारकालस्य कथंचित्परायत्तत्वं द्योतितम्,—

समओ णिमिसो कट्ठा कला य णाली तदो दिवारत्ती ।
मासोदुअयणसंवच्छरोत्ति कालो परायत्तो ॥ २५ ।

तेर् । आकाशस्य सर्वसाधारणावगाहदानमिव धर्मद्रव्यस्य सर्वसाधारणगतिहेतुत्वमिव तथा धर्मस्य स्थितिहेतुत्वमिव । तदपि कथमिति चेत् । अन्यद्रव्यस्य गुणोऽन्यद्रव्यस्य कर्तुं नायाति संकरव्यतिकरदोषप्रसंगे । किंच यदि सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीयपरिणतस्योपादानकारणत्वं सहकारिकारणान्यपि भवन्ति तर्हि गतिस्थित्यवगाहपरिणतिविषये धर्माधर्माकाशद्रव्यं सहकारिकारणत्वेन किं प्रयोजनं गतिस्थित्यवगाहं स्वयमेव भविष्यति । तथा सति किं दूषणं । जीवपुद्गलानां द एव दृष्ट स आगमविरोधः । अत्र विशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावस्य शुद्धजीवास्तिकायस्यादर्शज्ञानकाले संसारचक्रं भ्रमितोऽयं जीवः तत् कारणाद्वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा समस्तरागादिविकल्पजालपरिहारेण स्वशुद्धात्मा[illegible] जीवः स एव निरंतरं ध्यातव्य इति भावार्थः ॥ २४ ॥ इति निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ समयादिव्यवहारकालस्य निश्चयेन परमार्थकालपर्यायस्यापि जीवपुद्गलनवजीर्णादिपरिणत्या व्यज्यमानत्वात् पर-

---

रूप निश्चयकालद्रव्यको जानना । **भावार्थ**—कालद्रव्य अन्य द्रव्योंकी परिणतिको सहाइ है कैसे ? जैसे कि—शीतकालमें शिष्यजन पठनक्रिया अपने आप करते हैं, तिनको बहिरंगमें अग्नि सहाय होता है तथा जैसे कुंभकारका चाक आपहीतें फिरता है, तिसके परिभ्रमणको सहाय नीचकी कीली होती है इसी प्रकार सब द्रव्योंकी परणतिको निमित्तभूत कालद्रव्य है ॥ २४ ॥ यहां कोई प्रश्न करै कि—लोकाकाशसे बाहर कालद्रव्य नहीं है वहाँ आकाश किसकी सहायतासे परिणमता है ? तिसका उत्तर—जैसे—कुंभकारका चाक एक जगहँ फिराया जाता है, परन्तु वह चाक सर्वांग फिरता है तथा जैसे—एक जगहँ स्पर्शेन्द्रियका मनोज्ञ विषय होता है, परन्तु सुखका अनुभव सर्वांग होता है । तथा—सर्प एक जगहँ काटता है, परन्तु विष सर्वांगमें चढ़ता है । तथा फोड़ा आदि व्याधि एक जगह होती है, परन्तु वेदना सर्वांगमें होती है—तैसे ही कालद्रव्य लोकाकाशमें तिष्ठता है, परन्तु अलोकाकाशकी परिणतिको भी निमित्तकारणरूप सहाय होता है । फिर यहां कोइ प्रश्न करै कि—कालद्रव्य अन्यद्रव्योंकी परणतिको तो सहाय है, परन्तु कालद्रव्यकी परणतिको कौन सहाय है ? उत्तर—कालको काल ही सहाय है जैसे कि आकाशको आधार आकाश ही है तथा जैसे ज्ञान सूर्य रत्न दीपादिक पदार्थ स्वपरप्रकाशक होते हैं इनके प्रकाशको अन्य वस्तु सहाय नहीं होती है—तैसे ही कालद्रव्य भी स्वपरिणतिको स्वयं ही सहाय है इसकी परिणतिका अन्य निमित्त नहीं है । फिर कोइ प्रश्न करै कि—जैसे काल अपनी परिण

समयो निमिषः काष्ठा कला च नाली ततो दिवारात्रः ।
मासर्त्वयनसंवत्सरमिति कालः परायत्तः ॥ २५ ॥

परमाणुप्रचलनायत्तः समयः, नयनपुटघटनायत्तो निमिषः, तत्संख्याविशेषतः काष्ठा कला नाडी च । गगनमणिगमनायत्तो दिवारात्रः । तत्संख्याविशेषतः मासः, ऋतुः,

चित्परायत्तत्वं द्योतयति,—**समओ** मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुना निमित्तभूतेन व्यक्तीक्रियमाणः समयः **णिमिसो** नयनपुटविघटनेन व्यज्यमानः संख्यातीतसमयो निमिषः **कट्ठा** पञ्चदशनिमिषैः काष्ठा **कला य** त्रिंशत्काष्ठाभिः कला **णाली** साधिकविंशतिकलाभिर्घटिका घटिकाद्वयं मुहूर्तः **तदो दिवारत्ती** त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः **मासो** त्रिंशद्दिवसैर्मासः **उडु** मासद्वयं ऋतुः **अयण** ऋतुत्रयमयनं **संवत्सरोत्ति कालो** अयनद्वयं वर्षं इति । इतिशब्देन पल्योपमसागरोपमादिरूपो व्यवहारकालो ज्ञातव्यः । स च मंदगतिपरिणतपुद्गलपरमाणुव्यज्यमानः समयो जलभाजनादिबहिरङ्गनिमित्तभूतपुद्गलप्रकटीक्रियमाणा घटिका, दिनकरबिंबगमनादिक्रियाविशेषव्यक्तीक्रियमाणो दिवसादिः व्यवहारकालः । कथंभूतः । **परायत्तो** कुम्भकारादिबहिरङ्गनिमित्तोत्पन्नमृत्पिण्डोपादानकारणजनितघटवन्निश्चयेन द्रव्यकालजनितोऽपि व्यवहारेण परायत्तः पराधीन इत्युच्यते । किंच अन्येन क्रियाविशेषणादित्यगत्यादिना परिच्छिद्यमानोऽन्यस्य जातकादेः परिच्छित्तिहेतुः स एव कालोऽन्यो द्रव्यकालो नास्तीति । तन्न । पूर्वोक्तसमयादिपर्यायरूप आदित्यगत्यादिना व्यज्यमानः स व्यवहारकालः यथादित्यगत्यादिपरिणते सहकारिकारणभूत

तिको आप सहायक है, तैसें अन्य जीवादिक द्रव्य भी अपनी परिणतिको सहाय क्यों नहीं होवें? कालकी सहायता क्यों बताते हो? **उत्तर**—कालद्रव्यका विशेष गुण यही है जो कि अन्य पदार्थोंकी परिणतिको निमित्तभूत वर्त्तना लक्षण हो जैसें आकाश धर्म अधर्म इनके विशेषगुण अन्यद्रव्योंको अवकाश, गमन, स्थानको सहाय देता है तैसें ही कालद्रव्य अन्य द्रव्योंके परिणमावनेको सहाय है। और उपादान अपनी परिणतिको आप ही सब द्रव्य हैं। उपादान एक द्रव्यको अन्य द्रव्य नहीं होता। कथंचित्प्रकार निमित्तकारण अन्य द्रव्यको अन्य पदार्थ होता है अवकाश गति स्थिति परणतिको आकाश आदिक द्रव्य कहे हैं और जो अन्य द्रव्य निमित्त न माना जाय तो जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रह जायें ऐसा होनेसे आगम विरोध होय और लोकमर्यादा न रहै, लोक षड्द्रव्यमयी है, यह सब कथन निश्चय कालका जानना अब व्यवहारकालका वर्णन किया जाता है,—[**कालः इति**] यह व्यवहार काल [**परायत्तः**]

१ पञ्चदशनिमिषैः काष्ठा २ विंशतिकाष्ठाभिः कला ३ साधिकविंशतिकलाभिः घटिका ४ त्रिंशन्मुहूर्तैरहोरात्रः ।

अयनं, संवत्सर इति । एवंविधो हि व्यवहारकालः केवलकालपर्यायमात्रत्वेनावधारयितु-मशक्यत्वात् परायत्त इत्युपमीयत इति ॥ २५ ॥

स द्रव्यरूपो निश्चयकालः । ननु आदित्यगत्यादिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं कालस्य किमा यातं । नैवं । गतिपरिणतेर्धर्मद्रव्यं सहकारिकारणं भवति कालद्रव्यं च, सहकारिकारणानि बहून्यपि भवन्ति यतः कारणात् घटोत्पत्तौ कुम्भकारचक्रचीवरादिवत् मत्स्यादीनां जलादिवत् मनुष्याणां शकटादिवत् विद्याधराणां विद्यामन्त्रौषधादिवत् देवानां विमानवत्तिर्यादिकालद्रव्यं गतिकारणं । कुत्र भणितं तिष्ठतीति चेत् । "पोग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणेहिं" क्रियावतो भवन्तीति कथयन्ति । ननु यावता कालेनैकप्रदेशातिक्रमं करोति पुद्गलपरमाणुः प्रमाणेन समयव्याख्यानं कृतं स एकसमये चतुर्दशरज्जुगतिकाले यावन्तः प्रदेशास्तावन्तः समया भवन्तीति । नैवं । एकप्रदेशातिक्रमेण या समयोत्पत्तिर्भणिता सा मन्दगतिगमनेन, चतुर्दशरज्जुगमनं यदेकसमये भणितं तत्क्रमेण शीघ्रगत्या कथितमिति नास्ति दोषः । अत्र दृष्टांतमाह—यथा कोपि देवदत्तो योजनशतं दिनशतेन गच्छति स एव विद्याप्रभावेण दिनेनैकेन गच्छति तत्र किं दिनशतं भवति नैवैकदिनमेव तथा शीघ्रगतिगमने सति चतुर्दशरज्जु

यद्यपि निश्चयकालकी समयपर्याय है तथापि जीव पुद्गल नवजीर्णरूप परिणामसे उपजा हुवा कहा जाता है। अन्यके द्वारा कालकी पर्यायका परिमाण किया जाता है, तातें पराधीन है सो ही दिखाया जाता है [समय] मन्दगतिसे परिणया जो परमाणु तिसकी अतिसूक्ष्म चाल जितनेमें होय सो समय है [निमिष] जितनेमें नेत्रोंका पलक खुले उसका नाम निमिष है असंख्यात समय जब बीतते हैं, तब एक निमिष होता है और [काष्ठा] पन्द्रह निमिष मिलें तो एक काष्ठा होय। [च] और [कला] जो बीस काष्ठा होंय तो एक कला होती है। और [नाली] कुछ अधिक जो बीस कला बीते तो एक नाली या घड़ी होती है सो जलकटोरी घड़ीयाल आदिकसे जानी जाती है। जो दोय घड़ी होय तो मुहूर्त होय। [दिवारात्र] जो तीस मुहूर्त बीत जावें तो एक दिनरात्रि होता है, सो सूर्यकी गतिसे जाना जाता है। और [मासर्त्वयनसंवत्सर] तीस दिनका महीना, दो महीनका ऋतु, तीन ऋतुका अयन, दो अयनका एक वर्ष होता है और जहांताई वर्ष गिने जांय, वहांताई संख्यातकाल कहा जाता है। इसके उपरांत पल्य सागर आदिक असंख्यात वा अनंतकाल जानना। यह व्यवहारकाल इसी प्रकार परद्रव्य परिणमनकी मर्यादासे गिन लिया जाता है सो कैसे निश्चयकाल है। सबसे सूक्ष्म समय नामा कालकी पर्याय है [illegible] स्थूलकालकी पर्याय हैं। समयके [illegible] सूक्ष्म [illegible] परमाणुके [illegible]
बिना व्यवहारकालकी [illegible]

अथामीषामेव विशेषव्याख्यानं । तत्र तावज्जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं भट्टमतानुसारि शिष्यं प्रति सर्वज्ञसिद्धिः ।

अत्र संसारावस्थस्याऽऽत्मनः सोपाधि निरुपाधि च स्वरूपमुक्तम्—

जीवोत्ति हवदि चेदा उपओगविसेसिदो पहू कत्ता ।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥ २७ ॥

जीव इति भवति चेतयितोपयोगविशेषितः प्रभुः कर्ता ।
भोक्ता च देहमात्रो न हि मूर्तः कर्मसंयुक्तः ॥ २७ ॥

आत्मा हि निश्चयेन भावप्राणधारणाज्जीवः । व्यवहारेण द्रव्यप्राणधारणाज्जीवः । निश्चयेन

स्तिकायषड्द्रव्यप्ररूपणप्रकरणेऽतंराधिकारसहितप्रथममहाधिकारमध्ये निश्चयव्यवहारकालप्ररूपणाभिधानः पंचगाथाभिः स्थलत्रयेण तृतीयोंतराधिकारो गतः । एवं समयशब्दार्थपीठिका द्रव्यपीठिका निश्चयव्यवहारकालव्याख्यानमुख्यतया चांतराधिकारत्रयेण षड्विंशतिगाथाभिः पंचास्तिकायपीठिका समाप्ता । अथ पूर्वोक्तषड्द्रव्याणां चूलिकारूपेण विस्तरव्याख्यानं क्रियते । तद्यथा । "परिणाम जीव मुत्तं सपदेसं एय खेत्त किरिया य । णिच्चं कारण कत्ता सव्वगदिदर हि यपदेसो" ॥ १ ॥ **परिणाम**परिणामिनौ जीवपुद्गलौ स्वभावविभावपरिणामाभ्यां शेषचत्वारि द्रव्याणि विभावव्यंजनपर्यायाभावाद् मुख्यवृत्त्या पुनरपरिणामीनि । **जीव**शुद्धनिश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं शुद्धचैतन्यं प्राणशब्देनोच्यते तेन जीवतीति जीवः व्यवहारनयेन पुनः कर्मोदयजनितद्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीवः पुद्गलादिपंचद्रव्याणि पुनरजीवरूपाणि । **मुत्तं** अमूर्तशुद्धात्मनो विलक्षणा स्पर्शरसगंधवर्णवती

आगे इनही षद्द्रव्यपंचास्तिकायका विशेष व्याख्यान किया जाता है । सो पहिले ही संसारी जीवका स्वरूप नयविलासकर उपाधिसंयुक्त और उपाधिरहित दिखाते हैं,–**[जीवः]** जो सदा (त्रिकालमें) निश्चयनयसे भावप्राणोंकर व्यवहार नयसे द्रव्य प्राणोंकर जीवै है सो **[इति]** यह जीवनामा पदार्थ **[भवति]** होता है । सो यह जीवनामा पदार्थ कैसा है ? **[चेतयिता]** निश्चय नयकी अपेक्षा अपने चेतना गुणसे अभेद एक वस्तु है व्यवहारकर गुणभेदसे चेतनागुणसंयुक्त है इस कारण जाननेवाला है । फिर कैसा है ? **[उपयोगविशेषितः]** जाननेरूप परिणामोंसे विशेषित कहिये लखा जाता है । जो यहां कोई पूछै कि चेतना और उपयोग इन दोनोंमें क्या भेद है ? तिसका उत्तर यह है कि–चेतना तो गुणरूप है उपयोग उस चेतनाकी जाननरूप पर्याय है यह ही इनमें भेद है । फिर कैसा है यह आत्मा ? **[प्रभुः]** आस्रव संवर बन्ध निर्जरा मोक्ष इन पदार्थोंमें निश्चय करके आप भावकर्मोंकी

---

१ पंचास्तिकायानां २ सत्तासुखबोधचैतन्यात् ३ आत्मा हि शुद्धनिश्चयेन सुखसत्ताचैतन्यबोधादि शुद्धप्राणैर्जीवति तथाशुद्धनिश्चयेन क्षायोपशमिकौदयिकभावप्राणैर्जीवति । तथैवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यप्राणैश्च यथासंभवं जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवो भवति ।

चिदात्मकत्वाद्व्यवहारेण चिच्छक्तियुक्तत्वाच्चेतयिता। निश्चयेनापृथग्भूतेन व्यवहारेण पृथग्भूतेन चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेनोपलक्षितत्वादुपयोगविशेषितः । निश्चयेन भावकर्मणा

मूर्तिरहितत्वेन रसाद्यभावात् मूर्तं पुद्गलं जीवद्रव्यं पुनरनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण मूर्तमपि शुद्धनिश्चयनयेनामूर्तं धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि चामूर्तानि । सप्रदेशः लोकमात्रप्रमितासंख्येयप्रदेशलक्षणं जीवद्रव्यमादिं कृत्वा पञ्चद्रव्याणि पञ्चास्तिकायसंज्ञानि सप्रदेशानि कालद्रव्यं पुनर्बहुप्रदेशलक्षणकायत्वाभावादप्रदेशं । एय द्रव्यार्थिकनयेन धर्माधर्माकाशद्रव्याण्येकानि भवन्ति जीवपुद्गलकालद्रव्याणि पुनरनेकानि । खेत्तं सर्वद्रव्याणामवकाशदानसामर्थ्यात्क्षेत्रमाकाशमेकं शेषपञ्चद्रव्याण्यक्षेत्राणि । किरिया य क्षेत्रात् क्षेत्रान्तरगमनरूपा परिस्पन्दवती चलनवती क्रिया सा विद्यते ययोस्तौ क्रियावन्तौ जीवपुद्गलौ धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि पुनर्निष्क्रियाणि । णिच्च धर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि यद्यप्यर्थपर्यायत्वेनानित्यानि तथापि मुख्यवृत्त्या विभावव्यञ्जनपर्यायाभावान्नित्यानि, द्रव्यार्थिकनयेन च जीवपुद्गलद्रव्ये पुनर्यद्यपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्ये तथाप्यगुरुलघुपरिणतिरूपस्वभावपर्यायापेक्षया विभावव्यञ्जनपर्यायापेक्षया चानित्ये । कारणपुद्गलधर्माधर्माकाशकालद्रव्याणि व्यवहारनयेन जीवस्य शरीरवाङ्मनःप्राणापानादिगतिस्थित्यवगाहवर्तनाकार्याणि कुर्वन्तीति कारणानि भवन्ति, जीवद्रव्यं पुनर्यद्यपि गुरुशिष्यादिरूपेण परस्परोपग्रहं करोति तथापि पुद्गलादिपञ्चद्रव्याणां किमपि न करोतीत्यकारणं । कत्ता शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन यद्यपि बन्धमोक्षद्रव्यभावरूपपुण्यपापघटपटादीनामकर्ता जीवस्तथाप्यशुद्धनिश्चयेन शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणतः सन् पुण्यपापबन्धयोः कर्ता तत्फलभोक्ता च भवति विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजशुद्धात्मद्रव्यसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धोपयोगेन तु परिणतः सन् मोक्षस्यापि कर्ता तत्फलभोक्ता च शुभाशुभशुद्धपरिणामानां परिणमनमेव कर्तृत्वं सर्वत्र ज्ञातव्यमिति पुद्गलादीनां पञ्चद्रव्याणां च स्वकीयस्वकीयपरिणामेन परिणमनमेव कर्तृत्वं वस्तुवृत्त्या पुनः पुण्यपापादिरूपेणाकर्तृत्वमेव । सव्वगदं लोकालोकव्याप्त्यपेक्षया सर्वगतमाकाशं भण्यते लोकव्याप्त्यपेक्षया धर्माधर्मौ च जीवद्रव्यं पुनरेकजीवापेक्षया लोकपूरणावस्थायां विहाय असर्वगतं नानाजीवापेक्षया सर्वगतमेव भवति पुद्गलद्रव्यं पुनर्लोकरूपमहास्कन्धापेक्षया सर्वगतं शेषपुद्गलापेक्षया सर्वगतं न भवतीति कालद्रव्यं पुनरेककालाणुद्रव्यापेक्षया

समर्थतासंयुक्त है । व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंकी ईश्वरता संयुक्त है । इस कारण प्रभु है । फिर कैसा है ? [कर्त्ता] निश्चय नयसे तो पौद्गलिक कर्मोंका निमित्त पाकर जो जो परिणाम होते हैं तिनका कर्त्ता है । व्यवहारसे आत्माके अशुद्ध परिणामोंका निमित्त पाय जो पौद्गलीक कर्म परिणाम उपजते हैं तिनका कर्त्ता है । फिर कैसा है ? [भोक्ता]

---

१ शुद्धनिश्चयेन शुद्धज्ञानचेतनया तथाऽशुद्धनिश्चयेन कर्मकर्मफलरूपया चाशुद्धचेतनया युक्तत्वाच्चेतयिता भवति २ निश्चयेन केवलज्ञानरूपशुद्धोपयोगेन तथाऽशुद्धनिश्चयेन मतिज्ञानादिक्षायोपशमिकाशुद्धोपयोगेन युक्तत्वादुपयोगविशेषितो भवति ।

व्यवहारेण द्रव्यकर्मणामास्रवणबंधनसंवरणनिर्जरणमोक्षणेषु स्वयमीशत्वात्प्रभु । निश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमित्तात्मपरिणामाना व्यवहारेणात्मपरिणामनिमित्तपौद्गलिककर्मणा कर्तृत्वात्कर्ता। निश्चयेन शुभाशुभकर्मनिमित्तसुखदुःख परिणामाना व्यवहारेण शुभाशुभकर्म्मसपादितेष्टानि

सन्गत न भवति लोकप्रदेशप्रमाणनानाकारगणविवक्षया ऽसंख्ये सगत । इदरहि यत्परेमो यद्यपि सर्वद्रव्याणि व्यवहारेणैकक्षेत्रावगाहेनान्योन्यानुप्रवेशेन तिष्ठति तथापि निश्चयेन चेतना चेतनादिस्वकीयस्वकीयस्वरूप न त्यजन्तीति । अत्र षड्द्रव्येषु मध्ये वीतरागचिदानन्दैकादिगुण स्वभाव शुभाशुभमनोवचनकायव्यापाररहित निजशुद्धात्मद्रव्यमेवोपादेयमिति भावार्थ ॥ ९ ॥ इत ऊर्ध्वं "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादिगाथाया पूर्वं पचास्तिकाया ये सूचितास्तेषामेव विशे पव्याख्यान क्रियते । तत्र पाठक्रमेण त्रिपचाशद्गाथाभिर्नवांतराधिकारैर्जीवास्तिकायव्याख्यान प्रारभ्यते । तासु त्रिपचाशद्गाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् चार्वाकमतानुसारिशिष्य प्रति जीवसि द्धिपूर्वकत्वेन नवाधिकारक्रमसूचनार्थं "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्याद्येकाधिकारसूत्रगाथा भवति । "तत्रादौ प्रभुता तावज्जीवत्व शेपमात्रता । अमूर्तत्व च चैतन्यमुपयोगास्तथा क्रमात् ॥ १ ॥ कर्तृता भोक्तृता कर्मायुक्तत्व च त्रय तथा । कथ्यते यौगपद्येन यत्र तत्रानुपूर्व्यत ॥ २ ॥" इति श्लोकद्वयेन भट्टमतानुसारिशिष्य प्रति सर्वज्ञसिद्धिपूर्वकत्वेनाधिकारव्याख्यान क्रमश सूचितम् । तत्रादौ प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्य प्रति सर्वज्ञसिद्ध्यर्थं "कम्ममल" इत्यादि गाथाद्वय भवति तदनतर चार्वाकमतानुसारिशिष्य प्रति जीवसिद्ध्यर्थ जीवत्वव्याख्या नरूपेण "पाणेहिं चदुहिं" इत्यादि गाथात्रय, अथ नैयायिकमीमासकसाख्यमताश्रितशिष्य प्रति जीवस्य स्वदेहमात्रस्थापनार्थं "जह पउम" इत्यादिसूत्रद्वय, तदनतर भट्टचार्वाकमतानुकूलशिष्य प्रति जीवस्यामूर्तत्वज्ञापनार्थं "जेसिं जीवसहावो" इत्यादिसूत्रत्रय अथानादिचैतन्यसमर्थनव्या- ख्यानेन पुनरपि चार्वाकमतनिराकरणार्थं "कम्माण फल"मित्यादि सूत्रद्वय । एवमधिकारगाथा- मादिं कृत्वांतराधिकारपचकसमुदायेन त्रयोदश गाथा गता । अथ नैयायिकमतानु सारिशिष्यसबोधनार्थं "उवओगो खलु दुविहो" इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकार कथ्यते—तत्रैकोनविंशतिगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावत् ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनार्थं "उवओगो- खलु" इत्यादिसूत्रमेक, तदनतरमष्टविधज्ञानोपयोगसज्ञाकथनार्थं "आभिणि" इत्यादि सूत्रमेक, अथ मत्यादिसज्ञानपचकविवरणार्थं "मदिणाण"मित्यादि पाठक्रमेण सूत्रपञ्चक, तदनतरमज्ञान

निश्चयनयसे तो शुभ अशुभ कर्मोंके निमित्तसे उत्पन्न हुये जे सुखदु खमय परिणाम, तिनका भोक्ता है और व्यवहारसे शुभ अशुभ कर्मके उदयसे उत्पन्न जो इष्ट अनिष्ट

१ समर्थत्वात् २ शुद्धनिश्चयेन शुद्धभावाना परिणामाना तथैवाशुद्धनिश्चयेन पौद्गलिककर्मनिमि त्तात्परिणामानां रागद्वेषमोहाना कर्तृत्वात् कर्ता ३ निश्चयेन मोक्षमोक्षकारणरूपशुद्धपरिणमनसमर्थ त्वात्तथैवाशुद्धनिश्चयेन संसारससारकारणरूपाशुद्धपरिणमनसमर्थत्वात् प्रभुर्भवति । भावकर्मरूपरागादिभावानां तथाचानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मणो कर्मबंधादीना कर्तृत्वात् कर्ता भवति ।

णामानुरूपचैतन्यपरिणामात्माभिव्यवहारेण चैतन्यपरिणामानुरूपपुद्गलपरिणामात्मभि कर्मभि , संयुक्तत्वात्कर्मसंयुक्त इति ॥ २७ ॥

धसहितत्वात्कर्मसंयुक्तश्च भवति । इति शब्दार्थनयार्थौ कथितौ, इदानीं मतार्थ कथ्यते—जीवत्वव्याख्याने "वरउक्खर भवसारि धनगणियपियराय । चुल्लियहडइपिपुणमयउ णर दिट्ठना जाय ॥" इति दोहकसूत्रकथितनवद्यातधावाकमतानुसारिशिष्यापेक्षया जीवसिद्धयर्थं अनादिचेतनागुणव्याख्यान च तदर्थमेव । अथवा सामान्यचेतनाव्याख्यान सर्वमतसाधारण ज्ञातव्य, अभिन्नज्ञानदर्शनोपयोगव्याख्यान तु नैयायिकमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थ मोक्षोपदेशकमोक्षसाधकप्रभुत्वव्याख्यान वीतरागसर्वज्ञप्रणीत वचन प्रमाण भवतीति "रयणदियदिणयरुद्दहि उडु दाउपासणुसुणरप्पर लिहउ क्षगणि णर दिट्ठा जाणु" इति दोहकसूत्रकथितनवद्यातैर्भट्टचार्वाकमताश्रितशिष्यापेक्षया सर्वज्ञसिद्धयर्थ, शुद्धाशुद्धपरिणामकर्तृत्वव्याख्यान तु नास्याकर्तृत्वैकांतसांख्यमतानुयायिशिष्यसंबोधनार्थं भोक्तृत्वव्याख्यान कर्ता कर्मफल न भुंक्त इति बौद्धमतानुसारिशिष्यप्रतिबोधनार्थं स्वदेहप्रमाण व्याख्यान नैयायिकमीमांसककपिलमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थ अमूर्तत्वव्याख्यान भट्टचार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं द्रव्यभावकर्मसंयुक्तत्वव्याख्यान च सदामुक्तनिराकरणार्थमिति मतार्थो ज्ञातव्य । आगमार्थव्याख्यान पुनर्जीवचेतनादिधर्माणां सर्वथित्वेन परमागमे प्रसिद्धमेव, कर्मोपाधिजनितमिथ्यात्वरागादिरूपसमस्तविभावपरिणामांस्त्यक्त्वा निरुपाधिकेवलज्ञानादिगुणयुक्तशुद्धजीवास्तिकाय एव निश्चयनयेनोपादेयत्वेन भावयितव्य इति भावार्थ । एव शब्दनयमतागमभावार्था व्याख्यानकाले यथासंभव सर्वत्र ज्ञातव्या । जीवास्तिकायसमुदायपातनिकायां पूर्व चार्वाकादिमतव्याख्यान कृत पुनरपि किमर्थमिति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति परिहारमाह । तत्र वीतरागसर्वज्ञसिद्धे सति व्याख्यान प्रमाण प्राप्नोतीति व्याख्यानत्रमज्ञापनार्थं प्रभुताधिकारमुख्यत्वेनाधिकारनवक सूचित । तथा चोक्त—वक्तृप्रामाण्याद्वचनप्रामाण्यमिति । अत्र तु सति धर्मिणि धर्माश्चिन्त्यत इति वचनाच्चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां धर्माणामाधारभूते विशेष्यलक्षणे जीवे धर्मिणि सिद्धे सति तेषां चेतनागुणादिविशेषणरूपाणां

एक स्वभाव होनेसे मूर्तीक विभाव परिणामरूप परिणमता है तथापि निश्चय स्वाभाविक भावसे अमूर्त है फिर कैसा है ? [कर्मसंयुक्त] निश्चयनयसे पुद्गल कर्मोंका निमित्त पाय उत्पन्न हुये जे अशुद्ध चैतन्य विभाव परिणामकर्म, उनकर संयुक्त है । व्यवहारसे अशुद्ध चैतन्य परिणामोंका निमित्त पाय जो हुये हैं पुद्गलपरिणामरूप द्रव्य कर्म, तिनकरके सहित है ऐसा यह संसारी आत्माका शुद्ध अशुद्ध कथन नयोंकी विवक्षासे सिद्धांतानुसार जान

१ [illegible] सिद्धान्तव्यवहार । [illegible]
[illegible]रूपभावकर्मसंयुक्त भवा

इद सिद्धस्य निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखसमर्थनम्,—

जादो सय स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य ।
पप्पोदि सुहमणंत अव्वाबाधं सगममुत्तं ॥ २९ ॥

जात स्वय स चेतयिता सर्वज्ञ सर्वलोकदर्शी च ।
प्राप्नोति सुखमनतमव्याबाध स्वकममूर्तम् ॥ २९ ॥

स्यायामपि योजनीया इति सूत्राभिप्राय ॥२८॥ अथ यदेव पूर्वोक्त निरुपाधिज्ञानदर्शनसुखस्वरूप तस्यैव "जादो सय"मितिवचनेन पुनरपि समर्थन करोति;—**जादो सय स चेदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य** आत्मा हि निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसुखस्वभावस्तावत् इत्थभूतोऽपि

यहा कोई पूछै कि आत्माका लक्षण तो चेतना है सो वह विभावरूप कैसें होय ?

उत्तर—ससारी जीवके अनादिकालसे ज्ञानावरणादि कर्मोका सबध है । उन कर्मोके सयोगसे आत्माकी चैतन्यशक्ति भी अपने निजस्वरूपमे गिरीहुई है तातैं विभावरूप होता है । जैसे कि कीचके सबधसे जलका स्वच्छ स्वभाव था सो छोड दिया है तैसें ही कर्मोके सबधसे चेतना विभावरूप हुई है इस कारण समस्त पदार्थोके जाननेको असमर्थ है । एक देश कछुयक पदार्थोंको क्षयोपशमकी यथायोग्यतासे जानता है । और जब काललब्धि होती है तब सम्यग्दर्शनादि सामग्री आकार मिल जाती है तब ज्ञानावरणादि कर्मोका सबध नष्ट होता है और शुद्ध चेतना प्रगट होती है—उस शुद्ध चेतनाके प्रगट होनेपर यह जीव त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको एक ही समयमें प्रत्यक्ष जानलेता है । निश्चल कूटस्थ अवस्थाको कथचित्प्रकार प्राप्त होता है । और भावि होती नहीं, कुछ और जानना रहा नाहीं, इस कारण अपने स्वरूपसे निवृत्ति नहीं होती ऐसी, शुद्ध चेतनासे निश्चल हुवा जो यह आत्मा सो सर्वदर्शी सर्वज्ञभावको प्राप्त हो गया है तब इसके द्रव्यकर्मके जो कारण हैं विभाव भावकर्म तिनके कर्तृत्वका उच्छेद होता है । और कर्म उपाधिके उदयसे उत्पन्न होते हैं जे सुखदु ख विभाव परिणाम तिनको भोगना भी नष्ट होता है । और अनादि कालसे लेकर विभाव पर्य्यायोंके होनेसे हुवा था जो आकुलतारूप खेद उसके विनाश होनेसे स्वरूपमें स्थिर अनत चैतन्य स्वरूप आत्माके स्वाधीन आत्मीक स्वरूपका अनुभूत रूप जो अनाकुल अनत सुख प्रगट हुवा है उसका अनतकालपर्यंत भोग बना रहेगा । यह मोक्षावस्थामें शुद्ध आत्माका स्वरूप जानना । आगे पहिले ही कह आये जो आत्माके ज्ञानदर्शन सुखभाव तिनको फिर भी आचार्य निरुपाधि शुद्धरूप कहते हैं,—[**स**] वह शुद्धरूप [**चेतयिता**] चिदात्मा [स्वय] आप अपने स्वाभाविक भावोंमे [**सर्वज्ञ**] सबका जाननवाला [**च**] और [**सर्वलोकदर्शी**] सबका देखनेहारा ऐसा [**जात**] हुवा है

आत्मा हि ज्ञानदर्शनसुखस्वभावः संसारावस्थायामनादिकर्मक्लेशसंकोचितात्मशक्तिः परद्रव्यसंपर्केण क्रमेण किंचित्किंचिज्जानाति पश्यति परप्रत्ययं मूर्तसंबद्धं सव्याबाधं सांतं सुखमनुभवति च। यदा त्वस्य कर्मक्लेशाः सामस्त्येन प्रणश्यन्ति, तदाऽनर्गलाऽसंकुचितात्मश

संसारावस्थायां कर्मावृतः सन् प्रमकरणव्यवधानजनितेन क्षायोपशमिकज्ञानेन किमपि किमपि जानाति तथाभूतदर्शनेन किमपि किमपि पश्यति तथा चेन्द्रियजनितं बाधासहितं पराधीनं मूर्तसुखं चानुभवति स एव चेतयितात्मा निश्चयनयेन स्वयमेव कालादिलब्धिवशात्सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातः । एवं जातः सन् किं करोति । पावदि इंदियरहिदं अव्वाबाहं सगमसुत्तं प्राप्नोति लभते । किं । सुखमित्यध्याहारः । कथंभूतं सुखं । इंद्रियरहितं । पुनरपि किंविशिष्टं । स्वकमात्मोत्थं । पुनश्च किंरूपं । मूर्तेन्द्रियनिरपेक्षत्वादमूर्तं च । अत्र स्वयं जातमिति वचनेन पूर्वोक्तमेव निरुपाधित्वं समर्थितं । तथा च स्वयमेव सर्वज्ञो जातः सर्वदर्शी च जातो निश्चयनयेनेति पूर्वोक्तमेव सर्वज्ञत्वं सर्वदर्शित्वं च समर्थितमिति । अथ भट्टचार्वाकमतानुसारी कश्चिदाह, नास्ति सर्वज्ञोऽनुपलब्धेः खरविषाणवत् । तत्र प्रत्युत्तरं दीयते—कुत्र सर्वज्ञो नास्त्यत्र देशे तथा चात्रकाले किं जगत्त्रये कालत्रये वा? यद्यत्र देशे काले नास्तीति भण्यते तदा सम्मतमेव । अथ जगत्त्रये कालत्रयेऽपि नास्ति तत्कथं ज्ञातं भवता? जगत्त्रयकालत्रयं सर्वज्ञरहितं ज्ञातं चेद्भवता तर्हि भवानेव सर्वज्ञः । कुत इति चेत् । योसौ जगत्त्रयं जानाति स एव सर्वज्ञः यदि पुनः सर्वज्ञरहितं जगत्त्रयं कालत्रयं न ज्ञातं भवता तर्हि जगत्त्रये कालत्रयेऽपि सर्वज्ञो नास्तीति कथं निषेधः क्रियते त्वया । अथ मतं निषेधोदाहरणं यथा कश्चिद्देवदत्तो घटरहितभूतलं चक्षुषा दृष्ट्वा पश्चाद्ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्तीति युक्तमेव, अन्यः कोऽप्यंधः किमेव ब्रूते अत्र भूतले घटो नास्त्यपि तु नैव, तथा योसौ जगत्त्रयं कालत्रयं सर्वज्ञरहितं प्रत्यक्षेण जानाति स एव सर्वज्ञ ने

और वही भगवान् [अनन्त] नहीं है पार जिसका और [अव्याबाध] बाधारहित निरंतर अखंडित तथा [अमूर्त्त] अतीन्द्रिय अमूर्तीक है ऐसे [स्वकं] आत्मीक [सुखं] आकुलतारहित परम सुखको [प्राप्नोति] पाता है। भावार्थ—आत्मा जो है सो ज्ञानदर्शनरूप सुखस्वभाव है, सो संसार अवस्थामें अनादि जो कर्मबंधके कारण संक्लेश निज पर सावरण हुवा है। आत्मशक्ति घाती गई है। परद्रव्यके संबंधसे क्षयोपशम ज्ञानके बलसे क्रमसे कुछ २ जानता वा देखता है। इस कारण पराधीन मूर्तीक इंद्रियगोचर बाधासंयुक्त विनाशीक सुखको भोगता है। और जब इसके सर्वथा प्रकार कर्मक्लेश विनशैं हैं तब बाधारहित परकी सहाय विना आप ही एककालबार समस्त पदार्थोंको जानै वा देखै है। और स्वाधीन अमूर्तीक परसंयोगरहित अतीन्द्रिय अखंडित अनंत सुखको भोगता है। इस कारण सिद्ध परमेष्ठी स्वयं जानन देखनेवाला सुखका अनुभवन करनेवाला आप ही है। और परसे कुछ

---

१ पराधीन वा पराधिन सरा २ आत्मने ।

किमसहाय स्वयमेव युगपत्समग्रं जानाति पश्यति, स्वप्रत्ययममूर्तमनन्तमव्याबाधमनन्तसुखमनुभवति च । ततः सिद्धस्य समस्तं स्वयमेव जानतः पश्यतः, सुखमनुभवतश्च, स्वं न परेण प्रयोजनमिति ॥ २९ ॥

येऽपि सर्वज्ञो न चार्वाको इव, यस्तु जगत्त्रयं कालत्रयं जानाति स सर्वज्ञमित्र कथमपि न करोति । कस्मात्[1] जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञानरहितत्वेन स्वयमेव सर्वज्ञाभावादिति । किंत्वनुपलब्धेरिति हेतुवचनं तदयुक्तं । कथमिति चेत् । किं भवतां सर्वज्ञानुपलब्धिः जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां वा, यदि भवतामनुपलब्धिरेतावता सर्वज्ञाभावो न भवति । कथमिति चेत् । परमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थाः परचित्तोऽहत्त्वंश्च भवद्भिर्यदि न ज्ञायन्ते तर्हि किं न सन्ति, अथ जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणां सर्वज्ञानुपलब्धिस्तत्कथं ज्ञातं भवद्भिरिति पूर्वमेव विचारितं तिष्ठति इति हेतुदूषणं । यदप्युक्तं खरविषाणवदिति दृष्टांतवचनं । तदप्ययुक्तं । कथमिति चेत् । खे विषाणं नास्ति न सर्वत्र, गवादौ प्रत्यक्षेण दृश्यते तथा सर्वज्ञोऽपि नियमितदेशकाले नास्ति न च सर्वत्र इति संक्षेपेण हेतुदूषणं दृष्टांतदूषणं च ज्ञातव्यं । अत्र मतं सर्वज्ञाभावे दूषणं दत्तं भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावे किं प्रमाणं । तत्र प्रमाणं कथ्यते—अस्ति सर्वज्ञः पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावात् स्वसंवेद्यसुखदुःखादिवदिति, अथवा द्वितीयमनुमानप्रमाणं कथ्यते । तद्यथा । सूक्ष्माव्यवहितदेशांतरितकालांतरितस्वभावांतरितार्था धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशेषस्य प्रत्यक्षा भवन्तीति साध्यो धर्मः । कस्माद्धेतोः । अनुमानविषयत्वात् यद्यदनुमानविषयं तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्षं दृष्टं यथाग्न्यादि अनुमानविषयाश्चैते तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवन्तीति

प्रयोजन नहीं है । यहां कोई नास्तिकमती तर्क करता है कि, सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि सबका जानने देखनेवाला प्रत्यक्षमें कोई नहीं दीखता । जैसें गदर्भके सींग नहीं, तैसें ही कोई सर्वज्ञ नहीं है । उत्तर—सर्वज्ञ इस देशमें नहीं कि इस कालमें ही नहीं अथवा तीन लोकमें ही नहीं या तीन कालमें ही नहीं है? यदि कहो कि इस देशमें और इस कालमें नहीं तो ठीक है क्योंकि इस समय कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता और जो कहो कि तीन लोकमें तथा तीन कालमें भी नहीं है तो तुमने यह बात किसप्रकार जानी? क्योंकि तीन लोक और तीन कालकी बात सर्वज्ञके बिना कोई जान ही नहीं सक्ता और जो तुमने यह बात निश्चय करके जान ली कि कहीं भी सर्वज्ञ नहीं और किसी कालमें भी न तो हुवा न होगा तो हम कहते हैं कि तुम ही सर्वज्ञ हो, क्योंकि जो तीन लोक और तीन कालकी जानै वह ही सर्वज्ञ है। और जो तुम तीन लोक और तीन कालकी बात नहीं जानते तो तुमने तीन लोक और तीन कालमें सर्वज्ञ नहीं, ऐसा किस प्रकार जाना? जो सबका जाननहारा देखनहारा होय, वही सर्वज्ञको निषेध कर सक्ता है और किसीकी भी गम्य नहीं है।

---

1 चार्वाकमुखम् ।

जीवत्वगुणव्याख्येयम्,—

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्व ।
सो जीवो पाणा पुण बलमिंदियमाउ उस्सासो ॥ ३० ॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीवष्यति य खलु जीवित पूर्वं ।
स जीव प्राणा पुनर्बलमिन्द्रियमायुरुच्छ्वास ॥ ३० ॥

इन्द्रियबलायुरुच्छ्वासलक्षणा हि प्राणा । तेषु चित्सामान्यान्वयिनो भावप्राणा, पुद्गल सामान्यान्वयिनो द्रव्यप्राणा, तेषामुभयेषामपि त्रिष्वपि कालेष्वनवच्छिन्नसतानत्वेन धारणात्संसारिणो जीवत्व । मुक्तस्य तु केवलानामेव भावप्राणाना धारणात्तदवसेयमिति ॥ ३० ॥

संक्षेपेण मनवमद्धाने प्रमाण ज्ञातव्य । विस्तरेणासिद्धनिरुद्धाने कान्तिकाकिंचित्करहेतुदूषणसमर्थन मन्यत्र सर्वज्ञसिद्धौ भणितमास्ते अत्र पुनरध्यात्मग्रन्थत्वान्नोच्यते । इदमेव वीतरागसर्वज्ञस्वरूप समस्तरागादिविभावत्यागेन निरतरमुपादेयत्वेन भावनीयमिति भावार्थ ॥ २९ ॥ एव प्रभुत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वय गत । अथ जीवत्वगुणव्याख्यान क्रियते,—'पाणेहिं'इत्यादि पदखण्डनरूपेण व्याख्यान क्रियते **पाणेहिं चदुहिं जीवदि** यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्ध चैतन्यादिप्राणैर्जीवति तथाप्यनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपैस्तथाशुद्धनिश्चयनयेन भावरूपैश्चतुर्भि प्राणै संसारावस्थायां वर्तमानकाले जीवति **जीविस्सदि** भाविकाले जीविष्यति **जो हु** यो हि स्फुट **जीविदो पुव्व** जीवित पूर्वकाले **सो जीवो** स कालत्रयेपि प्राणचतुष्टयसहितो जीवो भवति **पाणा पुण बलमिंदियमाउउस्सासो** ते पूर्वोक्तद्रव्यभावप्राणा पुनर

इस कारण तुम ही सर्वज्ञ हो इस न्यायमें सर्वज्ञकी सिद्धि होती है निषेध नहीं होता । जो वस्तु इस देशकालमें नहीं और सूक्ष्म परमाणु आदिक जो वस्तु हैं और जो अमूर्त्त हैं तिन वस्तुओंका ज्ञाता एक सर्वज्ञ ही है । और कोई नहीं है ॥ २९ ॥ आगे जीवत्व गुणका व्याख्यान करते हैं,—[य] जो [चतुर्भि. प्राणै] चार प्राणोंकर [जीवति] वर्त्तमान कालमें जीता है [जीविष्यति] आगामी काल जीवैगा [पूर्व जीवित] पूर्वही जीवै था [स] वह [खलु] निश्चयकरके [जीव] जीवनामा पदार्थ है । [पुन] फिर उस जीवके [प्राणा] चार प्राण हैं । वे कौन कौनसे हैं । [बल] एक तो मनवचनकायरूप बल प्राण है और दूजा [इन्द्रियम्] स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्ररूप ये पाच इन्द्रिय प्राण हैं । तीसरा [आयु] आयु प्राण है, चौथा [उच्छ्वास] श्वा

---

१ प्राणेषु । २ अशुद्धनिश्चयेन भावरूपाणा उपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यरूपाणाम् ।

क्तिरसहाय स्वयमेव युगपत्समग्र जानाति पश्यति, स्वप्रत्ययममूर्तमव्याबाधमनन्तसु-खमनुभवति च । ततः सिद्धस्य समस्त स्वयमेव जानतः पश्यतः, सुखमनुभवतश्च, स्व न परेण प्रयोजनमिति ॥ २९ ॥

पेक्षे समर्थो न चार्वाक इव, यस्तु जगत्त्रय कालत्रय जानाति स सर्वज्ञनिषेध कथमपि न करोति । कस्मात्? जगत्त्रयकालत्रयविषयपरिज्ञानसहितत्वेन स्वयमेव सर्वज्ञत्वादिति । किञ्चानु-पलब्धेरिति हेतुवचन तदयुक्त । कथमिति चेत् । किं भवता भवतानुपलब्धिरुत जगत्त्रयकालत्रय-वर्तिपुरुषाणा वा, यदि भवतामनुपलब्धिरेतावता सर्वज्ञाभावो न भवति । कथमिति चेत् । परमाण्वादिसूक्ष्मपदार्थाः परचित्तवृत्तयश्च भवद्भिर्यदि न ज्ञायन्ते तर्हि किं न सन्ति, अथ जग-त्त्रयकालत्रयवर्तिपुरुषाणा सर्वज्ञानुपलम्भस्तत्कथं ज्ञात भवद्भिरिति पूर्वमेव विचारित तिष्ठति इति हेतुदूषण । यदप्युक्त खरविषाणवदिति दृष्टान्तवचन । तदप्ययुक्त । कथमिति चेत् । खरे विषाण नास्ति न सर्वत्र, गवादौ प्रत्यक्षेण दृश्यते तथा सर्वज्ञोऽपि विवक्षितदेशकाले नास्ति न च सर्वत्र इति संक्षेपेण हेतुदूषण दृष्टान्तदूषण च ज्ञातव्य । अथ मत सर्वज्ञाभावे दूषण दत्त भवद्भिस्तर्हि सर्वज्ञसद्भावे किं प्रमाण । तत्र प्रमाण कथ्यते—अस्ति सर्वज्ञः पूर्वोक्तप्रकारेण बाधकप्रमाणाभावात् स्वसंवेद्यसुखदुःखादिवदिति, अथवा द्वितीयमनुमानप्रमाण कथ्यते । तद्यथा । सूक्ष्माव्यवहितदेशान्तरितकालान्तरितस्वभावान्तरिताः धर्मिणः कस्यापि पुरुषविशे-षस्य प्रत्यक्षा भवन्तीति साध्यो धर्मः । कस्माद्धेतोः । अनुमानविषयत्वात् यद्यदनुमानविषय तत्तत्कस्यापि प्रत्यक्ष दृष्ट यथाग्न्यादि अनुमानविषयाश्चैते तस्मात्कस्यापि प्रत्यक्षा भवन्ति

प्रयोजन नहीं है । यहां कोई नास्तिकमती तर्क करता है कि, सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि सबका जानने देखनेवाला प्रत्यक्षमें कोई नहीं दीखता । जैसें गर्दभके सींग नहीं, तैसें ही कोई सर्वज्ञ नहीं है । उत्तर—सर्वज्ञ इस देशमें नहीं कि इस कालमें ही नहीं अथवा तीन लोकमें ही नहीं या तीन कालमें ही नहीं है? यदि कहो कि इस देशमें और इस कालमें नहीं तो ठीक है क्योंकि इस समय कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्ष देखनेमें नहीं आता और जो कहो कि तीन लोकमें तथा तीन कालमें भी नहीं है तो तुमने यह बात किसप्रकार जानी? क्योंकि तीन लोक और तीन कालकी बात सर्वज्ञके विना कोई जान ही नहीं सकता और जो तुमने यह बात निश्चय करके जान ली कि कहीं भी सर्वज्ञ नहीं और किसी कालमें भी न तो हुवा न होगा तो हम कहते हैं कि तुम ही सर्वज्ञ हो, क्योंकि जो तीन लोक और तीन कालकी जाने वह ही सर्वज्ञ है । और जो तुम तीन लोक और तीन कालकी बात नहीं जानते तो तुमने तीन लोक और तीन कालमें सर्वज्ञ नहीं, ऐसा किस प्रकार जाना? जो सबका जाननहारा देखनहारा होय, वही सर्वज्ञको निषेध कर सकता है और किसीकी भी गम्य नहीं है ।

अत्र जीवानां स्वाभाविकं प्रमाणं मुक्तामुक्तविभागश्चोक्तः,—

अगुरुलहुगा अणंता तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे ।
देसेहिं असंखादा सियलोगं सव्वमावण्णा ॥ ३१ ॥

अगुरुलघुका अनंतास्तैरनंतैः परिणताः सर्वे ।
देशैरसंख्याताः स्याल्लोकं सर्वमापन्नाः ॥ ३१ ॥

भेदेन पंचेंद्रियायुरुच्छ्वासलक्षणा इति । अत्र सूत्रे मनोवाक्कायनिरोधेन पंचेंद्रियविषयव्यावर्त्तनेन च शुद्धचैतन्यादिशुद्धप्राणसहितः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयरूपेण ध्यातव्य इति भावार्थः ॥ ३० ॥ अथागुरुलघुत्वमसंख्यातप्रदेशत्वं व्यापकत्वाव्यापकत्वं मुक्तामुक्तत्वं च प्रतिपादयति,—**अगुरुलहुगाणंता** प्रत्येकं षट्स्थानपतितहानिवृद्धिभिन्नताविभागपरिच्छेदैः सहिता अगुरुलघवो गुणा अनंता भवन्ति **तेहिं अणंतेहिं परिणदा सव्वे** तैः पूर्वोक्तगुणैरनंतैः परिणताः सर्वे । सर्वे के । जीवा इति संबंधः **देसेहिं असंखादा** लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशैः सहितत्वादसंख्येयप्रदेशाः **सिय लोग सव्वमावण्णा** स्यात्कथंचिल्लोकपूरणाव

श्वासोच्छ्वास प्राण है । **भावार्थ**—इन्द्रिय बल आयु श्वासोच्छ्वास इन चारों ही प्राणोंमें जो चैतन्यस्वरूप परिणति हैं वे तो भावप्राण हैं और इनकी ही जो पुद्गलस्वरूप परणति हैं वे द्रव्य प्राण कहलाते हैं । ये दोनों जातिके प्राण संसारी जीवके सदा अनादि सन्तानरूप प्रवर्तते हैं इनही प्राणोंकर संसारमें जीवता कहलाता है और मोक्षावस्थामें केवल शुद्धचैतन्यादि गुणरूप भावप्राणोंसे जीता है इस कारण वह शुद्धजीव है ॥३०॥ आगे जीवोंका स्वाभाविक प्रदेशोंकी अपेक्षा प्रमाण कहते हैं और मुक्त संसारी जीवका भेद कहते हैं;—[अगुरुलघुका] समय समयमें षट्गुणी हानिवृद्धिरूप अगुरुलघुगुण [अनन्ताः] अनन्त हैं वे अगुरुलघु गुण आत्माके स्वरूपके थिरताके कारण अगुरुलघु स्वभाव जिसके अविभागी अंश अति सूक्ष्म हैं आगमप्रमाण ही प्रमाण कर देखे जाते हैं । [तैः अनंतैः] इन अगुरुलघु अनंत गुणोंके द्वारा [सर्वे] जितने सब जीव हैं जितने सब ही [परिणताः] परणये हैं अर्थात् ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो अनन्त अगुरुलघुगुण रहित हो किंतु सबमें पाये जाते हैं । और वे सब ही जीव [देशैः] प्रदेशोंके द्वारा [असंख्याताः] लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी हैं । अर्थात्—एक एक जीवके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं । [illegible] कितने ही जीव [स्यात्] किसी ही एक प्रकार [illegible] [सर्वं लोकं] [illegible] [आपन्नाः]

केचित्तु अणावण्णा मिच्छादंसणकसायजोगजुदा ।
विजुदा य तेहिं बहुगा सिद्धा संसारिणो जीवा ॥ ३२ ॥ जुम्मं ।

केचित्तु अनापन्ना मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः ।
वियुताश्च तैर्बहवः सिद्धाः संसारिणो जीवाः ॥ ३२ ॥ युग्मम् ।

जीवा ह्यविभागैकद्रव्यत्वाल्लोकप्रमाणैकप्रदेशाः । अगुरुलघवो गुणास्तु तेषामगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबन्धनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदाः प्रतिसमयसंभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानयोऽनन्ताः । प्रदेशास्तु अविभागपरमाणुपरिच्छिन्नसूक्ष्मांशरूपा असंख्येयाः । एवंविधेषु तेषु केचित्कथंचिल्लोकपूरणावस्थाप्रकारेण सर्वलोकव्यापिनः । केचित्तु तदव्यापिन इति । अथ ये तेषु मिथ्यादर्शनकषाययोगैरनादिसंततिप्रवृत्तैर्युक्तास्ते संसारिणो ये विमुक्तास्ते सिद्धास्ते च प्रत्येकं बहव इति ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

स्थाप्रकारेण लोकव्यापका अथवा सूक्ष्मैकेन्द्रियापेक्षया लोकव्यापका । तथाचोक्तं । "आधारे थूलाओ सुहुमहिं णिरंतरो लोगो" पुनरपि कथंभूतास्ते जीवाः । कच्चिद्य अणावण्णा केचिच्च केचन पुनर्लोकपूरणावस्थारहिता अथवा बादरैकेन्द्रिया विकलेन्द्रियापेक्षयाऽव्यापकाः । पुनरपि किंविशिष्टाः । मिच्छादंसणकसायजोगजुदा रागादिरहितपरमानंदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणमिथ्यादर्शनकषाययोगयथासंभवं युक्ताः । न केवलं युक्ता विजुदा य तेहिं तैश्च मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्वियुक्ता रहिताश्च । उभयेऽपि कति संख्योपेताः । बहुगा बहवोऽनन्ताः । पुनरपि कथंभूताः । सिद्धा संसारिणो य मिथ्यादर्शनकषाययोगैर्वियुक्ता रहितास्ते सिद्धा ये च युक्तास्ते संसारिण इति । अत्र जीविताशारूपरागादिविकल्पत्यागेन सिद्धजीवसदृशः परमाह्लादरूपसुखरसास्वादपरिणतनिजशुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेयमिति भावार्थः ॥३२॥

प्राप्त हुये हैं । दण्डकपाटादिमें सब ही आत्मिक कर्माके उदयसे प्रदेशोंका विस्तार लोकप्रमाण होता है । इस कारण समुद्घातकी अपेक्षासे कई जीव लोकके प्रमाणानुसार कहे गये हैं । और [केचित्तु अनापन्ना] कई जीव समुद्घातके विना सर्व लोकप्रमाण नहीं हैं, निज २ शरीरके प्रमाण ही हैं । उस अनन्त जीव राशिमें [बहवः जीवाः] अनन्तानन्त जीव [मिथ्यादर्शनकषाययोगयुताः] अनादि कालसे मिथ्यात्व कषाय योगसे संयुक्त [संसारिणः] संसारी हैं । अर्थात् जितने जीव मिथ्यादर्शनकषाययोग संयुक्त हैं वे सब संसारी कहे जाते हैं और जे [च तैः] उन मिथ्यात्व कषाय योगोंसे [वियुताः] । रहित शुद्ध जीव हैं वे [सिद्धाः] सिद्ध हैं व सिद्ध (मुक्त जीव भी) अनन्त हैं यह शुद्धाशुद्धजीवोंका नाना बहुरूप जानना ॥३१॥३२॥

१ जीवानाम् २ आत्म ।

एष देहमात्रत्वदृष्टान्तोपन्यासः,—

जह पउमरायरयणं खित्तं खीरं पभासयदि खीरं ।
तह देही देहत्थो सदेहमत्तं पभासयदि ॥ ३३ ॥

यथा पद्मरागरत्नं क्षिप्तं क्षीरे प्रभासयति क्षीरं ।
तथा देही देहस्थः स्वदेहमात्रं प्रभासयति ॥ ३३ ॥

यथैव हि पद्मरागरत्नं क्षीरे क्षिप्तं स्वतो व्यतिरिक्तप्रभास्कन्धेन तद् व्याप्नोति क्षीरं । तथैव हि जीवः अनादिकषायमलीमसत्वमूले शरीरेऽवतिष्ठमानः स्वप्रदेशैस्तदभिव्याप्नोति शरीरम् । यथैव च तत्र क्षीरेऽग्निसंयोगादुद्वलमाने तस्य पद्मरागरत्नस्य प्रभास्कन्ध उद्वलते पुनर्निविशमाने निविशते च । तथैव च तत्र शरीरे विशिष्टाऽऽहारादिवशादुत्सर्पति तस्य जीवस्य प्रदेशाः उत्सर्पन्ति पुनरपसर्पति अपसर्पन्ति च । यथैव च तत्पद्मरागरत्नमन्यत्र

एवं पूर्वोक्त "वच्छरक्ख" इत्यादि दृष्टान्तनवकेन चार्वाकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं जीवसिद्धिमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथ देहमात्रविषये दृष्टान्तं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति । एवमग्रेऽपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि संप्रधार्याथवा सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं निरूपयतीति पातनिकालक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यं,—**जह पउमरायरयणं** यथा पद्मरागरत्नं कर्तृ । कथंभूतं । **खित्तं** क्षिप्तं । क्व । **खीरे** क्षीरे दुग्धे । क्षीरे किं करोति । **पहासयदि खीरं** प्रकाशयति तत्क्षीरं **तह देही देहत्थो** तथा देही संसारी देहस्थः सन् **सदेहमेत्तं पहासयदि** स्वदेहमात्रं प्रकाशयतीति । तथथा—अत्र

आगें देहमात्र जीव किस दृष्टांतसे है सो कहा जाता है;—[**यथा**] जिस प्रकार [**पद्मरागरत्नं**] पद्मरागनामा महामणि जो है सो [**क्षीरे क्षिप्तं**] दूधमें डाला हुआ [**क्षीरं**] दूधको उस ही अपनी प्रभासे [**प्रभासयति**] प्रकाशमान करै है [**तथा**] तैसें ही [**देही**] संसारी जीव [**देहस्थः**] देहमें रहता हुवा [**स्वदेहमात्रं**] आपको देहके बराबर ही [**प्रभासयति**] प्रकाश करता है ।

भावार्थ—पद्मराग नामा रत्न दुग्धसे भरेहुये वर्तनमें डाला जाय तो उस रत्नमें ऐसा गुण है कि अपनी प्रभासे समस्त दुग्धको अपने रंगसे रंगकर अपनी प्रभाको दुग्धकी बराबर ही प्रकाशमान करता है उसी प्रकार यह संसारी जीव भी अनादि कषायोंके द्वारा मैला होता हुवा शरीरमें रहता है उस शरीरमें अपने प्रदेशोंसे व्याप्त होकर रहता है इसलिये शरीरके परिमाण होकर तिष्ठता है और जिस प्रकार वही रत्नसहित दुग्ध अग्निके संयोगसे उफनकर बढता है तो उसके साथ ही रत्नकी प्रभा भी बढ़ती है और जब अग्निका संयोग न्यून होता है, तब रत्नकी प्रभा घट जाती है

क्षीरमिवैक्येन स्थितोऽपि भिन्नस्वभावत्वातेन सदैक इति । तस्य देहात्पृथग्भूतत्व अनादिबंधनोपाधिविवर्तितविविधाऽध्यवसायविशिष्टत्वात्तन्मूलकर्मजालमलीमसत्वाच्च चेष्टमानस्याऽऽत्मनस्तथाविधाऽध्यवसायकर्मनिर्वर्तितेतरशरीरप्रवेशो भवतीति तस्य देहांतरसंचरणकारणोपन्यास इति ॥ ३४ ॥

सिद्धानां जीवत्वदेहमात्रत्वव्यवस्थेयम्;—

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा ॥ ३५ ॥

येषां जीवस्वभावो नास्त्यभावश्च सर्वथा तस्य ।
ते भवन्ति भिन्नदेहा सिद्धा वाग्गोचरमतीता ॥ ३५ ॥

द्रव्यकर्मबंधं बध्नन् सन् भवांतरं प्रति शरीरग्रहणार्थं गच्छतीति । अत्र य एव देहाद्भिन्नोऽनन्तज्ञानादिगुणः शुद्धात्मा भणितः स एव शुभाशुभसंकल्पविकल्पपरिहारकाले सर्वत्र प्रकारेणोपादेयो भवतीत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥ एवं मीमांसकनैयायिकसांख्यमतानुसारिशिष्यसंदेहविनाशार्थं "वेयणकसायवेउव्वियो य मारणंतियो समुग्घादो । तेजो हारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु" इति गाथाकथितसप्तसमुद्घातान् विहाय स्वदेहप्रमाणव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ सिद्धानां शुद्धजीवत्वं अतीतशरीरप्रमाणावगाहत्वात् व्यवहारेण भूतपूर्वन्यायेन किंचिदूनचरमशरीरप्रमाणं च व्यवस्थापयति,—जेसिं जीवसहाओ णत्थि येषां कर्मजनितद्रव्यप्राणभावप्राणरूपो जीवस्वभावो नास्ति ते होंति सिद्धा ते भवन्ति सिद्धा इति संबंधः । यदि तत्र द्रव्यभावप्राणा न संति तर्हि बौद्धमतवत्सर्वथा जीवाभावो भविष्यतीत्याशंक्योत्तरमाह अभावो य सव्वहा तस्स णत्थि शुद्धसत्ताचैतन्यज्ञानादिरूपशुद्धभावप्राणसहितत्वात्तत्र सिद्धा

अनादि कर्मसंबंधसे नानाप्रकारके विभावभाव धारण करता है उन विभाव भावोंसे नये कर्मबंध होते हैं—उन कर्मोंके उदयसे फिर देहसे देहांतरको धारै है जिससे कि संसार बढ़ता है ॥ ३४ ॥ आगे सिद्धोंके जीवका स्वभाव दिखाते हैं और उनके ही किंचित् ऊन चरमदेहपरिमाण शुद्ध प्रदेशस्वरूप देह कहते हैं,—[येषां] जिन जीवोंके [जीवस्वभाव] जीवकी जीवितव्यताका कारण जो प्राणरूप भाव सो [नास्ति] नहीं है । [च] और उन ही जीवोंके [तस्य] तिस ही प्राणका [सर्वथा] सर्व तरहसे [अभाव] अभाव [नास्ति] नहीं है कथंचित्प्रकार

१ एकक्षेत्रावगाहेन २ अनादि कर्मबंधनात्मकमपि निश्चयनयेन भिन्नमेव ... [illegible] नानाप्रकाराः ... [illegible] शुभाशुभ ... [illegible] जीवस्य ।

सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम्,—

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो ।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥ ३६ ॥

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन सः सिद्धः ।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥ ३६ ॥

यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयाऽऽत्मपरिणामसंतत्या द्रव्यकर्मरूपया च पुद्गलपरिणामसंतत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यङ्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते न तथा सिद्धरूपेणापीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति । यथैव च स एव संसारी भावकर्मरूपामात्मपरिणामसंततिं, द्रव्यकर्मरूपां च पुद्गलपरिणामसंततिं कार्यभूतां कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यङ्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो न तथा सिद्धरूपमपीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमात्मानमुत्पादयन् नान्यत्किंचिदुत्पादयति ॥ ३६ ॥

तस्य पुनर्जातिरप्यभावं गच्छन् इति भावार्थः ॥ ३५ ॥ अथ सिद्धस्य कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणाभावं साधयति;—**ण कुदोचिवि उप्पण्णो** संसारिजीववन्नरनारकादिरूपेण क्वापि काले केनचिन्न **जम्हा** यस्मात्कारणात् **कज्जं ण तेण सो सिद्धो** तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षया स सिद्धः कार्यं न भवति **उप्पादेदि ण किंचिवि** स्वयं कर्मनोकर्मरूपं किमपि नोत्पादयति **कारणमवि तेण ण सो होदि** तेन कारणेन स सिद्धः इह जगति कर्मनोकर्मापेक्षया कारणमपि न भवतीति । अत्र गाथासूत्रे य एव शुद्धात्मा कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणं च न भवति स एवानन्तज्ञानादिसहितः कर्मोदयजनितनरनारकादिकारणभूतमनोवचनकायव्यापार

आगे संसारी जीवके जैसे कार्यकारणभाव हैं, तैसे सिद्ध जीवके नहीं हैं, ऐसा कथन करते हैं;—[यस्मात्] जिस कारणसे [कुतश्चित् अपि] किसी और वस्तुसे भी [सिद्धः] शुद्ध सिद्धजीव है सो [उत्पन्न न] उपजा नहीं । [तेन] तिस कारण [सः] वह सिद्ध [कार्य] कार्यरूप नहीं है कार्य उसे कहते हैं जो किसी कारणसे उपजा हो सो सिद्ध किसीसे भी नहीं उपजे, इसलिये सिद्ध कार्य नहीं है । और जिस कारणसे [किंचित् अपि] और कुछ भी वस्तु [उत्पादयति न] उपजावता नहीं है [तेन] तिस कारणसे [सः] वह सिद्ध जीव [कारण अपि] कारणरूप भी [न भवति] नहीं है । कारण वही कहलाता है जो किसहीको उपजानेवाला हो, सो सिद्ध कुछ उपजावते नहीं इसलिये सिद्ध कारण भी नहीं हैं । भावार्थ—जैसें संसारी जीव कार्य कारण भावरूप है तैसें सिद्ध नहीं हैं सो ही दिखाया जाता है । संसारी जीवके अनादि पुद्गल संबंधक होनेसे भावकर्मरूप परिणति और द्रव्यकर्मरूप परिणति है । इनके कारण देव मनुष्य तिर्यंच नारकी

सिद्धाना हि द्रव्यप्राणधारणात्मको मुख्यत्वेन जीवस्वभावो नास्ति । न च जीवस्वभावस्य सर्वथाभावोऽस्ति भावप्राणधारणात्मकस्य जीवस्वभावस्य मुख्यत्वेन सद्भावात् । न तेषां शरीरेण सह नीरक्षीरयोरिवैक्येन वृत्तिः । यतस्ते तत्संपर्कहेतुभूतकषाययोगविप्रयोगादतीतानन्तरशरीरमात्रावगाहपरिणतत्वेऽप्यत्यन्तभिन्नदेहाः । वाचा गोचरमतीतश्च तन्महिमा । यतस्ते लौकिकप्राणधारणमन्तरेण शरीरसंबन्धमन्तरेण च परिप्राप्तनिरुपाधिस्वरूपाः सततं प्रतपंतीति ॥ ३५ ॥

वस्थाया सर्वथा जीवाभावोपि नास्ति च । सिद्धा कथंभूता । **भिण्णदेहा** अशरीरात् शुद्धात्मनो विपरीता शरीरोत्पत्तिकारणभूता मनोवचनकाययोगा क्रोधादिकषायाश्च न सन्तीति भिन्नदेहा अशरीरा ज्ञातव्या । पुनश्च कथंभूता । **वचिगोयरमतीदा** सासारिकद्रव्यप्राणभावप्राणरहिता अपि विनयते प्रतपतीति हेतोर्वचनगोचरातीतास्तेषा महिमास्वभाव अथवा सम्यक्त्वाद्यष्टगुणास्तदन्तर्गतानन्तगुणैर्वा सहितास्तेन कारणेन वचनगोचरातीता इति । अथात्र यथा पर्यायरूपेण पदार्थाना क्षणिकत्व दृष्ट्वानित्यात्ति कृतद्रव्यरूपेणापि क्षणिकत्व मन्यते सौगत तथेन्द्रियादिदशप्राणसहितस्याशुद्धजीवस्याभाव दृष्ट्वा मोक्षावस्थाया केवलज्ञानाद्यनन्तगुणसहि

प्राण भी हैं [**ते सिद्धा'**] वे सिद्ध [**भवन्ति**] होते हैं । कैसे हैं वे सिद्ध? [**भिन्नदेहाः**] शरीररहित अमूर्तीक हैं । फिर कैसे हैं? [**वाग्गोचरमतीता'**] वचनातीत है महिमा जिनकी ऐसे हैं । **भावार्थ**—सिद्धातमें प्राण दो प्रकारके कहे हैं—एक निश्चय, एक व्यवहार जितने शुद्धज्ञानादिक भाव हैं वे तो निश्चयप्राण हैं और जो अशुद्ध इन्द्रियादिक प्राण हैं सो व्यवहारप्राण हैं । प्राण उसको कहते हैं कि जिसके द्वारा जीवद्रव्यका अस्तित्व है । जीवभी ससारी और सिद्धके भेदसे दो प्रकारके हैं । जो अशुद्ध प्राणोंके द्वारा जीता है सो तो ससारी है और जो शुद्ध प्राणोंसे जीता है वह सिद्ध जीव है । इसकारण सिद्धोंके कथंचित् प्रकार प्राण हैं भी और नहीं भी हैं । जो निश्चय प्राण हैं वे तो पाये जाते हैं और जो व्यवहार प्राण हैं वे नहीं हैं । फिर उन ही सिद्धोंके शरीरनीरके समान देहसे सबंध भी नहीं है । किंचित् ऊन (कम) चरम (अतके) शरीरप्रमाण प्रदेशोंकी अवगाहना है । ज्ञानादि अनंतगुण सयुक्त अपार महिमाकरिये आत्मलीन अविनाशी स्वरूपसहित तिष्ठते हैं ॥ ३५ ॥

---

१ द्रव्यप्राण [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] [illegible]

सिद्धस्य कार्यकारणभावनिरासोऽयम्,—

ण कुदोचि वि उप्पण्णो जम्हा कज्जं ण तेण सो सिद्धो ।
उप्पादेदि ण किंचि वि कारणमवि तेण ण स होदि ॥ ३६ ॥

न कुतश्चिदप्युत्पन्नो यस्मात् कार्यं न तेन स सिद्धः ।
उत्पादयति न किंचिदपि कारणमपि तेन न स भवति ॥ ३६ ॥

यथा संसारी जीवो भावकर्मरूपयाऽऽत्मपरिणामसंतत्या द्रव्यकर्मरूपया च पुद्गलप- रिणामसंतत्या कारणभूतया तेन तेन देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपेण कार्यभूत उत्पद्यते न तथा सिद्धरूपेणापीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमुत्पद्यमानो नान्यतः कुतश्चिदुत्पद्यत इति । यथैव च स एव संसारी भावकर्मरूपामात्मपरिणामसंततिं, द्रव्यकर्मरूपां च पुद्गलपरि- णामसंततिं कार्यभूतां कारणभूतत्वेन निर्वर्तयन् तानि तानि देवमनुष्यतिर्यग्नारकरूपाणि कार्याण्युत्पादयत्यात्मनो न तथा सिद्धरूपमपीति । सिद्धो ह्युभयकर्मक्षये स्वयमात्मान- मुत्पादयन् नान्यत्किंचिदुत्पादयति ॥ ३६ ॥

तस्य शुद्धजीवस्याप्यभावं मन्यत इति भावार्थः ॥ ३५ ॥ अथ सिद्धस्य कर्मनोकर्मापेक्षया कार्य- कारणाभावं साधयति;—**ण कदाचिवि उप्पण्णो** संसारिजीववन्नारकाद्याकाररूपेण कापि काले [illegible] **जम्हा** यस्मात्कारणात् **कज्जं ण तेण सो सिद्धो** तेन कारणेन कर्मनोकर्मापेक्षया स सिद्धः कार्यं न भवति **उप्पादेदि ण किंचिवि** स्वयं कर्मनोकर्मरूपं [illegible] नोत्पादयति **कारणमवि तेण ण सो होदि** तेन कारणेन स सिद्ध इह जगति कर्मनोकर्मापेक्षया कारण- मपि न भवतीति । अत्र गाथासूत्रे य एव शुद्धनिश्चयेन कर्मनोकर्मापेक्षया कार्यकारणं च न भवति स एवानन्तज्ञानादिसहित कर्मोदयजनितनरनारकादिपर्यायोपादानकारणभूतमनोवचनकायव्यापार

आगे संसारी जीवके जैसे कार्यकारणभाव हैं, तैसे सिद्ध जीवके नहीं हैं, ऐसा कथन करते हैं,—[यस्मात्] जिस कारणसे [कुतश्चित् अपि] किसी और वस्तुसे भी [सिद्धः] शुद्ध सिद्धजीव है सो [उत्पन्नः न] उपजा नहीं । [तेन] तिस कारण [सः] वह सिद्ध [कार्य] कार्यरूप नहीं है कार्य उसे कहते हैं जो किसी कारणसे उपजा हो सो सिद्ध किसीसे भी नहीं उपजे, इसलिये सिद्ध कार्य नहीं है । और जिस कारणसे [किंचित् अपि] और कुछ भी वस्तु [उत्पादयति न] उपजावता नहीं है [तेन] तिस कारणसे [सः] वह सिद्ध जीव [कारणम् अपि] कारणरूप भी [न भवति] नहीं है । कारण वही कहलाता है जो किसहीका उपजानेवाला हो, सो सिद्ध कुछ उपजावते नहीं इसलिये सिद्ध कारण भी नहीं हैं । भावार्थ—जैसे संसारी जीव कार्य कारण भावरूप है तैसे सिद्ध नहीं हैं सो ही दिखाया जाता है । संसारी जीवके अनादि पुद्गल संबंधके होनेसे भावकर्मरूप परिणति और द्रव्यकर्मरूप परिणति है । इस कारण देव मनुष्य तिर्यच नारकी

सद् सदा शून्यमिति, द्रव्य स्वद्रव्येण सदाऽशून्यमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंत ज्ञानं क्वचि त्सांत ज्ञानमिति, क्वचिज्जीवद्रव्येऽनंत क्वचित्सांतमज्ञानमिति । एतदन्यथानुपपद्यमान मुक्तौ जीवस्य सद्भावमावेदयतीति ॥ ३७ ॥

अन्द्र अतीतमिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामेनाभवनमपरिणमनमभव्यत्वं । सुण्णमिदरं च स्वशुद्धात्मद्रव्यविलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वं निजपरमात्मानुगत स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेनेतरदशून्यत्वं विण्णाणमविण्णाणं समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्र काशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानं विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञानेन परिज्ञानादविज्ञा- नमिति णवि जुज्जदि असदि सब्भावे इदं तु नित्यत्वादिस्वभावगुणाष्टकमविद्यमानजीवस द्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति। अत्र स एवोपा

किसके होय? [च] तथा [शून्य] परद्रव्यस्वरूपसे जीवद्रव्यरहित है इसको शून्यभाव कहते हैं [इतर] अपने स्वरूपसे पूर्ण है इसको अशून्यभाव कहते हैं जो मोक्षमें वस्तु ही नहीं है तो ये दोनों भाव किसके कहे जायग [च] और [विज्ञान] यथार्थ पदार्थका जानना [अविज्ञान] औरका और जानना । ज्ञान अज्ञान दोनों प्रकारके भाव यदि मोक्षमें जीव नहीं होय तो कहे नहीं जाय—क्योंकि किसी जीवमें ज्ञान अनंत है किसी जीवमें ज्ञान सांत है । किसी जीवमें अज्ञान अनंत है किसी जीवमें अज्ञान सांत है । शुद्ध जीव द्रव्यमें केवल ज्ञानकी अपेक्षा अनंत ज्ञान है सम्यग्दृष्टी जीवके क्षयोपशम ज्ञानकी अपेक्षा सांत ज्ञान है । अभव्य मिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा अनंत अज्ञान है भव्यमिथ्यादृष्टीकी अपेक्षा सांत अज्ञान है । सिद्धोंमें समस्त त्रिकालवर्ती पदार्थोंके जाननेरूप ज्ञान है, इस कारण ज्ञानभाव कहा जाता है और कथंचित्प्रकार अज्ञान भाव भी कहा जाता है । क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानका सिद्धोंमें अभाव है । इसलिये विनाशीक ज्ञानकी अपेक्षा अज्ञान भाव जानना । यह दोनों प्रकारके ज्ञान अज्ञान भाव जो मोक्षमें जीवका अभाव होय तो नहीं बन सके ? भावार्थ—जे अज्ञानी जीव मोक्ष अवस्थामें जीवका नाश मानते हैं उनको समझानेके लिये आठ भाव हैं, इन आठ भावोंसे ही मोक्षमें जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है । और जो ये आठ भाव नहीं होयँ तो द्रव्यका अभाव होजाय द्रव्यके अभावसे संसार और मोक्ष दोनों अवस्थाका अभाव होय इस कारण इन आठों भावस्थानोंको जानना चाहिये । ध्रौव्यभाव १ व्ययभाव २ भव्यभाव ३ अभव्यभाव ४ शून्यभाव ५ अशून्यभाव ६ ज्ञान-

१ स्वशुद्धात्म स्वभावलक्षणेन परद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयेन नास्तित्वं शून्यत्वम् निजपरमात्मानुगत द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण अशून्यत्वम् ३ समस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयप्रकाशनसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानगुणेन विज्ञानम् ४ विनष्टमतिज्ञानादिछद्मस्थज्ञाने परिज्ञानादविज्ञानम् ५ मोक्षावस्थायामि, नित्यत्वादिस्वभावगु णाष्टकमविद्यमानजीवसद्भावे मोक्षे न युज्यते न घटते । तदस्तित्वादेव ज्ञायते मुक्तौ शुद्धजीवसद्भावोऽस्ति ।

त्मात् । तत्र स्थावरा कर्मफलं चेतयते । त्रसा कार्यं चेतयते । केवलज्ञानिनो ज्ञानं चेतयत इति ॥ ३९ ॥

अथोपयोगगुणव्याख्यानम्,—

उवओगो खलु दुविहो णाणेण य दंसणेण संजुत्तो ।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि ॥ ४० ॥

उपयोगः खलु द्विविधो ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः ।
जीवस्य सर्वकालमनन्यभूतं विजानीहि ॥ ४० ॥

आत्मनश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः । सोऽपि द्विविधः । ज्ञानोपयोगो दर्शनो

मानंदैकसुखामृतसमरसीभावबलेन दशविधप्राणत्वमतिक्रान्ताः सिद्धजीवास्ते केवलज्ञानं विंदति इत्यत्र गाथाद्वये केवलज्ञानचेतना साक्षादुपादेया ज्ञातव्येति तात्पर्यं ॥ ३९ ॥ एवं त्रिविधचेतनाव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । इत ऊर्ध्वमेकोनविंशतिगाथापर्यंतमुपयोगाधिकारः प्रारभ्यते । तद्यथा । अथात्मनो द्वेधोपयोगं दर्शयति;—**उवओगो** आत्मनश्चैतन्यानुविधायि परिणाम उपयोगः चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोयं पटोयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयति चैतन्यानुविधायि **खलु** स्फुटं **दुविहो** द्विविधः । स च कथंभूतः । **णाणेण य दसणेण संजुत्तो** सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं ताभ्यां संयुक्तः **जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणाहि** तं चोपयोगं जीवस्य सर्वकालेन

जीवोंके केवलमात्र कर्मफलचेतनारूप ही मुख्य है [**हि**] निश्चय करके [**त्रसाः**] द्वेन्द्रियादिक जीव हैं वे [**कार्ययुत**] कर्मका जो फल सुखदुःखरूप है तिसको रागद्वेषमोहकी विशेषतालिये उद्यमी हुये इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें कार्य करते सते भोगते हैं इस कारण वे जीव कर्मफलचेतनाकी मुख्यतासहित जान लेना । और जो जीव [**प्राणित्व**] दशप्राणोंको [**अतिक्रान्ताः**] रहित हैं अतीन्द्रिय ज्ञानी हैं [**ते**] वे [**जीवाः**] शुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानी जीव [**ज्ञान**] केवल ज्ञान चैतन्य भावहीको [**विंदन्ति**] साक्षात् परमानंद सुखरूप अनुभवे हैं । ऐसे जीव ज्ञानचेतनासंयुक्त कहाते हैं । ये तीन प्रकारके जीव तीन प्रकारकी चेतनाके धरनहारे जानने ॥ ३९ ॥ आगें उपयोगगुणका व्याख्यान करते हैं,—[**खलु**] निश्चय करके [**उपयोगः**] चेतनतालिये जो परिणाम है सो [**द्विविधः**] दो प्रकारका है । वे दो प्रकार कौन २ से हैं ? [**ज्ञानेन च दर्शनेन संयुक्तः**] ज्ञानोपयोग और दर्शनपयोग ऐसे दो भेद लिये

---

१ अव्यक्तसुखदुःखानुभवनरूपं शुभाशुभकर्मफलमनुभवन्ति । २ द्वींद्रियादयस्त्रसजीवाः पुनस्तदेव कर्मफलं निर्विकारपरमानंदैकस्वभावमात्मसुखमलभमाना सन्तः विशेषरागद्वेषानुरूपया कार्यचेतनया सहितमनुभवन्ति । ३ चैतन्यमनुविदधात्यन्वयरूपेण परिणमति अथवा पदार्थपरिच्छित्तिकाले घटोऽयं पटोऽयमित्याद्यर्थग्रहणरूपेण व्यापारयतीति चैतन्यानुविधायी ।

पयोगश्च । तत्र विशेषग्राहि ज्ञानं । सामान्यग्राहि दर्शनम् । उपयोगश्च सर्वदा जीवादपृथग्भूत एव । एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादिति ॥ ४० ॥

ज्ञानोपयोगविशेषाणा नामस्वरूपाभिधानमेतत्,—

आभिणिसुदोधिमणकेवलाणि णाणाणि पंचभेयाणि ।
कुमदिसुदविभंगाणि य तिण्णि वि णाणेहिं संजुत्ते ॥ ४१ ॥

आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानानि पञ्चभेदानि ।
कुमतिश्रुतविभङ्गानि च त्रीण्यपि ज्ञाने संयुक्तानि ॥ ४१ ॥

तत्राभिनिबोधिकज्ञानं, श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, कुमतिज्ञानं, कुश्रुतज्ञानं, विभङ्गज्ञानमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनन्तसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धज्ञानसामान्यात्मा । स खल्वनादिज्ञानावरणकर्मावच्छन्नप्रदेशः सन्, यत्तदावरणक्षयोपशमादिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणाऽवबुध्यते तदभिनिबोधिकज्ञानम् । यत्तदावरणक्षयोपशमादनिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तद्रव्यं विकलं विशेषेणावबुध्यते तत् श्रुत-

---

सत्त्वात् संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशैरभिन्नं विजानीहीति ॥ ४० ॥ एवं ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयसूचनरूपेण गाथका गता । अथ ज्ञानोपयोगभेदानां संज्ञां प्रतिपादयति;—आभिनिबोधिकमतिज्ञानं श्रुतज्ञानमवधिज्ञानं मनःपर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ज्ञानानि पञ्चभेदानि भवन्ति कुमतिज्ञानं कुश्रुतज्ञानं विभङ्गज्ञानमिति च मिथ्याज्ञानत्रयं भवति। अयमत्र भावार्थः । यथैकोऽप्यादित्यो मेघावर-

---

हुए हैं । जो विशेषतासे पदार्थोंको जाने सो तो ज्ञानोपयोग कहलाता है और जो सामान्यस्वरूप पदार्थोंको जाने सो दर्शनोपयोग कहा जाता है । सो दुविध उपयोग [जीवस्य] आत्मद्रव्यके [सर्वकाल] सदाकाल [अनन्यभूत] प्रदेशोंसे जुदा नहीं ऐसा [विजानीहि] हे शिष्य तू जान । यद्यपि व्यवहार नयाश्रित गुणगुणीके भेदसे आत्मा और उपयोगमें भेद है तथापि वस्तुकी एकताके न्यायसे एक ही है भेद करनेमें नहीं आता क्योंकि गुणके नाश होनेसे गुणीका भी नाश है और गुणीके नाशसे गुणका नाश है इस कारण एकता है ॥ ४० ॥ आगे ज्ञानोपयोगके भेद दिखाते हैं,—

[आभिनिबोधिकश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि] मति श्रुत अवधि मनःपर्यय, केवल [पञ्चभेदानि ज्ञानानि] ये पांच प्रकारके सम्यग्ज्ञान हैं । [च] और [कुमतिश्रुतविभङ्गानि त्रीणि अपि] कुमति कुश्रुत विभङ्गावधि ये तीन कुज्ञान भी [ज्ञाने संयुक्तानि] पूर्वोक्त पांचों ज्ञानोंसहित गण लेने । ये ज्ञानके आठ भेद है । भावार्थ—स्वाभाविक भावसे यह आत्मा अनन्त समस्त प्रदेशव्यापी अनंत

१ अथ समस्त न व्यवहारकाले भाव परिमितत्वेन भावत प्रथन इत्यवधि २ परकीयमनोगतार्थे उपचार न ... ज्ञान ... मनःपर्यय ।

ज्ञान । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्य विकलं विशेषेणावबुध्यते तदवधिज्ञानम् । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव परमनोगतं मूर्तद्रव्य विकलं विशेषेणावबुध्यते तन्मनःपर्ययज्ञानम् । यत्सकलावरणात्यन्तक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्य सकलं विशेषेणावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमाभिनिबोधिकज्ञानमेव कुमतिज्ञानम् । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितं श्रुतज्ञानमेव कुश्रुतज्ञानं । मिथ्यादर्शनोदयसहचरितमवधिज्ञानमेव विभङ्गज्ञानमिति स्वरूपाभिधानम् । इत्थं मतिज्ञानादिज्ञानोपयोगाष्टकं व्याख्यातम् ॥४१॥

दर्शनोपयोगविशेषाणां नामस्वरूपाभिधानमेतत्,—

> दंसणमवि चक्खुजुदं अचक्खुजुदमवि य ओहिणा सहियं ।
> अणिधणमणंतविसयं केवलियं चावि पण्णत्तं ॥ ४२ ॥

णनयेन बहुधा भिद्यते तथा निश्चयनयेनाखण्डैकप्रतिभासस्वरूपोऽप्यात्मा व्यवहारनयेन कर्मपटलवेष्टितः सन्मतिज्ञानादिभेदेन बहुधा भिद्यत इति ॥ ४१ ॥ इत्यष्टविधज्ञानोपयोगसंज्ञाकथनरूपेण गाथा गता । अथ दर्शनोपयोगभेदानां संज्ञां स्वरूपं च प्रतिपादयति,—चक्षुर्दर्शनमचक्षु

निरावरण शुद्धज्ञानसंयुक्त है । परंतु अनादिकालसे लेकर कर्म संयोगसे दूषित हुवा प्रवर्त्ते है । इसलिये सर्वांग असंख्यात प्रदेशोंमें ज्ञानावरण कर्मके द्वारा आच्छादित है । उस ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मतिज्ञान प्रगट होता है । तब मन और पांच इन्द्रियोंके अवलंबनसे किंचित् मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्यको विशेषताकर जिस ज्ञानके द्वारा परोक्षरूप जानता है उसका नाम मतिज्ञान है । और उस ही ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे मनके अवलंबसे किंचित्मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य जिसके द्वारा जाना जाय उस ज्ञानका नाम श्रुतज्ञान है । जो कोई यहां पूछै कि श्रुतज्ञान तो एकेन्द्रियसे लगाकर असैनी जीव पर्यंत कहा है इसका समाधान यह है कि—उनके मिथ्याज्ञान है इस कारण यह श्रुतज्ञान नहीं लेना और अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकी ही प्रधानता है इस कारण भी वह श्रुतज्ञान नहीं लेना । मनके अवलंबनसे जो परोक्षरूप जाना जाय उस श्रुतज्ञानको द्रव्य भावके द्वारा जानना और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे जिस ज्ञानके द्वारा एकदेशप्रत्यक्षरूप किंचित्मूर्त्तीक द्रव्य जाने जिसका नाम अवधिज्ञान है । और उसही ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे अन्यजीवके मनोगत मूर्त्तीक द्रव्यको एक देश प्रत्यक्ष जिस ज्ञानके द्वारा जाने, उसका नाम मनःपर्ययज्ञान कहा जाता है । और सर्वथा प्रकार ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसे जिस ज्ञानके द्वारा समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक द्रव्य, गुण पर्यायसहित प्रत्यक्ष जाने उस उसका नाम केवलज्ञान है । मिथ्यादर्शनसहित जो मतिश्रुतअवधिज्ञान है, वे ही कुमति कुश्रुत कुअवधिज्ञान कहलाते हैं । ये आठ प्रकारके ज्ञान विशेषणोंसे विस्तार जानने ॥४१॥ आगे दर्शनोपयोगके नाम और स्वरूपका कथन किया जाता है;—

दर्शनमपि चक्षुर्युतमचक्षुर्युतमपि चावधिना सहितं ।
अनिधनमनंतविषयं कैवल्यं चापि प्रज्ञप्तम् ॥ ४२ ॥

चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति नामाभिधानम् । आत्मा ह्यनंतसर्वात्मप्रदेशव्यापिविशुद्धदर्शनसामान्यात्मा । स खल्वनादिदर्शनावरणकर्मावच्छन्नप्रदेशः सन् यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुरिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तच्चक्षुर्दर्शनं । यत्तदावरणक्षयोपशमाच्चक्षुर्वर्जितेतरचतुरिन्द्रियानिन्द्रियावलम्बाच्च मूर्तामूर्तं द्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदचक्षुर्दर्शनं । यत्तदावरणक्षयोपशमादेव मूर्तद्रव्यं विकलं सामान्येनावबुध्यते तदवधिदर्शनम् । यत्सकलावरणात्यंतक्षये केवल एव मूर्तामूर्तद्रव्यं सकलं सामान्येनावबुध्यते तत्स्वाभाविकं केवलदर्शनमिति स्वरूपाभिधानम् ॥ ४२ ॥

दर्शनमवधिदर्शनं केवलदर्शनमिति दर्शनोपयोगभेदानां नामानि । अयमात्मा निश्चयनयेनानंताखंडदर्शनस्वभावोपि व्यवहारनयेन संसारावस्थायां निर्मलशुद्धात्मानुभूत्यभावोपार्जितेन कर्मणा झंपितः सन् चक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगचक्षुर्द्रव्येन्द्रियावलंबनेन यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन पश्यति तच्चक्षुर्दर्शनं, शेषेन्द्रियनोइंद्रियावरणक्षयोपशमे सति बहिरंगद्रव्येन्द्रियद्रव्यमनोवलंबनेन यन्मूर्तामूर्तं च वस्तु निर्विकल्पसत्तावलोकेन यथासंभवं पश्यति तदचक्षुर्दर्शनं, स एवात्मावधिदर्शनावरणक्षयोपशमे सति यन्मूर्तं वस्तु निर्विकल्पसत्ता-

---

[चक्षुर्युतं] द्रव्यनेत्रके अवलम्बनसे जो [दर्शनं] देखना है उसका नाम चक्षुर्दर्शन [प्रज्ञप्तं] भगवानने कहा है [च] और [अचक्षुर्युतं] नेत्र इंद्रियके बिना अन्य चारों द्रव्य इन्द्रियोंके और मनके अवलम्बनसे देखा जाय उसका नाम अचक्षुर्दर्शन है । [च] और [अवधिना सहितं] अवधिज्ञानके द्वारा [अपि] निश्चय जो देखता है, उसको अवधिदर्शन कहते हैं । और जो [अनिधनं] मर्यादित [अनंतविषयं] समस्त अनंत पदार्थ हैं विषय जिसके ऐसा [कैवल्यं] केवलदर्शन [प्रज्ञप्तं] कहा गया है । भावार्थ—चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन और केवल दर्शन इन चार भेदों द्वारा दर्शनोपयोग जानना । दर्शन और ज्ञानमें सामान्य और विशेषका भेद

एकस्यात्मनोऽनेकज्ञानात्मकत्वसमर्थनमेतत्,—

ण वियप्पदि णाणादो णाणी णाणाणि होंति णेगाणि ।
तम्हा दु विस्सरूवं भणियं दवियत्ति णाणीहिं ॥ ४३ ॥

न विकल्प्यते ज्ञानात् ज्ञानी ज्ञानानि भवन्त्यनेकानि ।
तस्मात्तु विश्वरूपं भणितं द्रव्यमिति ज्ञानिभिः ॥ ४३ ॥

न तावज्ज्ञानी ज्ञानात् पृथग्भवति, द्वयोरप्येकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात्। द्वयो

सामान्येन प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं रागादिदोषरहितचिदानन्दैकस्वभावनिजशुद्धात्मानुभूतिल-क्षणनिर्विकल्पध्यानेन निरवशेषकेवलदर्शनावरणक्षये सति जगत्त्रयकालत्रयवर्तिवस्तुगतसत्तासा-मान्यमेकसमयेन पश्यति तदनिधनमनन्तविषयं स्वाभाविकं केवलदर्शनं भवतीति । अत्र केवल-दर्शनाविनाभूतानन्तगुणाधारः शुद्धजीवास्तिकाय एवोपादेय इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥ एवं दर्शनो-पयोगव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथात्मनो ज्ञानादिगुणैः सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभे-देपि निश्चयेन प्रदेशाभिन्नत्वं मत्याद्यनेकज्ञानत्वं च व्यवस्थापयति सूत्रत्रयेण;—**ण वियप्पदि** न विकल्पते न भेदेन पृथक् क्रियते । कोसौ । **णाणी** ज्ञानी । कस्मात्सकाशात् । **णाणादो** ज्ञानगुणात् । तर्हि ज्ञानमप्येकं भविष्यति । नैव । **णाणाणि होंति णेगाणि** मत्यादिज्ञानानि भवन्त्यनेकानि यस्मादनेकानि ज्ञानानि भवन्ति **तम्हा दु विस्सरूवं भणियं** तस्मात्कारणादने

मात्र है जो विशेषरूप जानै उसको ज्ञान कहते हैं इस कारण दर्शनका सामान्य जानना लक्षण है । आत्मा स्वाभाविक भावोंसे सर्वांग प्रदेशोंमें निर्मल अनवदर्शनमयी है परंतु वही आत्मा अनादि दर्शनावरण कर्मके उदयसे आच्छादित है इसकारण दर्शन शक्तिसे रहित है । उसही आत्माके अंतरंग चक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंगनेत्रके अवलंबनकर किंचित् मूर्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखा जाय उसका नाम चक्षुदर्शन कहा जाता है । और अंतरंगमें अचक्षुदर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे बहिरंग नेत्र इन्द्रिय विना चार इन्द्रियों और द्रव्यमनके अवलंबनसे किंचित् मूर्तीक द्रव्य अमूर्तीक द्रव्य जिसके द्वारा देखे जाय उसका नाम अचक्षुदर्शन कहा जाता है । और जो अवधि दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे किंचिन्मूर्त्तीक द्रव्योंको प्रत्यक्ष देखै उसका नाम अव धिदर्शन है । और जिसके द्वारा सर्वथा प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके क्षयसे समस्त मूर्त्तीक अमूर्त्तीक पदार्थोंको प्रत्यक्ष देखा जाय उसको केवल दर्शन कहते हैं । इसप्रकार दर्शनका स्वरूप जानना ॥ ४२ ॥ आगें कहते हैं कि एक आत्माके अनेक ज्ञान होते हैं इसमें कुछ दूषण नहीं है,—[**ज्ञानात्**] ज्ञानगुणसे [**ज्ञानी**] आत्मा [**न विकल्पते**] भेद भावको प्राप्त नहीं होता है । अर्थात्—परमार्थसे तो गुणगुणीमें भेद

---

१ आत्मा २ आत्मज्ञानयोः ।

स्पभिन्नप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् । द्वयोरप्येकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् । द्वयोरप्येकस्वभावत्वेनैकभावत्वात् । न चैवमुच्यमानेऽप्येकस्मिन्नात्मन्याभिनिबोधिकादीन्यनेकानि ज्ञानानि विरुध्यन्ते द्रव्यस्य विश्वरूपत्वात् । द्रव्यं हि सहक्रमप्रवृत्तानंतगुणपर्यायाधारतयाऽनंतरूपत्वादेकमपि विश्वरूपमभिधीयत इति ॥ ४३ ॥

वर्णनगुणादिभेदेन विश्वरूप नानारूप भणितं । कैः । ज्ञानिभिः । कैः । द्रवियस्ति जीवद्रव्यमिति । कैर्भणितं । णाणीहिं हेयोपादेयतत्त्वविचारज्ञानिभिरिति सत्यादि । तथाहि–एकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् एकप्रदेशनिर्वृत्तत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् मूर्तैकजडस्वरूपत्वेनैकस्वभावत्वाच्च परमाणोर्वर्णादिगुणैः सह यथा भेदो नास्ति तथैवैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् एकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् एकचैतन्यनिर्वृत्तत्वेनैकस्वभावत्वाच्च ज्ञानादिगुणैः सह जीवद्रव्यस्यापि भेदो नास्ति। अथवा शुद्धजीवापेक्षया शुद्धैकास्तित्वनिर्वृत्तत्वेनैकद्रव्यत्वात् लोकाकाशप्रमितासंख्येयासंख्येयशुद्धप्रदेशत्वेनैकक्षेत्रत्वात् निर्विकारचिच्चमत्कारमात्रपरिणतिरूपवर्तमानैकसमयनिर्वृत्तत्वेनैककालत्वात् निर्मलैकचिज्ज्योतिःस्वरूपेणैकस्वभावत्वात् च सकलविमलकेवलज्ञानाद्यनंतगुणैः सह शुद्धजीवस्यापि भेदो नास्तीति भावार्थः ॥ ४३ ॥

अथ मत्यादिपंचज्ञानानां क्रमेण गाथापंचकेन व्याख्यानं करोति तथाहि;—

मदिणाणं पुण तिविहं उवलद्धी भावणं च उवओगो ।
तह एव चदुवियप्पं दंसणपुव्वं हवदि णाणं ॥ १ ॥

मदिणाणं अयमात्मा निश्चयनयेन तावदखण्डैकविशुद्धज्ञानमयः व्यवहारनयेन संसारावस्थायां कर्मावृतः सन्मतिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति पंचभिरिन्द्रियैर्मनसा च मूर्तामूर्तं वस्तु विकल्परूपेण यज्जानाति तन्मतिज्ञानं **पुण तिविहं** तच्च पुनस्त्रिविधं **उवलद्धी भावणं च उवओगो**

होता नहीं है क्योंकि द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुणगुणी एक है । जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव गुणीका है वही गुणका है और जो गुणका है सो गुणीका है। इसी प्रकार अभेदनयकी अपेक्षा एकता जाननी भेदनयसे आत्मामें **[ज्ञानानि]** मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल इन पांच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे **[अनेकानि]** दो तीन चार **[भवन्ति]** होते हैं । भावार्थ-यद्यपि आत्मद्रव्य और ज्ञानगुणकी एकता है तथापि ज्ञानगुणके अनेक भेद करनेमें कोई विरोध वा दोष नहीं है क्योंकि द्रव्य कथंचित्प्रकार भेद अभेदस्वरूप है अनेकांतके विना द्रव्यकी सिद्धि नहीं है **[तस्मात् तु]** तिस कारणसे **[ज्ञानीभिः]** जो अनेकांत विद्याके जाननेवाले ज्ञानी जीवोंके द्वारा **[द्रव्यं]** पदार्थ है सो **[विश्वरूपं]** अनेक प्रकारका **[भणितं]** कहा गया है **[इति]** इस प्रकार वस्तुका स्वरूप जानना । **भावार्थ**—यद्यपि द्रव्य अनंतगुण अनंतपर्यायका आधारसे एक वस्तु है तथापि वही अन्य अनेक प्रकार भी कहा जाता है । इससे यह बात सिद्ध भई कि अभेदसे आत्मा एक है अनेक ज्ञानके पर्यायभेदसे अनेक है ॥ ४३ ॥

उपलब्धिर्भावना तथोपयोगश्च, मतिज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरुपलब्धिर्ज्ञातेर्थे पुनः पुनश्चिंतनं भावना नीलमिदं पीतमिदं इत्यादिरूपेणार्थग्रहणव्यापार उपयोगः **तह एव चदुवियप्पं** तथैवावग्रहेहावायधारणाभेदेन चतुर्विधं वरकोष्ठबीजपदानुसारिसंभिन्नश्रोतृतावुद्धिभेदेन वा **दसणपुव्वं हवदि णाणं** तच्च मतिज्ञानं सत्तावलोकदर्शनपूर्वकमिति । अत्र निर्विकारशुद्धानुभूत्यभिमुखं यन्मतिज्ञानं तदेवोपादेयभूतानंतसुखसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं पुनर्व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥ १ ॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति लद्धी य भावणा चेव ।
उवओगणयवियप्पं णाणेण य वत्थु अत्थस्स ॥ २ ॥

सुदणाणं पुण णाणी भणंति स एव पूर्वोक्तात्मा श्रुतज्ञानावरणीयक्षयोपशमे सति यन्मूर्तामूर्तं वस्तु परोक्षरूपेण जानाति तत्पुनः श्रुतज्ञानं ज्ञानिनो भणन्ति । तच्च कथंभूतं । **लद्धी य भावणा चेव** लब्धिरूपं च भावनारूपं चैव । पुनरपि किंविशिष्टं । **उवओगणयवियप्पं** उपयोगविकल्पं नयविकल्पं च उपयोगशब्देनात्र वस्तुग्राहकं प्रमाणं भण्यते नयशब्देन तु वस्त्वेकदेशग्राहको ज्ञातुरभिप्रायो विकल्पः । तथा चोक्तं । नयो ज्ञातुरभिप्रायः । केन कृत्वा वस्तुग्राहकं प्रमाणं वस्त्वेकदेशग्राहको नय इतिचेत्। **णाणेण य** ज्ञातृत्वेन परिच्छेदकत्वेन ग्राहकत्वेन **वत्थु अत्थस्स** सकलवस्तुग्राहकत्वेन प्रमाणं भण्यते अर्थस्य वस्त्वेकदेशस्य । कथंभूतस्य । गुणपर्यायरूपस्य ग्रहणेन पुनर्नय इति । अत्र विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वस्य सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणाभेदरत्नत्रयात्मकं यद्भावश्रुतं तदेवोपादेयभूतपरमात्मतत्त्वसाधकत्वान्निश्चयेनोपादेयं तत्साधकं बहिरंगं तु व्यवहारेणेति तात्पर्यं ॥ २ ॥

ओहिं तहेव घेप्पदु देसं परमं च ओहिसव्वं च ।
तिण्णिवि गुणेण णियमा भवेण देसं तहा णियदं ॥ ३ ॥

ओहिं तहेव घेप्पदु अयमात्मावधिज्ञानावरणक्षयोपशमे सति मूर्तं वस्तु यत्प्रत्यक्षेण जानाति तदवधिज्ञानं भवति यावत् यथापूर्वमुपलब्धिभावनोपयोगरूपेण त्रिधा श्रुतज्ञानं व्याख्यातं तथा सान्वयनिर्भावनां विहाय द्विधा गृह्यतां ज्ञायतां भवद्भिः **देसं परमं च ओहिसव्वं च** अथवा देशावधिपरमावधिसर्वावधिभेदेन त्रिधावधिज्ञानं किंतु परमावधिसर्वावधिद्वयं चिदुच्छलननिर्भरानन्दरूपपरमसुखामृतरसास्वादसमरसीभावपरिणतानां चरमदेहतपोधनानां भवति । तथाचोक्तं । "परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स" **तिण्णिवि गुणेण णियमा** त्रयोऽप्यवधयो विशिष्टसम्यक्त्वादिगुणेन निश्चयेन भवंति **भवेण देसं तहा णियदं** भवप्रत्ययेन देवनारकाणां स देशावधिरेव नियमनाभिप्रायः ॥ ३ ॥

विउलमदी पुण णाणं अज्जवणाणं च दुविह मणणाणं ।
एदं संजमलद्धी उवओगे अप्पमत्तस्स ॥ ४ ॥

विउलमदी अयमात्मा पुनः मनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमे सति परकीयमनोगतं मूर्तं

देशत्वादनन्यत्व । यथा त्वन्यतविप्रकृष्टयो सह्यविन्ध्ययोरत्यतसंनिकृष्टयोश्च मिश्रितयो स्तोयपयसोर्विभक्तप्रदेशत्वलक्षणमन्यत्वमनन्यत्व च । न तथा द्रव्यगुणाना विभक्तप्रदेशत्वाभावादन्यत्वमनन्यत्व चेति ॥ ४५ ॥

व्यपदेशादीनामेकातेन द्रव्यगुणान्यत्वनिबधनत्वमत्र प्रत्याख्यातम्,—

ववदेसा सठाणा सखा विसया य होति ते बहुगा ।
ते तेसिमणण्णत्ते अण्णत्ते चावि विज्जते ॥ ४६ ॥

व्यपदेशा सस्थानानि सख्या विषयाश्च भवन्ति ते बहुका ।
ते तेषामनन्यत्वे अन्यत्वे चापि विद्यते ॥ ४६ ॥

यथा देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्वे षष्ठीव्यपदेश, तथा वृक्षस्य शाखा द्रव्यस्य गुणा इत्य

भानन्यत्वमन्य च नेच्छति "तच्चिरगीद हि वा तन्ति"मिति पाठातर तद्विपरीताभ्या वा ताभ्या परस्परसापेक्षान्यत्वान्यत्वाभ्या विपरीते निरपेक्ष तद्विपरीते ताभ्या तद्विपरीताभ्या वा कृत्वा तेषा द्रव्यगुणानामनन्यत्वान्यत्वे नेच्छन्ति किंतु परस्परसापेक्षत्वेनेच्छन्तीत्यर्थ । अत्र गाथासूत्रे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वादन्यत्वरूपा ये विषयकषायास्त रहितानां तस्मादेव परमचैतन्यरूपात् परमात्मतत्त्वात् यदनन्यत्वस्वरूप निर्विकल्पपरमाह्लादकरूपसुखामृतरसास्वादानुभवन तत्सहितानां च पुरुषाणां यदेव लोकाकाशप्रमितानन्यद्वयशुद्धप्रदेश सह केवलज्ञानादिगुणानामनन्यत्व तदुपादेयमिति भावार्थ ॥ ४५ ॥ इति गुणगुणिनो सक्षेपेण भेदाभेदव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रय गत । अथ व्यपदेशादयो द्रव्यगुणानामेकान्तेन भिन्नत्व न साधयन्तीति समर्थयति,— **ववदेसा सठाणा सखा विसया य** व्यपदेशा सस्थानानि सख्या विषयाश्च **होंति** भवन्ति त ते पूर्वोक्तव्यपदेशादय कतिसख्योपेता **बहुगा** प्रत्येक बहव **ते तेसिमणण्णत्ते विज्जते**

हिमाचल कहीं है और विन्ध्याचल कहीं है इसको नाम भेद कहते हैं तथा मिले हुये दुग्धजलको अभेद कहते हैं परमार्थसे जल जुदा है दुग्ध जुदा है । लोकव्यवहारसे एक माना जाता है क्योंकि दुग्ध और जलमें प्रदेशोंकी ही एकता है । इसप्रकार लोकव्यवहार कथित गुणगुणीमें भेदाभेद नहीं मानें किंतु प्रदेशभेदरहित जो गुणगुणीमें कथंचित्प्रकार भेद अभेद परमार्थ दिखानेकेलिये कृपावत आचार्योंने दिखाया है सो भले प्रकार जानना चाहिये ॥ ४५ ॥ आगे व्यपदेश, सस्थान, सख्या, विषय, इन चार भेदोंसे सर्वथा प्रकार द्रव्य और गुणमें भेद दिखाते हैं,—[**तेषा**] उन द्रव्य और गुणोंके [**ते**] जिनसे गुणगुणीमें भेद होता है वे [**व्यपदेशा**] कथनके भेद और [**सस्थानानि**] आकारभेद [**सख्या**] गणना [**च**] और [**विषया**] जिनमें रहै ऐसे आधार भाव ये चार प्रकारके भेद [**बहुका**] बहुत प्रकारके [**भवन्ति**]

---

१ अन्यतामध्यया मिश्रितया ।

नन्यत्वेऽपि । यथा देवदत्त फलमङ्कुशेन धनदत्ताय वृक्षाद्वाटिकायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकव्यपदेश । तथा मृत्तिका घटभाव स्वय स्वेन स्वस्मै स्वस्मात् स्वस्मिन् करोतीत्यात्माऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मने आत्मन आत्मनि जानातीत्यनन्यत्वेऽपि । यथा प्रांशो देवदत्तस्य प्रांशुर्गौरित्यन्यत्वे सस्थान । तथा प्रांशोर्वृक्षस्य प्रांशु शाखाभरो, मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथैकस्य देवदत्तस्य दश गाव इत्यन्यत्वे सख्या । तथैकस्य

ते व्यपदेशादयस्तेषा द्रव्यगुणाना कथचिदनन्यत्वे विद्यते । न केवलमनन्यत्वे विद्यते । अन्यत्वे चापि कथचिदन्यत्वे चापि । नैयायिका किल वदन्ति द्रव्यगुणाना यद्येकान्तेन भेदो नास्ति तर्हि व्यपदेशादयो न घटते तत्रोत्तरमाह । द्रव्यगुणाना कथचिद्भेदे तथैवाभेदेऽपि व्यपदेशादय सतीति । तद्यथा । षट्कारकभेदेन सज्ञा द्विविधा भवति देवदत्तस्य गौरित्यन्यत्व व्यपदेश, तथैव वृक्षस्य शाखा जीवस्यानतज्ञानादिगुणा इत्यनन्यत्वेपि व्यपदेश । कारकत्व कथ्यते—देवदत्त कर्ता फल कर्मतापन्नमकुशेन करणभूतेन धनदत्ताय निमित्त वृक्षात्सकाशाद्वाटिकायामधिकरणभूतायामवचिनोतीत्यन्यत्वे कारकत्वं तथैवात्मा कर्तात्मान कर्मतापन्नमात्मना करणभूतेनात्मने निमित्तमात्मन सकाशादात्मन्यधिकरणभूते ध्यायतीत्यनन्यत्वेपि कारकसज्ञा । दीर्घस्य देवदत्तस्य दीर्घो गौरित्यन्यत्वे सस्थान दीर्घस्य वृक्षस्य दीर्घशाखाभार मूर्तद्रव्यस्य मूर्ता गुणा इत्यभेद च सस्थान । सख्या कथ्यते । देवदत्तस्य दशगाव इत्यन्यत्वे सख्या तथैव वृक्षस्य दशशाखा द्रव्यस्यानतगुणा इत्यभेदेऽपि । विषय कथ्यते—गोष्ठे गाव इति भेद विषय तथा द्रव्ये गुणा इत्यभेदेऽपि । एव व्यपदेशादयो भेदाभेदाभ्या घटते तेन कारणेन द्रव्यगुणानामेक

होते हैं और [ते] ये व्यपदेशादिक चार प्रकारके भेद [अनन्यत्वे] कथंचित्प्रकार अभेदभावमें [च] और [अन्यत्वे] कथंचित्प्रकार भेद भावमें [अपि] भी [विद्यन्ते] प्रवर्ते हैं । भावार्थ—ये चार प्रकारके व्यपदेशादिक भाव अभेदमें भी हैं और भेदमें भी हैं । इनकी दो प्रकारकी विवक्षा है जब एक द्रव्यकी अपेक्षा कथन किया जाय तब तो ये चार भाव अभेदकथनकी अपेक्षा कहे जाते हैं और जब अनेक द्रव्यकी अपेक्षा कथन किया जाय तब ये ही व्यपदेशादिक चार भाव भेदकथनकी अपेक्षा कहे जाते हैं । आगे ये ही दोनों भेद दृष्टान्तसे दिखाये जाते हैं । जैसे किसी पुरुषकी गाय कहना, यह भेदमें व्यपदेश है वैसे ही वृक्षकी शाखा, द्रव्यके गुण, यह अभेदमें व्यपदेश जानना । और यह व्यपदेश षट्कारककी अपेक्षा भी है सो दिखाया जाता है । जैसे कोई पुरुष फलको अंकुशसे धनदत्त पुरुषके निमित्त वृक्षसे वाटीमें तोड़ै है यह भेदमें व्यपदेश है । और मृत्तिका जैसे अपने घटभावको आपकर आप निमित्त आपमें आपसे करै है, तैसें ही आत्मा आपको अपनेद्वारा अपने निमित्त आत्मा

१ पुरुष २ गुण ३ पुरुषकी गाय ४ मट्टन् ।

वृक्षस्य दश शाखा , एकस्य द्रव्यस्यानन्ता गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । यथा गोष्ठे गाव इत्य न्यत्वे विषय । तथा वृक्षे शाखा, द्रव्ये गुणा इत्यनन्यत्वेऽपि । ततो न व्यपदेशादयो द्रव्यगुणाना वस्तुत्वेन भेद साधयन्तीति ॥ ४६ ॥

वस्तुत्वभेदाभेदोदाहरणमेतत्,—

> णाण धण च कुव्वदि धणिण जह णाणिण च दुविधेहिं ।
> भण्णंति तह पुधत्त एयत्त चावि तच्चण्हू ॥ ४७ ॥
>
> ज्ञान धन च करोति धनिन यथा ज्ञानिन च द्विविधाभ्या ।
> भणति तथा पृथक्त्वमेकत्व चापि तत्वज्ञा ॥ ४७ ॥

नेन भेद न साधयन्तीति । अत्र गाथाया नामकर्मोदयजनितनरनारकादिरूपव्यपदेशाभावेऽपि शुद्धजीवास्तिकायशब्देन व्यपदेश्य वाच्य निश्चयनयेन समचतुरस्रादिषट्संस्थानरहितमपि व्यवहारेण भूतपूर्वकन्यायेन किंचिदूनचरमशरीराकारेण संस्थान । केवलज्ञानाद्यनन्तगुणरूपेणानन्तसंख्यानमपि लोकाकाशप्रमितासंख्येयशुद्धप्रदेशरूपेणासंख्यातसंख्यान पञ्चेन्द्रियविषयसुखरसास्वादरतानामविषयमपि पञ्चेन्द्रियविषयातीतशुद्धात्मभावनोत्पन्नवीतरागसदानन्दैकसुखरूपसर्वात्मप्रदेश-परमसमरसीभावपरिणतध्यानविषय च यच्छुद्धजीवास्तिकायस्वरूप तदेवोपादेयमिति तात्पर्य ॥ ४६ ॥ अथ निश्चयेन भेदाभेदोदाहरण कथ्यते—णाण धण च कुव्वदि ज्ञान कर्तृ धन च कर्तृ करोति । किं करोति । धणिण णाणिण च धनिन ज्ञानिन च करोति दुविहेहिं द्वाभ्या नयाभ्यां व्यवहारनिश्चयाभ्या जह यथा भण्णंति भणन्ति तह तथा । किं भणन्ति ।

आपमें जाने है सो यह अभेदमें व्यपदेश जानना । और जैसें बडे पुरुषकी गाय बडी है, यह भेद संस्थान है वैसे ही बड़े वृक्षकी बडी शाखा, मूर्तीक द्रव्यके मूर्तीक गुण यह अभेद संस्थान जानना । और जैसें किसी पुरुषकी दशगौवें हैं ऐसे कहना सो भेदसंख्या है तैसें ही एक वृक्षकी दशशाखायें, एक द्रव्यके अनंतगुण, यह अभेद संख्या जाननी । और जैसें गोकुलमें गाय है, ऐसा कहना यह भेद विषय है तैसें ही वृक्षमें शाखा द्रव्यमें गुण यह अभेद विषय है । व्यपदेश संस्थान संख्या विषय ये चार प्रकारके भेद द्रव्यगुणमें अभेदरूप दिखाये जाते हैं, अन्यद्रव्यसे भेदकर दिखाये जाते हैं । यद्यपि द्रव्यगुणमें व्यपदेशादिक कहे जाते हैं तथापि वस्तुके विचारसे नहीं हैं॥४६॥

आगें भेद अभेद कथनका स्वरूप प्रगटकर दिखाया जाता है;—[यथा] जैसें [धन] द्रव्य सो [धनिन] पुरुषको धनवान [करोति] करता है अर्थात् धन जुदा है पुरुष जुदा है परंतु धनके संबधसे पुरुष धनी वा धनवान ऐसा नाम पाता है [च] और [ज्ञान] चैतन्यगुण जो है सो[ज्ञानिन] आत्माको ज्ञानी' ऐसा नाम कहलाता है ज्ञान

१ गाव इत्यस्मिन् गोष्ठ तथा स्थान तस्मिन् ।

यथा धन भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तम् भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य, भिन्नसंस्थान भिन्नसंस्थानस्य, भिन्नसंख्य भिन्नसंख्यस्य, भिन्नविषयलब्धवृत्तिक भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य, पुरुषस्य धनीति व्यपदेश पृथक्त्वप्रकारेण कुरुते । यथा च ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तमभिन्नास्तित्व निर्वृत्तस्याभिन्नसंस्थान अभिन्नसंस्थानस्याभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्याभिन्नविषयलब्धवृत्तिकम भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य पुरुषस्य ज्ञानीति व्यपदेशमेकत्वप्रकारेण कुरुते । तथान्यत्रापि । यत्र द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशोऽस्ति तत्र पृथक्त्व, यत्राभेदेन तत्रैकत्वमिति ॥ ४७ ॥

पुधत्त एयत्त चावि पृथक्त्वमेकत्व चापि । के भणति । तच्चण्हू तत्त्वज्ञा इति । तद्यथा-भिन्नास्तित्वनिर्वृत्त भिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य भिन्नव्यपदेश भिन्नव्यपदेशस्य भिन्नसंस्थान भिन्नसंस्थानस्य भिन्नसंख्य भिन्नसंख्यस्य भिन्नविषयलब्धवृत्तिक भिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य धन कर्तृ पृथक्त्वप्रकारेण धनीति व्यपदेश करोति यथा तथैव चाभिन्नास्तित्वनिर्वृत्त ज्ञानमभिन्नास्तित्वनिर्वृत्तस्य पुरुषस्य अभिन्नव्यपदेशमभिन्नव्यपदेशस्य अभिन्नसंस्थानमभिन्नसंस्थानस्य अभिन्नसंख्यमभिन्नसंख्यस्य अभिन्नविषयलब्धवृत्तिकमभिन्नविषयलब्धवृत्तिकस्य ज्ञान कर्तृ पुरुषस्यापृथक्त्वप्रकारेण ज्ञानीति व्यपदेश करोति । दृष्टान्तव्याख्यान गत तथान्यत्र दार्ष्टान्तपक्षेऽपि यत्र विवक्षित द्रव्यस्य भेदेन व्यपदेशादयो भवति तत्र निश्चयेन भेदो ज्ञातव्य पूर्वगाथाकथितक्रमेण देवदत्तस्य गवादि । यत्र पुनरपि व्यपदेशादयो भवति तत्र निश्चयेनाभेदो ज्ञातव्य वृक्षस्य शाखा जीवस्य दर्शनज्ञानादयो गुणा इत्यादि वदिति । अत्र सूत्र यदेव जीवेन सहाभिन्नव्यपदेश अभि

और आत्माको प्रदेशभेदरहित एकता है । परन्तु गुणगुणीके कथनकी अपेक्षा ज्ञान गुणके द्वारा आत्मा 'ज्ञानी' ऐसा नाम धारण करता है [तथा] वैसे ही [द्विविधाभ्या] इन दो प्रकारके भेदाभेदकथनद्वारा [तत्त्वज्ञा] वस्तुस्वरूपके जाननेवाले पुरुष हैं वे [पृथक्त्व] प्रदेशभेदकी पृथक्तासे जो सबध है उसको पृथक्त्व कहते हैं [च] और [अपि] निश्चयसे [एकत्व] प्रदेशोंकी एकतासे सबध है उसका नाम एकत्व है ऐसे दो भेदोंको [भणन्ति] कहते हैं । भावार्थ—व्यवहार दो प्रकारका है एक पृथक्त्व और एक एकत्व जहांपर भिन्न द्रव्योंमें एकताका सबध दिखाया जाय उसका नाम पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है और एक वस्तुमें भेद दिखाया जाय उसका नाम एकत्व व्यवहार कहा जाता है सो ये दोनों प्रकारका सबध धन धनी ज्ञान ज्ञानीमें व्यपदेशादिक चार प्रकारसे दिखाया जाता है । धन जो है सो अपना नाम सस्थान सख्या और विषय इन चारों भेदोंसे जुदा है—और पुरुष अपना नाम सस्थान सख्या विषयरूप चार भेदोंसे जुदा है । परंतु धनके सबधसे पुरुष धनी कहलाता है इसीको पृथक्त्व व्यवहार कहा जाता है । ज्ञान और ज्ञानीमें एकता है

---

१ दृश्यम् ।

द्रव्यज्ञानयोरर्थान्तरत्वे दोषोऽयम्,—

णाणी णाणं च सदा अत्थंतरिदो दु अण्णमण्णस्स।
दोण्हं अचेदणत्तं पसजदि सम्मं जिणावमदं ॥ ४८ ॥

ज्ञानी ज्ञानं च सदार्थान्तरिते त्वन्योऽन्यस्य।
द्वयोरचेतनत्वं प्रसजति सम्यग् जिनावमतम् ॥ ४८ ॥

ज्ञानी ज्ञानाद्यद्यर्थान्तरभूतस्तदा स्वकरणांशमन्तरेण परशुरहितदेवदत्तवत्करणव्यापारा-

[illegible] अभिन्नप्रदेशत्वेन च [illegible] सम्यग्ज्ञानभावना [illegible] बीजभूत [illegible] [illegible] ॥ ४७ ॥ अथ ज्ञानज्ञानिनोरत्यन्तभेदे दोषं [illegible] —णाणी ज्ञानी जीवः णाणं च ज्ञानं च सदा ज्ञानगुणोऽपि सदा अत्थंतरिदो दु [illegible] अण्णमण्णस्स अन्योन्यापेक्षया [illegible] दोण्हं अचेदणत्तं द्वयोरचेतनत्वं पसजदि प्रसजति प्राप्नोति। [illegible] सम्मं जिणावमदं सम्यक्प्रकारेण जिनानामसम्मतमिति। तथाहि। [illegible] गुणो [illegible] गुणी [illegible] प्रसङ्गात् [illegible]

परंतु नाम लक्षण संख्या विषयोंसे ज्ञानका भेद किया जाता है। वस्तुस्वरूपको भली भाँति जाननेके कारण उस ज्ञानके संबंधसे ज्ञानी नाम पाता है इसको एकत्व व्यवहार कहते हैं। ये दो प्रकारके संबंध समस्त द्रव्योंमें चार प्रकारसे जानना ॥४७॥ आगे ज्ञान और ज्ञानीमें सर्वथाप्रकार जो भेद ही माना जाय तो बड़ा दोष आता है, ऐसा कथन करते हैं,—[ज्ञानी] आत्मा [च] और [ज्ञान] चैतन्यगुणका [सदा] सदाकाल [अर्थान्तरिते] सर्वथा प्रकारभेद होय [तु अन्योन्यस्य] तो परस्पर [द्वयो] ज्ञानी और ज्ञानके [अचेतनत्व] जड़भाव [प्रसजति] होता है [सम्यक्] यथार्थमें यह [जिनावमत] जिनेन्द्र भगवानका कथन है। भावार्थ—जैसे अग्निमें उष्णता गुण है जो इस अग्नि और उष्णतागुणमें पृथक्ता होती तो इंधनको जला नहीं सकती थी जो प्रथमसे ही उष्णगुण जुदा होता तो काहेसे जलाता ? और जो अग्नि जुदी होती तो उष्णगुण किसके आश्रय रहे ? निराश्रय होकर

समर्थत्वादचेतयमानोऽचेतन एव स्यात् । ज्ञानं यदि ज्ञानिनोऽर्थांतरभूतं तदा तत्कंर्शमंतरेण देवदत्तरहितपरशुवत्तत्कर्तृत्वव्यापारासमर्थत्वादचेतयमानमचेतनमेव स्यात् । न च ज्ञानज्ञानिनोर्युतसिद्धयोस्संयोगेन चेतनत्वं द्रव्यस्य निर्विशेषस्य गुणानां निराश्रयाणां शून्यत्वादिति ॥ ४८ ॥

श्रयेन जडो भवति । अथ मतं यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवतीति । नैवं वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितं पुरुषस्य शक्तिविशेषस्तत्राभ्यंतरोपकरणं शक्त्यभावे दात्रोपकरणे हस्तव्यापारे च सति छेदनक्रिया नास्ति तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति । अत्र यस्य ज्ञानस्याभावाज्जीवो जडः सन् वीतरागसहजसुंदरानंदस्यन्दि पारमार्थिकसुखमुपादेयमजानन् संसारे परिभ्रमति तदेव रागादिविकल्प

वह भी जलानेकी क्रियासे रहित हो जावा क्योंकि गुणगुणी परस्पर जुदा होनेपर कार्य करनेको असमर्थ होते हैं । जो दोनोंकी एकता होय वो जलानेकी क्रियामें समर्थ होंय उसीप्रकार ज्ञानी और ज्ञान परस्पर जुदा होनेपर जाननेकी क्रियामें असमर्थता होती है ज्ञानविना ज्ञानी कैसें जाने ? और ज्ञानीविना ज्ञान निराश्रय होवा वो यह भी जाननरूप क्रियामें असमर्थ होता ज्ञानी और ज्ञानके परस्पर जुदा होनेपर दोनों अचेतन होते हैं । और जो कोई यहां यह कहैं कि पृथक्रूप दातसे काटनेपर पुरुष ही काटनहारा कहलाता है इसीप्रकार पृथक्रूप ज्ञानके द्वारा आत्माको जाननेहारा मानो वो इसमें क्या दोष है ? ताका उत्तर—काटनेकी क्रियामें दाव बाह्य निमित्त है उपादान काटनेकी शक्ति पुरुषमें है जो पुरुषमें काटनेकी शक्ति न होती वो दाव कुछ कार्यकारी नहीं होते—इस लिये पुरुषका गुण प्रधान है, उस अपने गुणसे पुरुषके एकता है उसी कारण ज्ञानी और ज्ञानके एक संबंध है पुरुष और दातकासा संबंध नहीं है गुणगुणी वेही कहाते हैं जिनके प्रदेशोंकी एकता होय ज्ञान और ज्ञानीमें संयोगसंबंध

---

१ यथाऽग्निगुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नः सन्नुष्णत्वलक्षणगुणोऽग्निदहनक्रियां प्रत्ययसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति । तथा जीवात् गुणिनः सकाशादत्यंतभिन्नो ज्ञानगुणः पदार्थपरिच्छित्तिं प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडो भवति । यथोष्णगुणादत्यन्तभिन्नः सन् वह्निगुणी दहनक्रियां प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन शीतलो भवति । तथा ज्ञानगुणादत्यन्तभिन्नः सन् जीवो गुणी पदार्थपरिच्छित्तिं प्रत्यसमर्थः सन्निश्चयेन जडो भवति । अथ मतं । यथा भिन्नदात्रोपकरणेन देवदत्तो लावको भवति तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति इति नैवं वक्तव्यं । छेदनक्रियां प्रति दात्रं बाह्योपकरणं । वीर्यांतरायक्षयोपशमजनितः पुरुषशक्तिविशेषस्त्वभ्यंतरोपकरणं । शक्त्यभावे दात्रोपकरणे हि तद्व्यापारे च सति यथा छेदनक्रिया नास्ति, तथा प्रकाशोपाध्यायादिबहिरंगसहकारिसद्भावे सत्यभ्यंतरज्ञानोपकरणाभावे पुरुषस्य पदार्थपरिच्छित्तिक्रिया न भवतीति ।

अथाज्ञानिनो ह्यज्ञानसमवायो निष्फलः । ज्ञानित्वं तु ज्ञानसमवायाभावात् नास्त्येव । ततोऽज्ञानीति वचनमज्ञानेन सहैकत्वमवश्यं साधयत्येव । सिद्धे चैवमज्ञानेन सहैकत्वे ज्ञानेनाऽपि सहैकत्वमवश्यं सिद्ध्यतीति ॥ ४९ ॥

समवायस्य पदार्थांतरत्वनिरासोऽयम्,—

समवत्ती समवाओ अपुधब्भूदो य अजुदसिद्धो य ।
तम्हा दव्वगुणाणं अजुदा सिद्धित्ति णिद्दिट्ठा ॥ ५० ॥

समवर्तित्वं समवायः अपृथग्भूतत्वमयुतसिद्धत्वं च ।
तस्माद्द्रव्यगुणानां अयुता सिद्धिरिति निर्दिष्टा ॥ ५० ॥

कारणेनाज्ञानित्वं पूर्वमेव तिष्ठति अथवा स्वभावेनाज्ञानित्वं तथैव ज्ञानित्वमपि स्वभावेनैव गुणत्वादिति । अत्र यथा मेघपटलावृते दिनकरे पूर्वमेव प्रकाशस्तिष्ठति पश्चात्पटलविघटनानुसारेण प्रकटो भवति तथा जीवे निश्चयनयेन क्रमकरणव्यवधानरहितत्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तवस्तुगतानंतधर्मप्रकाशकमखण्डप्रतिभासमयं केवलज्ञानं पूर्वमेव तिष्ठति किंतु व्यवहारनयेनानादिकर्मावृतः सन्न ज्ञायते पश्चात्कर्मपटलविघटनानुसारेण प्रकटं भवति न च जीवाद्बहिर्भूतं ज्ञानं तिष्ठतीति पश्चात्समवायसंबंधबलेन जीवे संबद्धं न भवतीति भावार्थः ॥ ४९ ॥ अथ गुणगु

अज्ञानी था तो यह अज्ञानी था अज्ञानके संबंधसे कुछ प्रयोजन नहीं है स्वभावसे ही अज्ञानी भये है इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि—ज्ञान गुणका जो प्रदेशभेदरहित ज्ञानीमें एकभाव माना जाय तो आत्माके अज्ञानगुणसे एकभाव होता सता अज्ञानीपद धरता है—इसकारण ज्ञान और ज्ञानीमें अनादिही अनंत एकता है । ऐसी एकता है जो ज्ञानके अभावसे ज्ञानीका अभाव हो जाता है—और ज्ञानीके अभावमें ज्ञानका अभाव होता है । और जो यों नहीं माना जाय तो आत्मा अज्ञानभावकी एकतासे अवश्यमेव अज्ञानी होता है और जो ऐसा कहा जाता है कि अज्ञानका नाश करके आत्मा ज्ञानी होता है सो यह कथन कर्म उपाधि संबंधसे व्यवहारनयकी अपेक्षा जानना । जैसें सूर्य मेघपटलद्वारा आच्छादित हुवा प्रभारहित कहा जाता है परंतु सूर्य अपने स्वभावसे उस प्रभासें त्रिकाल जुदा होता नहीं पटलकी उपाधिसे प्रभास हीन अधिक कहा जाता है तैसें ही यह आत्मा अनादि पुद्गलउपाधिसंबंधसे अज्ञानी हुवा प्रवर्ते है परंतु यह आत्मा अपने स्वाभाविक अनंत केवलज्ञान स्वभावसे स्वरूपसे किसी कालमें भी जुदा नहीं होता । कर्मोंकी उपाधिसे ज्ञानकी हीनता अधिकता कहा जाती है इसप्रकार निश्चय करके ज्ञानीसे ज्ञानगुण जुदा नहीं है । कर्मसंबंधके वशसे अज्ञानी कहा जाता है कर्मके घटनेसे ज्ञानी होता है यह कथन व्यवहारनयकी भेद ॥ जानना ॥ ४९ ॥ आगें गुणगुणीमें एकभावके विना

---

१ [illegible]

द्रव्यगुणानामेकास्तित्वनिर्वृत्तत्वादनादिरनिधना सहवृत्तिर्हि समवर्तित्वम् । स एव समवायो जैनानाम् । तदेव संज्ञादिभ्यो भेदेऽपि वस्तुत्वेनाभेदादपृथग्भूतत्वम् । तदेव युतसिद्धिनिबन्धनस्यास्तित्वान्तरस्याभावादयुतसिद्धत्वम् । ततो द्रव्यगुणानां समवर्तित्वलक्षणसमवायभाजामयुतसिद्धिरेव, न पृथग्भूतत्वमिति[1] ॥ ५० ॥

णिनो कथंचिदेकत्वं विहायान्य कोपि समवायो नास्तीति समर्थयति;—**समवत्ती** समवृत्ति सहवृत्तिर्गुणगुणिनो कथंचिदेकत्वेनादितादात्म्यसंबंध इत्यर्थ **समवाओ** स एव जैनमते समवायो नान्य कोपि परिकल्पित **अपुधब्भूदो य** तदेव गुणगुणिनो संज्ञालक्षणप्रयोजनादि भेदेपि प्रदेशभेदाभावादपृथग्भूतत्वं भण्यते **अजुदसिद्धा य** तदेव दण्डदण्डिवद्भिन्नप्रदेशलक्षण युतसिद्धत्वाभावादयुतसिद्धत्वं भण्यते **तम्हा** तस्मात्कारणात् **दव्वगुणाण** द्रव्यगुणानां **अजुदा सिद्धित्ति** अयुतासिद्धिरिति कथंचिदभिन्नत्वसिद्धिरिति **णिद्दिट्ठा** निर्दिष्टा कथितेति । अत्र व्याख्याने यथा ज्ञानगुणेन सहानादितादात्म्यसंबंध प्रतिपादितो द्रष्टव्यो जीवेन सह तथैव च मदव्याबाधरूपमप्रमाणमविनश्वरं स्वाभाविक रागादिदोषरहित परमानन्दैकस्वभाव पारमार्थिकसुख तत्प्रभृतयो ये अनंतगुणा केवलज्ञानांतर्भूतास्तैरपि सहानादितादात्म्यसंबंध श्रद्धातव्यो ज्ञातव्य तथैव च समस्तरागादिविकल्पत्यागेन निरंतर ध्यातव्य इत्यभिप्राय ॥५०॥

और किसीप्रकारका संबंध नहीं है ऐसा कथन करते हैं,—[**समवर्तित्व**] द्रव्य और गुणोंके एक अस्तित्वकर अनादि अनंत धारावाहीरूप जो प्रवृत्ति है तिसका नाम जिन मतमें [**समवाय**] समवाय है । **भावार्थ**—संबंध दो प्रकारके हैं एक संयोगसंबंध है और एक समवायसंबंध है—जैसें जीवपुद्गलका संबंध है सो तो संयोगसंबंध है । और समवायसंबंध वहां कहिये जहाँ कि अनेक भावोंका एक अस्तित्व होय सके जैसें गुणगुणीमें संबंध है । गुणोंके नाश होनेसे गुणीका नाश और गुणीके नाश होनेसे गुणोंका नाश होय । इसप्रकार अनेक भावोंका जहां संबंध होय उसीका नाम समवायसंबंध कहा जाता है । [**च अपृथग्भूत**] और वही गुणगुणीका समवायसंबंध प्रदेशभेदरहित जानना । यद्यपि संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजनादिकसे गुणगुणीमें भेद है तथापि जैसें सुवर्णके और पीतादि गुणके समवायसंबंधमें प्रदेशभेद नहीं है, इसीप्रकार गुणगुणीकी एकता है । [**च**] और [**अयुतसिद्धत्व**] वही गुणगुणीका समवाय संबंध मिलकर नहीं हुवा है अनादि सिद्ध एकही है [**तस्मात्**] तिसकारणसे [**द्रव्यगुणानां**] गुणगुणीमें वह समवाय संबंध [**अयुता सिद्धि**] अनादिसिद्धि [**इति**] इसप्रकार [**निर्दिष्टा**] भगवंत देवने दिखाया है ऐसा

---

१ एवं समवायनिरूपणमुख्यत्वेन गाथा ४ गताः ।

दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकार्थपुरस्सरो द्रव्यगुणानामनर्थान्तरत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्,—

वण्णरसगंधफासा परमाणुपरूविदा विसेसा हि ।
दव्वादो य अणण्णा अण्णत्तपगासगा होंति ॥ ५१ ॥
दंसणणाणाणि तहा जीवणिबद्धाणि णण्णभूदाणि ।
ववदेसदो पुधत्तं कुव्वंति हि णो सभावादो ॥ ५२ ॥ जुम्मं ।

वर्णरसगंधस्पर्शाः परमाणुप्ररूपिता विशेषा हि ।
द्रव्यतश्च अनन्याः अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति ॥ ५१ ॥
दर्शनज्ञाने तथा जीवनिबद्धे अनन्यभूते ।
व्यपदेशतः पृथक्त्वं कुरुते हि नो स्वभावात् ॥ ५२ ॥ युग्मम् ।

वर्णरसगंधस्पर्शा हि परमाणो प्ररूप्यंते । ते च परमाणोरविभक्तप्रदेशत्वेनानन्यत्वेऽपि संज्ञादिव्यपदेशनिबंधनैर्विशेषैरन्यत्वं प्रकाशयन्ति । एवं ज्ञानदर्शने अप्यात्मनि

एवं समवायनिराकरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ दृष्टान्तदार्ष्टान्तरूपेण द्रव्यगुणानां कथंचिद्भेदव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते,—वण्णरसगंधफासा वर्णरसगंधस्पर्शाः परमाणुपरूविदा परमाणुद्रव्यप्ररूपिताः कथिताः । कैः कृत्वा । विसेसेहिं विशेषैः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदैः अथवा 'विसेसो हि' इति पाठांतरं विशेषाः विशेषगुणधर्माः स्वभावाः हि स्फुटं । ते कथंभूताः । दव्वादो य परमाणुद्रव्याच्च सकाशात् अणण्णा निश्चयनयेनानन्ये अण्णत्तपयासगा होंति पश्चाद्व्यवहारनयेन संज्ञादिभेदेनान्यत्वप्रकाशका भवंति यथा । इति दृष्टांतगाथा गता । दंसणणाणाणि तहा दर्शनज्ञाने द्वे तथा । कथंभूते । जीवणिबद्धाणि जीवनिबद्धे द्वे ।

गुणगुणीविषैं समवायसंबंध जानना ॥ ५० ॥ आगें दृष्टांतसहित गुणगुणीकी एकताका कथन संक्षेपसे करते हैं,—[हि] निश्चयसे [परमाणुप्ररूपिता¹] परमाणुवोंमें कहे जे [वर्णरसगंधस्पर्शा] वर्णरसगंधस्पर्श ऐसे चार [विशेषा] गुण [द्रव्यतः अनन्याः] पुद्गलद्रव्यमें पृथक् नहीं है—भावार्थ—निश्चय नयकी अपेक्षा वर्ण रस गंध स्पर्श ये चार गुण समवायसंबंधसे पुद्गलद्रव्यसे जुदे नहीं है [च] और ये ही चारों वर्णादिकगुण [अन्यत्वप्रकाशका भवन्ति] व्यवहारकी अपेक्षा पुद्गलद्रव्यसे पृथक्ताको भी प्रगट करता है। भावार्थ—यद्यपि ये वर्णादिक गुण निश्चयकरके पुद्गलसे एक हैं तथापि—व्यवहारनयकी अपेक्षा संज्ञा भेदकर भेद भी कहा जाता है प्रदेशभेदसे भेद नहीं है । [तथा] और जैसें पुद्गलद्रव्यसे वर्णादिक गुण अभिन्न हैं तैसें ही निश्चयनयसे [जीवनिबद्धे] जीवमें समवायसंबंधरूप [दर्शनज्ञाने]

---

१ कथिताःप्रज्ञप्ताः ।

ममद्ध आत्मद्रव्यादविभक्तप्रदेशत्वेनाऽनन्येऽपि सञ्ज्ञाव्यपदेशनिबंधैर्विशेषैः पृथक्त्वमा सादयत । स्वभावतस्तु नित्यमपृथक्त्वमेव बिभ्रत ॥ ५१ । ५२ ॥

इति उपयोगगुणव्याख्यान समाप्तं । अथ कर्तृत्वगुणव्याख्यानम् । तत्रादिगाथात्रयेण तदुपोद्घात ।

जीवा अणाइणिहणा सता णता य जीवभावादो ।
सब्भावदो अणता पचग्गगुणप्पधाणा य ॥ ५३ ॥

जीवा अनादिनिधना साता अनताश्च जीवभावात् ।
सद्भावतोऽनता पञ्चाग्रगुणप्रधाना च ॥ ५३ ॥

जीवा हि निश्चयेन परभावानामकरणात् स्वभावाना कर्तारो भविष्यन्ति । तांश्च कुर्वाणा

पुनरपि कथभूते । अणण्णभूदाणि निश्चयनयेन प्रदेशरूपेणानन्यभूते । इत्थभूते त किं कुरुत । ववदसदो पुधत्त व्यपदेशात सज्ञादिभेदत पृथक्त्व नानात्व कुव्वति कुरुत हु स्फुट णो सहावादो नत्र स्वभावतो निश्चयनयेन इति । अस्मिन्नधिकारे यद्यप्यष्टविधज्ञानोपयोगचतुर्विधदर्शनोपयोगव्याख्यानकाले शुद्धाशुद्धविवक्षा न कृता तथापि निश्चयनयेनादिमध्यातविन परमानदमालिनि परमचैतन्यशालिनि भगवत्यात्मनि यदनाकुलत्वलक्षण पारमार्थिकसुख तस्योपादेयभूतस्योपादानकारणभूत यत्केवलज्ञानदर्शनद्वय तदेवोपादेयमिति श्रद्धेय ज्ञेय तथैवार्त्तरौद्रादिसमस्तविकल्पजालत्यागेन ध्येयमिति भावार्थः ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ एव दृष्टातदार्ष्टातरूपेण गाथाद्वय गत । अत्र प्रथम 'उवओगो दुवियप्पो' इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण दर्शनज्ञानकथनरूपेणान्तरस्थलपचकेन गाथानवक, तदनतर 'ण वियप्पदि णाणादो' इत्यादि पाठक्रमेण नैयायिक प्रति गुणगुणिभेदनिराकरणरूपेणान्तरस्थलचतुष्टयेन गाथादशकमिति समुदायनैकोनविंशतिगाथाभिर्नवाधिकारस्थ्याख्यानरूपनवाधिकारेषु मध्ये षष्ठ "उपयोगाधिकार समाप्त " । अथानतर वीतरागपरमानन्दसुधारससमरसीभावपरिणतिस्वरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशात् भिन्न यत्कर्म

दर्शन ज्ञान असाधारण गुण भी [**अनन्यभूते**] जुदे नहीं हैं [**व्यपदेशात**] सज्ञादि भेदके कथनसे आधार आत्मा और ज्ञानदर्शनमें [**पृथक्त्व**] भेदभावको [**कुरुते**] करते हैं यद्यपि [**हि**] निश्चयसे [**स्वभावात्**] निजस्वरूपसे [**नो**] भेद संभवता नहीं है । भगवतका मत अनेकात है दोय नयोंसे सधता है इस कारण निश्चय व्यवहारसे भेद अभेद गुणगुणीका स्वरूप परमागमसे विशेषरूप जानना । यह चारप्रकार दर्शनोपयोग आठ प्रकार ज्ञानोपयोग शुद्धअशुद्ध भेद कथनसे सामान्यस्वरूप पूर्वोक्त प्रकारसे जानना यह उपयोग गुणका व्याख्यान पूर्ण हुवा ॥ ५१ । ५२ ॥

आगें कर्तृत्वका अधिकार कहते हैं जिसमेंसे जीव निश्चयनयसे परभावनके कर्त्ता नहीं हैं अपने स्वभावके ही कर्त्ता होते हैं । वे ही जीव अपने परिणामोंको करते हुये अनादि अनंत हैं कि सादिसात हैं अथवा सादिअनंत हैं और कैसे

निधनानि भावान्तराणि नोपपद्यत इति वक्तव्यम् । ते खल्वनादिकर्ममलीमसाः पङ्कसंपृक्ततोयवत्तदाकारेण परिणतत्वात्पञ्चप्रधानगुणप्रधानत्वेनैवानुभूयन्त इति ॥ ५३ ॥

जीवस्य भाववशात्सादिसनिधनत्वे साद्यनिधनत्वे च विरोधपरिहारोऽयम्,—

एव सदो विणासो असदो जीवस्स होइ उप्पादो ।
इदि जिणवरेहिं भणिदं अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्धं ॥ ५४ ॥

एवं सतो विनाशोऽसतो जीवस्य भवत्युत्पादः ।
इति जिनवरैर्भणितमन्योऽन्यविरुद्धमविरुद्धम् ॥ ५४ ॥

एवं हि पञ्चभिर्भावैः स्वयं परिणममानस्यास्य जीवस्य कदाचिदौदयिकेनैकेन मनुष्य-

---

सादित्वादतोऽपि निधनं भविष्यतीत्याशङ्कनीयं । स हि कर्मक्षये सति क्षायिकभावः केवलज्ञानादिरूपेण समुत्पद्यमानः सिद्धभाव इव जीवस्य सद्भाव एव । स च स्वभावस्य विनाशो नास्ति चेति अनाद्यनिधनसहजशुद्धपारिणामिकभावानां सादि सनिधनान्यौदयिकादिभावान्तराणि कथं संभवन्तीति चेत् पञ्चाग्रगुणप्रधाना य यद्यपि स्वभावेन शुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात्सकर्दमजलवदौदयिकादिभावपरिणता दृश्यत इति स्वरूपव्याख्यानं गतं । इदानीं संख्यां कथयति । सब्भावदो अणंता द्रव्यस्वभावगणनया पुनरनन्ता । सान्तानन्तशब्दयोर्द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—महतेन संसारविनाशे वर्तते सान्ता भव्या न विद्यते संसारविनाशो येषां ते पुनरनन्ता अभव्यास्ते चाभव्या अनन्तसंख्यास्तेभ्योऽपि भव्या अनन्तगुणसंख्यास्तेभ्योऽपि अभव्यसमानभव्या अनन्तगुणा इति । अत्र सूत्रे अनादिनिधना अनन्तज्ञानादिगुणाधारा शुद्धजीवा एव सादिसनिधनमिथ्यात्वरागादिदोषपरिहारपरिणतानां भव्यानामुपादेया इति तात्पर्यार्थः ॥५३॥ अथ यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन विनाशोत्पादौ भवतः तथापि द्रव्यार्थिकनयेन न भवत इति पूर्वापरविरोधो नास्तीति कथयति;—**एव सदो विणासो** एवं पूर्वगाथाकथितप्रकारेणौदयिकभावे

उत्तर—अनादि कर्मसंबंधसे यह आत्मा अशुद्धभावसे परिणमै है इस कारण सादि सांत सादिअनंतभाव होता है जैसे कीचसे मिला हुआ जल अशुद्ध होता है उस कीचके मिलाप होने न होनेकर शुद्ध अशुद्ध जल कहा जाता है तैसें ही इस आत्माके कर्म संबंध होने न होनेके कारण सादिसांत सादिअनंत भाव कहे जाते हैं [च] और [पञ्चाग्रगुणप्रधानाः] औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक क्षायिक, और परिणामिक इन पांच भावोंकी प्रधानतालिये प्रवर्ते हैं ॥ ५३ ॥ आगें जीवोंके पांच भावोंसे यद्यपि सादिसांत अनादि अनंत भाव हैं तथापि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयसे विरोध नहीं है ऐसा कथन करते हैं,—[एवं] इस पूर्वोक्त प्रकारके भावोंसे परिणये जो जीव हैं

---

१ कर्मसंश्लिष्टजलवत् यद्यपि स्वभावेन विशुद्धास्तथापि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात्सकर्दमजलवत् दयिकादिभावपरिणता इत्यर्थः ।

त्वादिलक्षणेन भावेन सतो विनाशस्तथा परेणौदयिकेनैव देवत्वादिलक्षणेन भावेन असत उत्पादो भवत्येव । एतच्च 'न सतो विनाशो नासत उत्पाद' इति पूर्वोक्तसूत्रेण सह विरुद्धमपि न विरुद्धम् । यतो जीवस्य द्रव्यार्थिकनयादेशेन न सत्प्रणाशो नासदुत्पाद । तस्यैव पर्य्यायार्थिकनयादेशेन सत्प्रणाशो सदुत्पादश्च । न चैतदनुपपन्नम् । नित्ये जले कल्लोलानामनित्यत्वदर्शनादिति ॥ ५४ ॥

जीवस्य सदसद्भावोच्छित्त्युत्पत्तिनिमित्तोपाधिप्रतिपादनमेतत्,–

णेरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसञ्जुदा पयडी ।
कुव्वंति सदो णास असदो भावस्स उप्पाद ॥ ५५ ॥

नारकतिर्यङ्मनुष्या देवा इति नामसंयुता प्रकृतय ।
कुर्वन्ति सतो नाशमसतो भावस्योत्पाद ॥ ५५ ॥

नायुरुच्छेदवशात् मनुष्यपर्यायरूपेण सतो विद्यमानस्य विनाशो भवति **असदो जीवस्स हवदि उप्पादो** असतोऽविद्यमानस्य देवादिजीवस्य पर्यायस्य गतिनामकर्मोदयाद्भवत्युत्पाद **इदि जिणवरेहि भणिय** इति जिनवरैर्वीतरागसर्वज्ञैर्भणित इदं तु व्याख्यान । कथभूत । **अण्णोण्णविरुद्धमविरुद्ध** अन्योन्यविरुद्धमप्यविरुद्ध । कथमिति चेत् । द्रव्यपीठिकायां सतो जीवस्य विनाशो नास्त्यसत उत्पादो नास्तीति भणित, अत्र सतो जीवस्य विनाशो भवत्यसत उत्पादो भवतीति भणित तेन कारणेन विरोध । तत्र । तत्र द्रव्यपीठिकायां द्रव्यार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ निषिद्धौ, अत्र तु पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययौ भवत इति नास्ति विरोध । तदपि कस्मादिति चेत्[1] द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनययो परस्परसापेक्षत्वादिति । अत्र यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन सादिसनिधन जीवद्रव्य व्याख्यात तथापि शुद्धनिश्चयेन यदेवानादिनिधन टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभाव निर्विकार सदानन्दैकस्वरूप च तदेवोपादेयमित्यभिप्राय ॥ ५४ ॥ अथ पूर्वसूत्रे जीवस्योत्पादव्ययसत्त्व

उनके जब उत्पादव्ययकी अपेक्षा कीजे तब [**सत**] विद्यमान जो मनुष्यादिकपर्याय उसका तो [**विनाश**] विनाश होना और [**असत**] अविद्यमान [**जीवस्य**] जीवकी [**उत्पाद**] देवादिकपर्यायकी उत्पत्ति [**भवति**] होती है [**इति जिनवरैः**] इस प्रकार जिनेंद्र भगवानकेद्वारा [**अन्योऽन्यविरुद्ध**] यद्यपि परस्परविरुद्ध है तथापि [**अविरुद्ध**] विरोधरहित [**भणित**] कहा गया है । **भावार्थ—** भगवानके मतमें दो नय हैं एक द्रव्यार्थिक नय—दूसरा पर्यायार्थिक नय है । द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका न तो उत्पाद है और न नाश है । और पर्यायार्थिक नयसे नाश भी है और उत्पाद भी है । जैसे कि जल नित्य अनित्यस्वरूप है द्रव्यकी अपेक्षा तो जल नित्य है—और कल्लोलोंकी अपेक्षा उपजना विनशना होनेके कारण अनित्य है इसी प्रकार द्रव्य नित्यअनित्यस्वरूप कथंचित्प्रकारसे जान लेना ॥ ५४ ॥ आगे जीवके

---

[1] अनित्य नय म नय ।

यथा हि जलराशेर्जलराशित्वेनासदुत्पादं सदुच्छेदं चाननुभवतश्चतुर्भ्यः ककुब्विभागेभ्यः क्रमेण वहमानाः पवमानाः कल्लोलानामसदुत्पादं सदुच्छेदं च कुर्वन्ति । तथा जीवस्याऽपि जीवत्वेन सदुच्छेदमसदुत्पत्तिं चाननुभवतः क्रमेणोदीयमानाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवनामप्रकृतयः सदुच्छेदमसदुत्पादं च कुर्वंतीति ॥ ५५ ॥

जीवस्य भावोदयवर्णनमेतत्,—

उदयेण उवसमेण य खयेण दुहिं मिस्सिदेहिं परिणामे ।
जुत्ता ते जीवगुणा बहुसु य अत्थेसु विच्छिण्णा ॥ ५६ ॥

उदयेनोपशमेन च क्षयेण च द्वाभ्यां मिश्रिताभ्यां परिणामेन ।
युक्तास्ते जीवगुणा बहुषु चार्थेषु विस्तीर्णाः ॥ ५६ ॥

षड्गुणितं तस्य नरनारकादिगतिनामकर्मोदयकारणमिति कथयति—णिरइयतिरियमणुआ देवा इदि णामसंजुदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवा इति नामसंयुक्ताः पयडी नामकर्मप्रकृतयः कर्तृ कुव्वंति कुर्वन्ति । किं । सदो णासं सतो विद्यमानस्य भावस्य पर्यायस्य नाशं असदो भावस्स उप्पत्ती असतो भावस्य पर्यायस्योत्पत्तिमिति । तथाहि । यथा समुद्रस्य समुद्ररूपेणाविनश्वरस्यापि कल्लोला उत्पादव्ययद्वयं कुर्वंति तथा जीवस्य सहजानन्दैकस्वभावेनाविनश्वरस्यापि व्यवहारेणानादिकर्मोदयवशाज्जातिनामकर्मोदयेन युक्तस्य नरकगत्यादिकर्मप्रकृतयः उत्पादव्ययं च कुर्वंतीति । तथा चोक्तं । "अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् । उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥" अत्र यदेव शुद्धनिश्चयनयेन मुक्तात्मस्वरूपं रागादिरहितं वीतरागपरमाह्लादैकरूपचैतन्यप्रकाशसहितं शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तदेवोपादेयमिति भावार्थः ॥ ५५ ॥ एवं कर्मकर्तृत्वाभिप्रायपीठिकाव्याख्यानरूपेण गाथाचतुष्टयं प्रथमस्थलं गतं । अथ पीठिकायां पूर्वं जीवस्य यदौदयिकादिभावपंचकं सूचितं तस्य व्याख्यानं करोति;—जुत्ता इत्यादि ।

उत्पादव्ययका कारण कर्मउपाधि दिखाते हैं;—[नारकतिर्यङ्मनुष्या देवाः] नरक तिर्यञ्च मनुष्य देव [इति नामसंयुताः] इन नामोंकर संयुक्त [प्रकृतयः] नामकर्मसम्बन्धिनी प्रकृतियें [सतः] विद्यमानपर्यायके [नाशं] विनाशको [कुर्वन्ति] करती हैं । और [असतः] अविद्यमान [भावस्य] पर्यायकी [उत्पादं] उत्पत्तिको [कुर्वन्ति] करती हैं । भावार्थ—जैसे समुद्र अपने जलसमूहसे उत्पाद व्ययअवस्थाको प्राप्त नहीं होता अपने स्वरूपसे थिर है परंतु चारों ही दिशाओंकी पवन आनेसे कल्लोलोंका उत्पादव्यय होता रहता है तैसे ही जीवद्रव्य अपने स्वभावोंसे उपजता विनशता नहीं है सदा टंकोत्कीर्ण है परंतु वस ही जीवके अनादिकर्मोपाधिके वशसे [illegible] उत्पादव्ययभाव करता है ॥ ५५ ॥ आगे जीवके [illegible] करते हैं—[ये] जो भाव [उदयेन] कर्म-

तत उदयादिसंजातानामात्मनो भावानां निमित्तमात्रभूततथाविधावस्थत्वेन स्वयं परिणमनाद्द्रव्यकमापि व्यवहारनयेनात्मनो भावानां कर्तृत्वमापद्यत इति ॥ ५८ ॥

जीवभावस्य कर्मकर्तृत्वे पूर्वपक्षोऽयम्,—

भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता ।
ण कुणदि अत्ता किंचि वि मुत्ता अण्णं सगं भावं ॥ ५९ ॥

भावो यदि कर्मकृत आत्मा कर्मणो भवति कथं कर्ता ।
न करोत्यात्मा किंचिदपि मुक्त्वान्यं स्वकं भावं ॥ ५९ ॥

यदि खल्वौदयिकादिरूपो जीवस्य भावः कर्मणा क्रियते तदा जीवस्तस्य कर्ता न

योसौ क्षायिको भावः स एव सर्वप्रकारेणोपादेयभूत इति मनसा श्रद्धेयं ज्ञेयं मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालत्यागेन निरंतरं ध्येयमिति भावार्थः ॥ ५८ ॥ इति तेषामेव भावानामनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण कर्म कर्ता भवतीति व्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । एवं निश्चयेन रागादिभावानां जीवः कर्ता पूर्वगाथायां भणितमत्र तु व्यवहारेण कर्म कर्तृ भवतीति स्वतंत्रगाथाद्वयं गतं । अथ जीवस्यैकांतेन कर्मकर्तृत्वे दूषणद्वारेण पूर्वपक्षं करोति;—**भावो जदि कम्मकदो** भावो यदि कर्मकृत: पर्येकांतेन रागादिभावः कर्मकृतो भवति ***आदा कम्मस्स होदि किह कत्ता*** तदात्मा द्रव्यकर्मणः कथं कर्ता भवति यतः कारणाद्रागादिपरिणामाभावे सति द्रव्यकर्म नोत्पद्यते । तदपि कथमितिचेत् । **ण कुणदि अत्ता किंचिवि** न करोत्यात्मा किमपि । किं कृत्वा । **मुत्ता अण्णं सगं भावं** स्वकीयचैतन्यभावं मुक्त्वा पत् द्रव्यकर्मादिकं न करोतीत्यात्मन सर्वथाप्यकर्तृत्वदूषणद्वारेण पूर्वपक्षेऽत्र द्वितीयगाथायां परिहारं इत्येकं व्याख्यानं तावत् द्वितीय

इसकारण इन चारों अवस्थाओंका निमित्त पाकर आत्मा परिणमता है व्यवहारनयसे इन चारों भावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म जानना, निश्चयनयसे आत्मा कर्त्ता जानना ॥ ५८ ॥ आगें सर्वथा प्रकारसे जो जीवभावोंका कर्त्ता द्रव्यकर्म कहा जाय तो दूषण है ऐसा कथन किया जाता है,—[यदि] जो सर्वथा प्रकार [भावः] भावकर्म [कर्मकृतः] द्रव्यकर्मके द्वारा किया होय तो [आत्मा] जीव [कर्मणः] भावकर्मका [कथं] कैसें [कर्त्ता] करनेहारा [भवति] होता है। भावार्थ—जो सर्वथा द्रव्यकर्मको औदयिकादि भावोंका कर्त्ता कहा जाय तो आत्मा अकर्त्ता होकर संसारका अभाव होय और जो कहा जाय कि आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता है इस कारण संसारका अभाव नहीं है सो द्रव्यकर्म पुद्गलका परिणाम है उसको आत्मा कैसें करैगा ? क्योंकि [आत्मा] आत्मद्रव्य जो है सो [स्वकं भावं] अपने भावकर्मको [मुक्त्वा] छोडकर [अन्यत्] अन्य [किंचित् अपि] कुछ भी परद्रव्यसंबंधी भावका [न करोति] नहीं करता है। भावार्थ—सिद्धान्तमें कार्यकी उत्प

भवति । न च जीवस्याकर्तृत्वमिष्यते । तत पारिशेष्येण द्रव्यकर्मण कर्त्ताऽऽपद्यते । तत्तु कथं । यतो निश्चयनयेनात्मा स्वभावमुज्झित्वा नान्यत्किमपि करोतीति ॥ ५९ ॥

पूर्वसूत्रोदितपूर्वपक्षसिद्धान्तोऽयम्,—

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि ।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं ॥ ६० ॥

भावः कर्मनिमित्तः कर्म पुनर्भावकारणं भवति ।
न तु तेषां खलु कर्ता न विना भूतास्तु कर्तारं ॥ ६० ॥

व्याख्यानं पुनरत्रैव पूर्वपक्षोत्तरं परिहारो द्वितीयगाथायां स्थितपक्ष एव । कथमिति चेत् । पूर्वोक्तप्रकारेणात्मा कर्मणां कर्ता न भवतीति दूषणे दत्ते सति सांख्यमतानुसारिशिष्यो वदति । "अकर्ता निर्गुणः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽक्रियः । अमूर्तश्चेतनो भोक्ता जीवः कपिलशासने ॥" इति वचनादस्माकं मते आत्मनः कर्माकर्तृत्वं भूषणमेव न दूषणं । अत्र परिहारः । यथा शुद्धनिश्चयेन रागाद्यकर्तृत्वमात्मनः तथा यद्यशुद्धनिश्चयेनाप्यकर्तृत्वं भवति तदा द्रव्यकर्मबन्धाभावः तदभावे संसाराभावः संसाराभावे सर्वदैव मुक्तप्रसंगः स च प्रत्यक्षविरोध इत्यभिप्रायः ॥५९॥ एवं प्रथमव्याख्याने पूर्वपक्षद्वारेण द्वितीयव्याख्याने पुनः पूर्वपक्षपरिहारद्वारेण गाथा गता । अथ पूर्वसूत्रे आत्मनः कर्माकर्तृत्वे सति दूषणरूपेण पूर्वपक्षस्तस्य परिहारं ददाति द्वितीयव्या

लिये दो कारण कहे हैं । एक 'उपादान' और एक 'निमित्त' । द्रव्यकी शक्तिका नाम उपादान है सहकारी कारणका नाम निमित्त है । जैसें घटकार्यकी उत्पत्तिकेलिये मृत्तिकाकी शक्ति तो उपादान कारण है और कुंभकार दंडचक्रादि निमित्त कारण हैं । इससे निश्चय करकें मृत्तिका (मट्टी) घटकार्यकी कर्त्ता है व्यवहारसे कुंभकार कर्त्ता है क्योंकि निश्चय करकें तो कुंभकार अपने चेतनमयी घटाकार परिणामोंका ही कर्त्ता है व्यवहारसे कुंभकार घटके परिणामोंका कर्त्ता है जहां उपादानकारण है, वहां निश्चय नय है और जहां निमित्तकारण है वहां व्यवहार नय है । और जो यों कहा जाय कि चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता सर्वथा प्रकार निश्चय नयकर घट ही है कुंभकार नहीं है तो अचेतन घट चेतनात्मक घटाकार परिणामोंका कर्त्ता कैसें होय ? चेतनद्रव्य अचेतन परिणामोंका कर्त्ता होय अचेतनद्रव्य चेतनपरिणामोंका कर्त्ता नहीं होता । तैसें ही आत्मा और कर्मोंमें उपादान निमित्तका कथन जानना । इस कारण [illegible] जो यह प्रश्न किया था कि जो सर्वथा प्रकार [illegible] ही भावकर्मोंका कर्त्ता माना जाय तो आत्मा अकर्त्ता होता है [illegible] होता ? इस [illegible] आत्माके भावकर्म [illegible] दश [illegible] संसार होता [illegible] आत्मा [illegible] और परिणामोंका कर्त्ता आत्मा [illegible]

व्यवहारेण निमित्तमात्रत्वाज्जीवभावस्य कर्म कर्तृ, कर्मणोऽपि जीवभावः कर्ता। निश्चयेन तु न जीवभावाना कर्म कर्तृ,न कर्मणो जीवभावः। न च ते¹ कर्तारमन्तरेण सम्भूते। यतो निश्चयेन जीवपरिणामाना जीवः कर्ता, कर्मपरिणामाना कर्म कर्तृ इति ॥ ६० ॥

कुव्वं सगं सहावं अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स।
ण हि पोग्गलकम्माणं इदि जिणवयणं मुणेयव्वं ॥ ६१ ॥

व्याख्यानपक्षे स्थितपक्ष दर्शयति,—भावो निर्मलचिज्ज्योति स्वभावाच्छुद्धजीवास्तिकायात्प्रतिपक्षभूतो भावो मिथ्यात्वरागादिपरिणाम । स च किंविशिष्ट । **कम्मणिमित्त** कर्मोन्यरहितचैतन्यचमत्कारमात्रात्परमात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूत यदुदयागत कर्म तन्निमित्त यस्य स भवति कर्मनिमित्त **कम्म पुण** ज्ञानावरणादिकर्मरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वाद्विलक्षण यद्भावि द्रव्यकर्म पुन । तत्कथभूत। **भावकारण हवदि** निर्विकारशुद्धात्मोपलब्धिभावात्प्रतिपक्षभूतो योसौ रागादिभाव स कारण यस्य तद्भावकारण भवति **ण दु** नैव **तु पुन तेसि** तयोर्जीवगतरागादिभावद्रव्यकर्मणो । किं नैव । **कत्ता** परस्परोपादानकर्तृत्व **खलु** स्फुट **ण विणा** नैव विना **भूदा दु** भूते भवाते तु पुनस्ते द्रव्यभावकर्मणी द्वे। क विना। **कत्तार** उपादानकर्तार विना किंतु जीवगतरागादिभावाना जीव एवोपादानकर्ता द्रव्यकर्मणा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गल एवेति । द्वितीयव्याख्याने तु यद्यपि जीवस्य शुद्धनयेनाकर्तृत्व तथापि विचार्यमाणमशुद्धनयेन कर्तृत्व स्थितमिति भावार्थ ॥ ६० ॥ एव पूर्वगाथाया प्रथमव्याख्यानपक्षे तत्र पूर्वपक्षोत्र पुनरुत्तरमिति गाथाद्वय गत।

उत्तर कहा जाता है,—**[भाव]** औदयिकादि भाव **[कर्मनिमित्त]** कर्मके निमित्त पाकर होते हैं **[पुन.]** फिर **[कर्म]** ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म जो है सो **[भावकारण]** औदयिकादि भावकर्मोंका निमित्त **[भवति]** होता है। **[तु]** और **[तेषां]** तिन द्रव्यकर्म भावकर्मोंका **[खलु]** निश्चय करके **[कर्त्ता न]** आपसमें द्रव्य कर्त्ता नहीं है न पुद्गल भावकर्मका कर्त्ता है और न जीव द्रव्यकर्मका कर्त्ता है **[तु]** और वे द्रव्यकर्म भावकर्म **[कर्त्तारं विना]** कर्त्ताके विना **[नैव]** निश्चय करके नहीं **[भूता]** हुये हैं अर्थात्। वे द्रव्यभावकर्म कर्त्ता विना भी नहीं हुये। **भावार्थ**—निश्चय नयसे जीवद्रव्य अपने चिदात्मक भावकर्मोंका कर्त्ता है और पुद्गलद्रव्य भी निश्चयकरके अपने द्रव्यकर्मका कर्त्ता है व्यवहारनयकी अपेक्षा जीव द्रव्यकर्मके विभाव भावके कर्त्ता हैं। और द्रव्यकर्म जीवके विभावभावोंके कर्त्ता हैं इस प्रकार उपादान निमित्त कारणके भेदसे जीवकर्मका कर्तृत्व निश्चय व्यवहार नयोंकर आगम प्रमाणसे जान लेना। शिष्यने जो पूर्व गाथामें प्रश्न किया था गुरुने इसप्रकार उसका समाधान किया है ॥ ६० ॥ आगे फिर भी दृढ कथनके निमित्त

¹ भावकर्मणी अत्र द्विवचनम्।

कुर्वन् स्वकं स्वभावं आत्मा कर्ता स्वकस्य भावस्य ।
न हि पुद्गलकर्मणामिति जिनवचनं ज्ञातव्यम् ॥ ६१ ॥

निश्चयेन जीवस्य स्वभावानां कर्तृत्वं पुद्गलकर्मणामकर्तृत्वं चागमेनोपदर्शितमत्र इति ॥ ६१ ॥

अथ निश्चयेनाभिन्नकारकत्वात् कर्मणो जीवस्य च स्वयं स्वरूपकर्तृत्वमुक्तम्;—

कम्मं पि सगं कुव्वदि सेण सहावेण सम्ममप्पाणं ।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ॥ ६२ ॥

कर्मापि स्वकं करोति स्वेन स्वभावेन सम्यगात्मानं ।
जीवोऽपि च तादृशकः कर्मस्वभावेन भावेन ॥ ६२ ॥

कर्म खलु कर्मत्वप्रवर्तमानपुद्गलस्कंधरूपेण कर्तृतामनुबिभ्राण कर्मत्वगमनशक्तिरूपेण

अथ तदेव व्याख्यानमागमसंवादेन दृढयति;—कुव्वं कुर्वाणः । कं । सगं सहावं स्वकं स्वभावं चिद्रूपं । अत्र यद्यपि शुद्धनिश्चयेन केवलज्ञानादिशुद्धभावाः स्वभावा भण्यते तथापि कर्मकर्तृत्वप्रस्तावादशुद्धनिश्चयेन रागादयोऽपि स्वभावा भण्यते तान् कुर्वन् सन् अत्ता कत्ता सगस्स भावस्स आत्मा कर्ता स्वकीयभावस्य ण हि पोग्गलकम्माणं नैव पुद्गलकर्मणां हु स्फुटं निश्चयनयेन कर्ता इदि जिणवयणं मुणेदव्वं इति जिनवचनं मन्तव्यं ज्ञातव्यमिति । अत्र यद्यप्यशुद्धभावानां कर्तृत्वं स्थापितं तथापि ते हेयास्तद्विपरीता अनन्तसुखादिशुद्धभावा उपादेया इति भावार्थः ॥ ६१ ॥ इत्यागमसंवादरूपेण गाथा गता । अथ निश्चयनाभेदषट्कारकरूपेण कर्मपुद्गलः स्वकीयस्वरूपं करोति जीवोऽपि तथैवेति प्रतिपादयति,—कम्ममपि सयं कर्मकर्तृ स्वयमपि स्वयमेव कुव्वदि करोति । किं करोति । सम्ममप्पाणं सम्यग्यथा भवत्यात्मानं द्रव्यकर्मस्वभावं । केन कारणभूतेन । सगेण भावेण स्वकीयस्वभावेनाभेदषट्कारकी-

---

आगमप्रमाण दिखाते हैं कि निश्चयकरके जीवद्रव्य अपने भावकर्मोंका ही कर्त्ता है पुद्गलकर्मोंका कर्त्ता नहीं है,—[स्वकं] आत्मीय [स्वभावं] परिणामको [कुर्वन्] करता हुवा [आत्मा] जीवद्रव्य [स्वकस्य] अपने [भावस्य] परिणामोंका [कर्त्ता] करनहारा होता है । [पुद्गलकर्मणां] पुद्गलमयी द्रव्यकर्मोंका कर्ता [हि] निश्चयकरके [न] नहीं है [इति] इस प्रकार [जिनवचनं] जिनेंद्रभगवानकी वाणी [ज्ञातव्यं] जाननी । **भावार्थ**—आत्मा निश्चयकरके अपने भावोंका कर्ता है परद्रव्यका कर्ता नहीं है ॥ ६१ ॥ आगे निश्चयनयसे उपादान-कारणकी अपेक्षा कर्म अपने स्वरूपका कर्ता है ऐसा कथन करते हैं—[कर्म] कर्मरूप परिणये पुद्गलस्कंध [अपि] निश्चयसे [स्वेन स्वभावेन] अपने स्वभावसे [सम्यक्] यथार्थ जिसप्रकार है तैसा [स्वकं] अपने [आत्मानं] स्वरूपको

१ पक्षा

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं ।
किध तस्स फलं भुंजदि अप्पा कम्मं च देदि फलं ॥ ६३ ॥

कर्म कर्म करोति यदि स आत्मा करोत्यात्मानं ।
कथं तस्य फलं भुङ्क्ते आत्मा कर्म च ददाति फलं ॥ ६३ ॥

कर्मजीवयोरन्योन्याकर्तृत्वेऽन्यदत्तफलान्योपभोगलक्षणदूषणपुरःसरः पूर्वपक्षोऽयम् ॥६३॥

अथ सिद्धान्तसूत्राणि,—

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो ।
सुहमेहिं बादरेहिं य णंताणंतेहिं विविहेहिं ॥ ६४ ॥

णाभेदषट्कारकीस्वभावेन परिणममानं शुद्धमात्मानं करोतीति ॥ ६२ ॥ एवमागमसंवादरूपेणाभेदषट्कारकीरूपेण च स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतं । इति समुदायेन गाथाषट्केन तृतीयान्तरस्थलं समाप्तं । अथ पूर्वोक्तप्रकारेणाभेदषट्कारकीव्याख्याने कृते सति निश्चयनयेनेदं व्याख्यानं कृतमिति नयविभागमजानन्सन् गृहीत्वा शिष्यः पूर्वपक्षं करोति,—कम्मं कर्म कर्तृ **कम्मं कुव्वदि जदि** यद्यस्तेन जीवपरिणामनिरपेक्षं सद्द्रव्यकर्म करोति 'जदि' **सो अप्पा करेदि अप्पाणं** यदि च स आत्मात्मानमेव करोति न च द्रव्यकर्म **किध तस्स फलं भुंजदि** कथमेतस्मादकृतकर्मणः फलं भुङ्क्ते । स कः । **अप्पा** आत्मा कर्ता **कम्मं च देदि फलं** जीवेनाकृतं कर्म च कर्तृ कथमात्मने ददाति फलं न कथमपीति ॥ ६३ ॥ चतुर्थस्थले

और न कर्म जीवका कर्ता है ॥६२॥ आगें कर्म और जीवका अन्य कोई कर्ता है और इनको अन्य जीवद्रव्य फल देता है ऐसा जो दूषण है उसकेलिये शिष्य प्रश्न करता है, **[यदि]** जो **[कर्म]** ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्मसमूह है सो **[कर्म]** अपने परिणामको **[करोति]** करता है और जो **[स]** वह संसारी **[आत्मा]** जीवद्रव्य **[आत्मानं]** अपने स्वरूपको **[करोति]** करता है **[तदा]** तब **[तस्य]** उस कर्मका **[फलं]** उदय अवस्थाको प्राप्त हुवा जो फल तिसको **[आत्मा]** जीवद्रव्य **[कथं]** किस प्रकार **[भुङ्क्ते]** भोगता है ? **[च]** और **[कर्म]** ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका कर्म **[फलं]** अपने विपाकको **[कथं]** कैसे] **[ददाति]** देता है । **भावार्थ**—जो कर्म अपने कर्म स्वरूपका कर्ता है और आत्मा अपने स्वरूपका कर्ता है तो आत्मा जडस्वरूप कर्मका कैसें भोगवैगा और कर्म चैतन्यस्वरूप आत्माको फल कैसें देगा निश्चयनयकी अपेक्षा किसीप्रकार न तो कोई कर्म भोगता है और न भुक्तावे है, ऐसा शिष्यने प्रश्न किया तिसका गुरु समाधान करते हैं कि—आप है, जब आत्मा रागी द्वेषी होकर अनादि अविद्यासे परिणमता है तब परस्परसंबंधी सुख दुःख भाव करता है और कर्म फल देता है ऐसा कहते हैं ॥६३॥ आगें शिष्यने जो यह

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चानन्तानन्तैर्विविधैः ॥ ६४ ॥

कर्मयोग्यपुद्गला अञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेन सर्वलोकव्यापित्वाद्यत्रात्मा तत्रानानीता एवावतिष्ठन्त इत्यत्रोक्तम् ॥ ६४ ॥

अन्याकृतकर्मसमुत्पत्तिप्रकारोक्तिरियम्,—

अत्ता कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सभावेहिं ।
गच्छंति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढा ॥ ६५ ॥

पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता । अथ परिहारमुख्यत्वेन गाथासप्तकं । तत्र गाथासु सप्तसु मध्ये पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वमुख्यत्वेन "ओगाढगाढ" इत्यादिपाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्यानोपसंहारमुख्यत्वेन च "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि गाथाद्वयं, तदनंतरं बन्धमुख्यत्वेन मोक्षमुख्यत्वेन च "एवं कत्ता भोत्ता" इत्यादि गाथाद्वयं । एवं समुदायेन परिहारगाथासूत्राणि सप्त । तद्यथा । यथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण केवलज्ञानाद्यनंतगुणपरिणतैः सूक्ष्मजीवैर्निरंतरं लोको भृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपीति निरूपयति;—**ओगाढगाढणिचिदो** अवगाढगाढनिचितः यथा पृथ्वीकायिकादिपंचविधसूक्ष्मस्थावरैरंजनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेनावगाढगाढरूपेण नैरंतर्येण निचितो भृतः । कोसौ । **लोगो** लोकः **पोग्गलकायेहिं** तथा पुद्गलकायैश्च । पुनः । **सव्वदो** सर्वप्रदेशेषु । कथंभूतैः पुद्गलकायैः । **सुहुमेहिं बादरेहिं य** सूक्ष्मैर्दृष्ट्यगोचरैर्बादरैर्दृष्टिविषयैश्च । कतिसंख्योपेतैः । **अणंताणंतेहिं** अनंतानंतैः । किंविशिष्टैः । **विविहेहिं** विविधैरंतर्भेदेन बहुभेदैरिति । अत्र कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यत्रात्मा तिष्ठति तत्रानानीता एव पूर्वं तिष्ठंति बंधकाले पश्चादागमिष्यंतीति । यद्यपि पूर्वं ते तत्रात्मावगाढगाढक्षेत्रे क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठंति तथापि ते हेयास्तेभ्यो भिन्नः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा स एवोपादेय इति भावार्थः ॥ ६४ ॥ अथात्मनो मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला निश्चये

प्रश्न किया है उसका विशेष कथन किया जाता है सो पहिले यह कहते हैं कि कर्मयोग्य पुद्गल समस्त लोकमें भरपूर होकर तिष्ठ हुये हैं,—[लोकः] समस्त त्रैलोक्य [सर्वतः] सब जगहँ [पुद्गलकायैः] पुद्गलस्कंधोंके द्वारा [अवगाढगाढनिचितः] अतिशय भरपूर गाढा भराहुवा है । जैसें कज्जलकी कज्जलदानी अंजनसे भरी होती है उसी प्रकार सर्वत्र पुद्गलोंसे लोक भरपूर तिष्ठता है कैसे हैं पुद्गल? [सूक्ष्मैः] अतिशय सूक्ष्म हैं [च] तथा [बादरैः] अतिशय बादर हैं । फिर कैसे हैं पुद्गल? [अनंतानंतैः] अपरिमाणसंख्या लियेहुये हैं । फिर कैसे हैं पुद्गल? [विविधैः] नाना प्रकारके कर्मवर्गणादि भेद आदि अनेक प्रकारके हैं ॥ ६४ ॥ आगे कहते हैं कि आत्मा कर्मोंकी जाति

[illegible]

आत्मा करोति स्वभावं तत्र गताः पुद्गलाः स्वभावैः ।
गच्छन्ति कर्मभावमन्योन्यावगाहावगाढाः ॥ ६५ ॥

आत्मा हि संसारावस्थायां पारिणामिकचैतन्यस्वभावमपरित्यजन्नेवानादिबन्धनबद्धत्वादनादिमोहरागद्वेषस्निग्धैरविशुद्धैरेव भावैर्विवर्तते । स खलु यत्र यदा मोहरूपं, रागरूपं वा स्वस्य भावमारभते, तत्र तदा तमेव निमित्तीकृत्य जीवप्रदेशेषु परस्परावगाहेनानुप्रविष्टाः स्वभावैरेव पुद्गलाः कर्मभावमापद्यत इति ॥ ६५ ॥

नोपादानरूपेण स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्तीति प्रतिपादयति,—अत्ता आत्मा कुणदि करोति । कं करोति । सहावं स्वभावं रागद्वेषमोहसहितं परिणामं । ननु रागद्वेषमोहरहितो निर्मलचिज्ज्योतिःसहितश्च वीतरागानन्दरूपः स्वभावपरिणामो भण्यते रागादिविभावपरिणाम कथं स्वभावशब्देनाभ्यत इति पारिहारमाह—बन्धप्रकरणवशादशुद्धनिश्चयेन रागादिविभावपरिणामोऽपि स्वभावो भण्यते इति नास्ति दोषः । तत्थ गदा तत्रामशरीरावगाढक्षेत्रे गताः स्थिताः । के ते । पोग्गला कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धाः गच्छंति कम्मभावं गच्छन्ति परिणमन्ति कर्मपर्यायं द्रव्यकर्मपर्याय । कैः करणभूतैः । सहावेहिं निश्चयेन स्वकीयोपादानकारणैः । कथं गच्छन्ति । अण्णोण्णागाह अन्योन्यावगाहसंबंधो यथा भवति । कथंभूताः सन्तः । अवगाढा क्षीरनीरन्यायेन संश्लिष्टा इत्यभिप्रायः ॥ ६५ ॥ अथ कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला यथा

नहीं है जब रागादि भावोंसे आत्मा परिणमता है तब पुद्गलका बंध होता है,—[आत्मा] जीव [स्वभावं] अशुद्ध रागादि विभाव परिणामोंको [करोति] करता है [तत्र गताः पुद्गलाः] जहां जीवद्रव्य तिष्ठता है तहां वर्गणारूप पुद्गल तिष्ठते हैं वे [स्वभावैः] अपने परिणामोंके द्वारा [कर्मभावं] ज्ञानावरणादि अष्टकर्मरूप भावको [गच्छन्ति] प्राप्त होते हैं । कैसे हैं वे पुद्गल ? [अन्योन्यावगाहावगाढाः] परस्पर एक क्षेत्र अवगाहना करके अतिशय गाढ भर रहे हैं ।
भावार्थ—यह आत्मा संसार अवस्थामें अनादि कालसे लेकर परद्रव्यके संबंधसे अशुद्ध चेतनात्मक भावोंसे परिणमता है वही आत्मा जब मोहरागद्वेषरूप अपने विभाव भावोंसे परिणमता है, तब इन भावोंका निमित्त पाकर पुद्गल अपनी ही उपादान शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मभावोंसे परिणमता है—तत्पश्चात् जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक क्षेत्रावगाहनारूप बंधते हैं इससे यह बात सिद्ध हुई कि पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मोंका निमित्त पाकर जीव अपनी अशुद्ध चेतनाशक्तिद्वारा रागादि भावोंका कर्ता होता है तब [illegible] भावोंका निमित्त पाकर अपनी शक्तिसे अष्टप्रकार कर्मोंका कर्ता होता है [illegible] निमित्त मात्र कर्ता है उपादान कर्ता अपना है । ६५ । आगे कर्मोंकी

अनन्यकृतत्वं कर्मणां वैचित्र्यस्यात्रोक्तम्,—

जह पुग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खधणिव्वत्ती ।
अकदा परेहिं दिट्ठा तह कम्माणं वियाणाहि ॥ ६६ ॥

यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कन्धनिर्वृत्तिः ।
अकृता परैर्दृष्टा तथा कर्मणां विजानीहि ॥ ६६ ॥

यथा हि स्वयोग्यचन्द्रार्कप्रभोपलम्भे सन्ध्याभ्रेन्द्रचापपरिवेषप्रभृतिभिर्बहुभिः प्रकारैः पुद्गलस्कन्धविकल्पाः कर्त्रंतरनिरपेक्षा एवोत्पद्यन्ते । तथा स्वयोग्यजीवपरिणामोपलम्भे ज्ञानावरणप्रभृतिभिर्बहुभिः[1] प्रकारैः कर्माण्यपि कर्त्रंतरनिरपेक्षाण्येवोत्पद्यन्ते इति ॥ ६६ ॥

निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तृत्वेऽपि व्यवहारेण कर्मदत्तफलोपलम्भो जीवस्य न विरुध्यत इत्यत्रोक्तम्,—

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा ।
काले विजुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजंति ॥ ६७ ॥

स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति तथा दृष्टान्तमाह,—**जह पोग्गलदव्वाणं बहुप्पयारेहिं खदणिप्पत्ती अकदा परेहिं दिट्ठा** यथा पुद्गलद्रव्याणां बहुप्रकारैः स्कन्दनिष्पत्तिरकृता परैर्दृष्टा **तह कम्माणं वियाणाहि** तथा कर्मणामपि विजानीहि हे शिष्य त्वमिति । तथाहि । यथा चन्द्रार्कप्रभोपलम्भे सति अभ्रसन्ध्यारागेन्द्रचापपरिवेषादिभिर्बहुभिः प्रकारैः परेणाकृता अपि स्वयमेव पुद्गलाः परिणमन्ति लोके तथा विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणभावनारूपाभेदरत्नत्रयात्मककारणसमयसाररहितानां जीवानां मिथ्यात्वरागादिपरिणामे सति कर्मवर्गणायोग्यपुद्गला जीवेनोपादानकारणभूतेनाकृता अपि स्वकीयोपादानकारणैः कृत्वा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिरूपैर्बहुभेदैः परिणमन्ति इति भावार्थः ॥ ६६ ॥ एवं पुद्गलस्य स्वयमुपादानकर्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथाहृतकर्मणः कथं फलं भुक्तं जीव

विचित्रताके उपादानकारणसे अन्यद्रव्य कर्त्ता नहीं है पुद्गलही है ऐसा कथन करते हैं,-[**यथा**] जैसें [[**पुद्गलद्रव्याणां**] पुद्गलद्रव्योंके [**बहुप्रकारैः**] नानाप्रकारके भेदासे [**स्कंधनिर्वृत्तिः**] स्कंधोंकी परणति [**दृष्टा**] देखी जाती है कैसी है स्कंधोंकी परणति ? [**परैः**] अन्यद्रव्योंके द्वारा [**अकृता**] नहीं कियीहुई अपनी शक्तिसे उत्पन्नहुई है [**तथा**] तैसें ही [**कर्मणां**] कर्मोंकी विचित्रता [**विजानीहि**] जानो । **भावार्थ**—जैसें चद्रमा वा सूर्यकी प्रभाका निमित्त पाकर सन्ध्याके समय आकाशमें अनेक वर्ण, बादल, इंद्रधनुष, मंडलादिक नाना प्रकारके पुद्गलस्कंध अन्यकर्ता विना किये ही अपनी शक्तिसे अनेक प्रकार होकर परिणमते हैं, तैसें ही जीवद्रव्यके अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका निमित्त पाकर पुद्गलवर्गणायें अपनी ही शक्तिसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकार कर्मदशारूप होकर परिणमती हैं ॥ ६६ ॥ आगें निश्चयनयकी अपेक्षा यद्यपि जीव और पुद्गल अपने भावोंके कर्त्ता हैं तथापि व्यवहारसे कर्मद्वारा

---

१ ज बहुभिः[illegible] । २ उपादानकारण निज[illegible]

जीवाः पुद्गलकायाः अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः ।
काले वियुज्यमानाः सुखदुःखं ददति भुञ्जन्ति ॥ ६७ ॥

जीवा हि मोहरागद्वेषस्निग्धत्वात्पुद्गलस्कन्धाश्च स्वभावस्निग्धत्वाद्बन्धावस्थायां परमाणुद्वन्द्वानीवान्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धत्वेनावतिष्ठन्ते । यदा तु ते परस्परं वियुज्यन्ते, तदोदितप्रच्यवमाना निश्चयेन सुखदुःखरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेणेष्टानिष्टविषयाणां निमित्तमात्रत्वात्पुद्गलकायाः सुखदुःखरूपं फलं प्रयच्छन्ति । जीवाश्च निश्चयेन निमित्तमात्रभूतद्रव्यकर्मनिर्वर्तितसुखदुःखस्वरूपात्मपरिणामानां व्यवहारेण द्रव्यकर्मो-

---

इति योगा द्रव्यरूपं कर्म परस्परभोक्तृत्वविषये नयविभागेन युक्तं दर्शयति,—जीवा पोग्गलकाया जीवकायाः पुद्गलकायाश्च । कथंभूताः । अण्णोण्णागाढगहणपडिबद्धा अन्योन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः स्वकीयस्वकीयरागादिस्निग्धरूक्षादिपरिणामनिमित्तेन पूर्वमेवान्योन्यावगाहेन संश्लिष्टरूपेण प्रतिबद्धास्तत्र तिष्ठन्ति तावत् काले विजुज्जमाणा उदयकाले स्वकीयफलं दत्वा वियुज्यमाना निर्जरां गच्छन्तः । किं कुर्वन्ति । दिति निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावजीवस्य मिथ्यात्वरागादिभिः सहैकत्वरुचिरूपं मिथ्यात्वं तैरेव सहैकत्वप्रतिपत्तिरूपं मिथ्याज्ञानं तदेवैकत्व-परिणतिरूपं मिथ्याचारित्रमिति मिथ्यात्वादित्रयपरिणतजीवानां पुद्गलाः कर्तारो ददति प्रयच्छन्ति । किं ददति । सुहदुक्खं अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विपरीतं परमाकुलत्वोत्पादकमभ्यन्तरे निश्चयेन हर्षविषादरूपं व्यवहारेण पुनर्बहिर्विषये विविधेष्टानिष्टेन्द्रियविषयप्राप्तिरूपं कटुकविपर-

---

दिये हुये सुखदुःखके फलको जीव भोगता है यह कथन भी विरोधी नहीं है ऐसा कहते हैं,— [जीवा] जीवद्रव्य हैं वे [पुद्गलकायाः] पुद्गलवर्गणाके पुञ्ज [अन्योऽन्यावगाढग्रहणप्रतिबद्धाः] परस्पर अनादि कालसे लेकर अत्यंत सघन मिलापसे बंध अवस्थाको प्राप्त हुए हैं । वे ही जीव पुद्गल [काले] उदयकाल अवस्थामें [वियुज्यमानाः] अपना रस देकर खिरते हैं तब [सुखदुःखं] साता असाता [ददति] देते हैं और [भुञ्जन्ति] भोगते हैं । भावार्थ—जीव जो हैं वे पूर्वबंधसे मोहराग द्वेषरूप भावोंसे स्निग्धरूप हैं और पुद्गल अपने स्वभावसे ही स्निग्धरूक्षपरिणामोंद्वारा प्रवर्तता है । आगमप्रमाणमें गुण अंशकर जैसी कुछ बंधअवस्था कही गई है, उस ही प्रकार अनादिकालसे लेकर आपसमें बंध रहे हैं । और जब फलकाल आता है तब पुद्गल कर्मवर्गणायें जीवके जो बंधरहीं हैं वे सुखदुःखरूप होतीं हैं निश्चयकर आत्माके परिणामोंको निमित्त मात्र सहाय है व्यवहारकर शुभअशुभ जो बाह्यपदार्थ हैं उनको भी कर्म निमित्त कारण हैं सुखदुःखफलको देते हैं । और जीव जो हैं वे अपने

दयापादितेणनिष्टविषयाणां भोक्तृत्वात्तथाविध फल भुङ्क्ते इति । एवं जीवस्य भोक्तृत्वगुणोऽपि व्याख्यातः ॥ ६७ ॥

कर्तृत्वभोक्तृत्वव्याख्योपसंहारोऽयम्,—

तम्हा कम्मं कत्ता भावेण हि संजुदोध जीवस्स ।
भोत्ता हु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं ॥ ६८ ॥

तस्मात्कर्म कर्तृ भावेन हि संयुतमथ जीवस्य ।
भोक्ता तु भवति जीवश्चेतकभावेन कर्मफलम् ॥ ६८ ॥

तत एतत् स्थितं निश्चयेनात्मनः कर्म कर्तृ, व्यवहारेण जीवभावस्य । जीवोऽपि निश्चयेनात्मभावस्य कर्ता व्यवहारेण कर्मण इति । यथात्रोभयनयाभ्यां कर्म कर्तृ, तथैकेनापि नयेन न भोक्तृ । कुतः चैतन्यपूर्वकानुभूतिसद्भावाभावात् । ततश्चेतनत्वात्केवल

साक्षाद्स्वभाव सांसारिकसुखदुःखं भुजति वीतरागपरमाह्लादैकरूपसुखामृतरसास्वादमोचन रहिता जीवा निश्चयेन भावरूपं व्यवहारेण द्रव्यरूपं भुजते सेवन्त इत्यभिप्रायः ॥ ६७ ॥ एवं भोक्तृत्वव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ कर्तृत्वभोक्तृत्वोपसंहारः कथ्यते;—**तम्हा** यस्मात्पूर्वोक्तनयविभागेन जीवकर्मणोः परस्परोपादानकर्तृत्वं नास्ति तस्मात्कारणात् **कम्म कत्ता** कर्म कर्तृ भवति । केषां । निश्चयेन स्वकीयभावानां व्यवहारेण रागादिजीवभावानां जीवोपि व्यवहारेण द्रव्यकर्मभावानां निश्चयेन स्वकीयचेतकभावानां । कथंभूतं सत्कर्म स्वकीयभावानां कर्तृ भवति । **संजुदा** संयुक्तं **अध** अथो । केन संयुक्तं । **भावेण** मिथ्यात्वरागादिभावेन परिणामेन **जीवस्स** जीवस्य जीवोपि कर्मभावेन संयुक्त इति **भोत्ता दु** भोक्ता पुनः **हवदि** भवति । कोसौ । **जीवो** निर्विकारचिदानंदैकानुभूतिरहितो जीवः । केन कृत्वा । **चेदग**

निश्चयकर तो सुखदु खरूप परिणामोंके भोक्ता हैं और व्यवहार कर द्रव्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुये जो शुभअशुभ पदार्थ तिनको भोगवे हैं । जीवमें भोगनेका गुण है कर्ममें यह गुण नहीं है क्योंकि कर्म जड है जडमें अनुभवनशक्ति नहीं है ॥ ६७ ॥ आगे कर्तृत्व भोक्तृत्वका व्याख्यान संक्षेपमात्र कहा जाता है,—**[तस्मात्]** तिस कारणसे **[हि]** निश्चयकरके **[कर्म]** द्रव्यकर्म जो है सो **[कर्ता]** अपने परिणामोंका कर्त्ता है। कैसा है द्रव्यकर्म ? **[जीवस्य]** आत्मद्रव्यका **[भावेन]** अशुद्ध चेतनात्मपरिणामोंकर **[संयुत]** संयुक्त है। भावार्थ–द्रव्यकर्म अपने ज्ञानावरणादिक परिणामोंका उपादानरूप कर्त्ता है और आत्माके अशुद्ध चेतनात्मक परिणामोंको निमित्त मात्र है । इस कारण व्यवहारकर जीव भावोंका भी कर्त्ता कहा जाता है **[अथ]** फिर इसी प्रकार जीवद्रव्य अपने अशुद्ध चेतनात्मक भावोंका उपादानरूप

१ स्वकीयस्य ।

येन समुच्छिन्नसम्यग्ज्ञानज्योति कर्तृत्वभोक्तृत्वाधिकार परिसमाप्य सम्यक्प्रकटितप्रभुत्वशक्तिर्ज्ञानस्यैवानुमार्गेण चरति, तदा विशुद्धात्मतत्वोपलम्भनरूपमपवर्गनगर विगाहत इति ॥ ७० ॥

अथ जीवविकल्पा उच्यते,—

एको चेव महप्पा सो दुवियप्पो त्तिलक्खणो होदि ।
चदु चकमणो भणिदो पचग्गगुणप्पधाणो य ॥ ७१ ॥
छक्कापक्कमजुत्तो उवउत्तो सत्तभङ्गसब्भावो ।
अट्ठासओ णवत्थो जीवो दसट्ठाणगो भणिदो ॥ ७२ ॥ जुम्म ।

एक एव महात्मा स द्विविकल्पस्त्रिलक्षणो भवति ।
चतुश्चक्रमणो भणित पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च ॥ ७१ ॥

गच्छति । कि । णिव्वाणपुर अव्याबाधसुखाद्यनतगुणास्पद शुद्धात्मोपलम्भलक्षण निर्वाणनगर । पुनरपि किविशिष्ट स भव्य । धीरो धीर घोरोपसर्गपरीषहकालेपि निश्चयरत्नत्रयलक्षणसमाधेरच्युत पाण्डवादिवदिति भावार्थ ॥ ७० ॥ इति कर्मरहितत्वव्याख्यानेन द्वितीयगाथा गता । एव 'ओगाढगाढ" इत्यादि पूर्वोक्तपाठक्रमेण परिहारगाथासप्तक गत । इति जीवास्तिकायव्याख्यानरूपेषु प्रभुत्वादिनवाधिकारेषु मध्ये पचभिरतरस्थलै समुदायेन "जीवा अणाइणिहणा" इत्याद्यष्टादशगाथाभि कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसयुक्तत्वत्रयस्य यौगपद्यव्याख्यान समाप्त । अथ तस्यैव नवाधिकारकथितजीवास्तिकायस्य पुनरपि दशविकल्पैर्विंशतिविकल्पैर्वा विशेषव्याख्यान करोति,—एक्को चेव महप्पा सर्वसुवर्णसाधारणेन षोडशवर्णिकगुणेन यथा सुवर्णराशिरेक तथा सर्वजीवसाधारणकेवलज्ञानाद्यनतगुणसमूहेन शुद्धजीवजातिरूपेण सग्रहनयेनैकश्चैव महात्मा अथवा उवजुत्तो सर्वजीवसाधारणलक्षणेन केवलज्ञानदर्शनोपयोगेनोपयुक्तत्वात्परिणतत्वादेक । कश्चिदाह । यथैकोपि चद्रमा बहुषु जलघटेषु भिन्नभिन्नरूपो दृश्यते तथैकोपि

प्रत्यक्ष ज्ञानमार्गमें प्रवर्त्तता है । भावार्थ—जो जीव काललब्धि पाकर अनादि अविद्याको विनाशकरकें यथार्थ पदार्थोंकी प्रतीतिमें प्रवर्ते है प्रगट भेदविज्ञान ज्योतिकर कर्तृत्वभोक्तृत्वरूप अधकारको विनाशकर आत्मीकशक्तिरूप अनतस्वाधीन धर्म्से स्वरूपमें प्रवर्ते है सो जीव अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त होकर मोक्ष अवस्थाको पाता है ॥७०॥ आगें जीवद्रव्यके भेद कहते हैं,—[स जीव] यह जीवद्रव्य [महात्मा] अविनाशी चैतन्य उपयोगसयुक्त है इस कारण [एक एव] सामान्य नयसे एक ही है । जो जो जीव है सो चेतनास्वरूप है इस कारण जीव एक ही कहा जाता है वह ही जीवद्रव्य [द्विविकल्प] ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकार भी कहा

१ निराकुल ।

पट्कापक्रमयुक्त उपयुक्त: सप्तभङ्गसद्भाव ।
अष्टाश्रयो नवार्थो जीवो दशस्थानको भणित ॥ ७२ ॥ युग्मम् ।

स खलु जीवो महात्मा नित्यचैतन्योपयुक्तत्वादेक एव । ज्ञानदर्शनभेदाद्विविकल्प । कर्मफलकार्यज्ञानचेतनाभेदेन लक्ष्यमाणत्वात्त्रिलक्षण । ध्रौव्योत्पादविनाशभेदेन वा चतसृषु गतिषु चङ्क्रमणत्वाच्चतुश्चङ्क्रमण । पञ्चभि पारिणामिकौदयिकादिभिरग्रगुणै प्रधानत्वात् पञ्चाग्रगुणप्रधान । चतसृषु दिक्षूर्ध्वमधश्चेति भवान्तरसङ्क्रमणषट्केनापक्रमेण युक्तत्वात् षट्कापक्रमयुक्त । अस्तिनास्त्यादिभि सप्तभङ्गै सद्भावो यस्येति सप्तभङ्गसद्भाव ।

जीवो बहुशरीरेषु भिन्नभिन्नरूपेण दृश्यत इति । परिहारमाह । बहुषु जलघटेषु चन्द्रकिरणो पाधिवशेन जलपुद्गला एव चन्द्राकारेण परिणता न चाकाशस्थचन्द्रमा । अत्र दृष्टान्तमाह । यथा देवदत्तमुखोपाधिवशेन नानादर्पणाना पुद्गला एव नानामुखाकारेण परिणमन्ति न च देवदत्तमुख नानारूपेण परिणमति यदि परिणमति तदा दर्पणस्थ मुखप्रतिबिंब चैतन्य प्राप्नोति न च तथा तथैकचन्द्रमा अपि नानारूपेण न परिणमतीति । किं च । न चैकब्रह्मनामा कोपि दृश्यते प्रत्यक्षेण यश्चन्द्रवन्नानारूपेण भविष्यति इत्यभिप्राय **सो दुवियप्पो** दर्शनज्ञानभेदद्वयेन संसारिमुक्तद्वयेन भव्याभव्यद्वयेन वा स द्विविकल्प **तिलक्खणो हवदि** ज्ञानकर्मकर्मफल- चेतनात्रयेणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण ज्ञानदर्शनचारित्रत्रयेण द्रव्यगुणपर्यायत्रयेण वा त्रिलक्षणो भवति **चदुसंकमो य भणिदो** यद्यपि शुद्धनिश्चयनयेन निर्विकारचिदानन्दैकलक्षणसिद्धगतिस्वभाव- स्तथापि व्यवहारेण मिथ्यात्वरागादिपरिणत सन्नरकादिचतुर्गतिसंक्रमणो भणित **पचग्गगुण प्पहाणो य** यद्यपि निश्चयेन क्षायिकशुद्धपारिणामिकभावद्वयलक्षणस्तथापि सामान्येनौदयिका- दिपञ्चाग्रगुणप्रधानश्च ॥ **छक्कावक्कमजुत्तो** षट्केनापक्रमेण युक्त अस्य वाक्यस्यार्थ कथ्यते- अपगतो विनष्ट विरुद्धक्रम प्राञ्जलत्व यत्र स भवत्यपक्रमो वक्र इति ऊर्ध्वाधोमहादिक्चतुष्टय- गमनरूपेण षड्विधेनापक्रमेण मरणान्ते युक्त इत्यर्थ सा चैवानुश्रेणिगतिरिति **सत्तभंगस ब्भावो** स्यादस्तीत्यादि सप्तभङ्गीसद्भाव **अट्ठासवो** यद्यपि निश्चयेन वीतरागलक्षणनिश्चयस

जाता है । फिर वह ही जीवद्रव्य **[त्रिलक्षणः]** कर्मचेतना कर्मफलचेतना ज्ञान चेतना इन तीन भेदोंकर सयुक्त होनेसे तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुण सयुक्त होनेसे तीन प्रकार भी **[भवति]** होता है । फिर वह ही जीवद्रव्य **[चतुश्चक्रमणो भणित.]** चार गतियोंमें परिभ्रमण करता है इस कारण चार प्रकारभी कहा जाता है । फिर वह ही जीव **[पञ्चाग्रगुणप्रधानश्च]** पाच औदयिकादि भावोंकर सयुक्त है इसकारण पाचप्रकारका भी कहा जाता है फिर वह ही जीवद्रव्य **[षट्काप क्रमयुक्त]** छह दिशावोंमें गमनकरनेवाला है चार तो दिशायें और एक ऊपर एक नीचा इन छह दिशाओंके भेदसे छहप्रकारका भी है । फिर वही जीव **[सप्तभङ्गस द्भाव. उपयुक्त]** सप्तभङ्गी वाणीसे साधा जाता है इस कारण सात प्रकारभी

अष्टानां कर्मणां गुणानां वा आश्रयत्वादष्टाश्रयः । नवपदार्थरूपेण वर्तनान्नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिसाधारणप्रत्येकद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरूपेषु दशसु स्थानेषु गतत्वाद्दशस्थानग इति ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को ।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसावज्जं गदिं जंति ॥ ७३ ॥

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः सर्वतो मुक्तः ।
ऊर्ध्वं गच्छति शेषा विदिग्वर्जां गतिं याति ॥ ७३ ॥

म्यनवाद्यष्टगुणाश्रयत्वादष्टाश्रयस्तथापि व्यवहारेण ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मास्रव **णवट्ठो** यद्यपि निर्विकल्पसमाधिस्थानां निश्चयेन सर्वजीवसाधारणत्वेनाखंडैकज्ञानरूपं प्रतिभाति तथापि व्यवहारेण नानावर्णिकागतसुखाद्यनवपदार्थरूपं **दह ठाणिओ भणियो** यद्यपि निश्चयेन शुद्धबुद्धैकलक्षणस्तथापि व्यवहारेण पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणवनस्पतिद्वित्रिचतुःपञ्चेन्द्रियरूपदशस्थानगतः । स एव । **जीवो** जीवपदार्थ एव दशविकल्परूपो भवति । अथवा द्वितीयव्याख्यानेन पृथग्भिन्नानि दशस्थानानि उपयुक्तपदस्य पृथग्व्याख्याने कृते सति तान्यपि दशस्थानानि भवन्तीत्युभयसंचारणेन विशेषः स्यादिति भावार्थः ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अथ मुक्तस्योर्ध्वगतिः संसारिणां मरणकाले षड्गतय इति प्रतिपादयति;—**पयडिट्ठिदि अणुभाग पदेसबंधेहिं सव्वदो मुक्को** प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैर्विभावरूपैः समस्तरागादिविभावरहितेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षणध्यानबलेन सर्वतो मुक्तोपि **उड्ढं गच्छदि** स्वाभाविकानन्तज्ञानादिगुणैर्युक्तः सन्नेकसमयलक्षणाविग्रहगत्योर्ध्वं गच्छति शेषाः संसारिणो जीवाः **विदिसावज्जं गदिं**

कहा जाता है । फिर वही जीव [**अष्टाश्रय.**] आठ सिद्धोंके गुण अथवा आठकर्म के आश्रय होनेसे आठ प्रकारका भी है । फिर वही जीव [**नवार्थ**] नव पदार्थोंके भेदोंसे नव प्रकारका भी है । फिर वही जीवद्रव्य [**दशस्थानक**] पृथिवीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, प्रत्येक, साधारण, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय इस प्रकार दशभेदोंसे दशप्रकार भी [**भणित**] कहा गया है ॥७१॥७२॥

आगे कहते हैं कि जो जीव मुक्त होय तो उसकी ऊर्ध्वगति होती है और जो अन्य जीव हैं ते छहों दिशाओंमें गति करते हैं । [**प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधैः**] प्रकृतिबंध स्थितिबंध अनुभागबंध प्रदेशबंध इन चार प्रकारके बंधोंसे [**सर्वतः**] सर्वांग असंख्यातप्रदेशोंसे [**मुक्तः**] जो जीव छूटा है [**ऊर्ध्वं**] सिद्धक्षेत्रको गमन करता है **भावार्थ**—जो जीव अष्टकर्मरहित होता है सो एक ही समयमें अपने ऊर्ध्वगतिस्वभावसे लोकके अंतपर्यन्त सिद्धस्थानमें जाता है [**शेषाः**] अन्य बाकीके संसारी जीव हैं ते [**विदिग्वर्जां**] विदिशाओंको छोड़कर अर्थात्

बद्धजीवस्य षड्गतयः कर्मनिमित्ताः । मुक्तस्याप्यूर्ध्वगतिरेका स्वाभाविकीत्यत्रोक्तम् ॥७३॥
इति जीवद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् । अथ पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।
पुद्गलद्रव्यविकल्पादेशोऽयम् ।

खधा य खधदेसा खधपदेसा य होंति परमाणू ।
इदि ते चदुव्वियप्पा पुग्गलकाया मुणेयव्वा ॥ ७४ ॥

स्कधाश्च स्कधदेशाः स्कधप्रदेशाश्च भवन्ति परमाणवः ।
इति ते चतुर्विकल्पाः पुद्गलकाया ज्ञातव्याः ॥ ७४ ॥

पुद्गलद्रव्याणि हि कदाचित् स्कधपर्यायेण, कदाचित् स्कधदेशपर्य्यायेण, कदाचित्

जति मरणान्ते विदिग्वर्ज्यां पूर्वोक्तषट्कापक्रमलक्षणमनुश्रेणिसज्ञां गतिं गच्छन्ति इति । अत्र गाथासूत्रे "सदसिव सखो मडडि बुद्धो णइयाइगो य वइसेसा । ईसर मस्करि पूरण विदूसणट्ठ कय अट्ठ" इति गाथोक्ताष्टमतातरनिषेधार्थ "अट्ठविहकम्मवियला सीदीभूदा णिरजणा णिच्चा । अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा" इति द्वितीयगाथोक्तलक्षण सिद्धस्वरूपमुक्तमित्य भिप्राय ॥ ७३ ॥ इति जीवास्तिकायसबधे नवाधिकाराणा चूलिकाव्याख्यानरूपेण गाथात्रय ज्ञातव्य । एव पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवोत्ति हवदि चेदा" इत्यादि नवाधिकारसूचनार्थं गाथैका, प्रभुत्वमुख्यत्वेन गाथाद्वय, जीवत्वकथनेन गाथात्रय, स्वदेहप्रमितिरूपेण गाथाद्वय, अमूर्तगुण-ज्ञापनार्थं गाथात्रय, त्रिविधचेतनत्वकथनेन गाथाद्वय, तदनतर ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयज्ञापनार्थं गाथा एकोनविंशति, कर्तृत्वभोक्तृत्वकर्मसयुक्तत्वत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथा अष्टादश, चूलिका रूपेण गाथात्रयमिति समुदायेन त्रिपचाशद्गाथाभि पचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये जीवास्तिकायनामा 'चतुर्थोन्तराधिकार' समाप्त । अथानतर चिदानदैकस्वभावशुद्धजीवास्तिकायाद्भिन्न हेयरूपे पुद्गलास्तिकायाधिकारे गाथादशक भवति । तद्यथा । पुद्गलस्कधव्याख्यानमुख्यत्वेन "खधा य खधदेसा" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टय, तदनतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथापचक, तत्र पचकमध्ये परमाणुस्वरूपकथनेन "सव्वेसिं खधाण" मित्यादिगाथासूत्रमेक, अथ परमाणूना पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणार्थं "आदेसमत्त" इत्यादि सूत्रमेक, तदनतर शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनमुख्यत्वेन "सद्दो खधप्पभवो" इत्यादि सूत्रमेक, अथ परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारेण समयादिव्यवहारकालमुख्यत्वेन एकत्वादिनिरूपणा

पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ये चार दिशा और ऊर्द्ध तथा अध इन छहों दिशाओंमें [गतिं] गतिको [यान्ति] करते हैं । भावार्थ—जो जीव मोक्षगामी हैं तिनको छोड़कर अन्य जितने जीव हैं वे समस्त छहों दिशाओंमें अनुश्रेणि गतिको धारण करते हैं पर विदिशाओंमें इनकी गति नहीं होती ॥ ७३ ॥

यह जीवद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ ।

आगे पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान करते हैं जिसमें प्रथम ही पुद्गलके भेद कहे

स्कधप्रदेशपर्य्यायेण, कदाचित् परमाणुत्वेनात्र तिष्ठन्ति । नान्यागतिरस्ति । इति तेषा चतुर्विकल्पत्वमिति ॥ ७४ ॥

पुद्गलद्रव्यविकल्पनिर्देशोयम्,—

खंध सयलसमत्थं तस्स दु अद्ध भणंति देसोत्ति ।
अद्धद्ध च पदेशो परमाणू चेव अविभागी ॥ ७५ ॥

स्कध' सकलसमस्तम्य त्वर्धं भणन्ति देश इति ।
अर्द्धार्द्ध च प्रदेश परमाणुश्चैवाविभागी ॥ ७५ ॥

अनतानंतपरमाण्वारब्धोऽप्येक स्कधनाम पर्य्याय' । तदर्धं स्कधदेशो नाम पर्य्याय ।

कथनेन च "णिद्धो णाणत्तगासो" इत्यादि सूत्रमेकं, तदनतरं परमाणुद्रव्यं रसवर्णादिव्याख्या-नमुख्यत्वेन "एयरस वण्ण" इत्यादि गाथासूत्रमेक, एव परमाणुद्रव्यप्ररूपणद्वितीयस्थले समुदायेन गाथापचक गत । अथ पुद्गलास्तिकायोपसहाररूपेण "उवभोज्ज" इत्यादि सूत्रमेक । एव गाथादशकपर्यंत स्थलत्रयेण पुद्गलाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा । पुद्गलद्रव्यविकल्प-चतुष्टय कथ्यते;—खंदा य खंददेसा खंदपदेसा य होंति स्कदा स्कंददेशा स्कद-प्रदेशाश्चेति त्रय स्कदा भवन्ति **परमाणू** परमाणवश्च भवन्ति **इदि ते चदुव्वियप्पा पोग्गलकाया मुणेदव्वा** इति स्कदत्रय परमाणवश्चेति भेदेन चतुर्विकल्पास्ते पुद्गलकाया ज्ञातव्या इति । अत्रोपादेयभूतानतसुखरूपाच्छुद्धजीवास्तिकायाद्विलक्षणत्वाद्धेयतत्त्वमिदमिति भावार्थ ॥ ७४ ॥ अथ पूर्वोक्तस्कदादिचतुर्विकल्पानां प्रत्येकलक्षण कथयति;—**खंद सय-लसमत्थं तस्स दु अद्ध भणंति देसोत्ति अद्धद्ध च पदेसो** सकलसमस्तलक्षण स्कदो भवति तदर्धलक्षणो देशो भवति अर्द्धार्द्धलक्षण प्रदेशो भवति । तथाहि—समस्तोपि विवक्षित

जाते हैं। [स्कधा] एक पुद्गल पिंड तो स्कध जातिके हैं [च] और [स्कध-देशा] दूसरे पुद्गलपिंड स्कधदेश नामके हैं [च] तथा [स्कधप्रदेशा] एक पुद्गल स्कधप्रदेश नामके हैं और एक पुद्गल [परमाणव] परमाणु जातिके [भवन्ति] होते हैं [इति] इस प्रकार [ते] वे पूर्वमें कहेहुये [पुद्गल-काया'] पुद्गलकाय जे हैं ते [चतुर्विकल्पा] चार प्रकारके [ज्ञातव्या'] जानने योग्य हैं। भावार्थ—पुद्गलद्रव्यका चार प्रकार परिणमन है । इन चार प्रकारके पुद्गल परिणामोंके सिवाय और कोई भेद नहीं हैं। इनके सिवाय अन्य जो कोई भेद हैं व इन चारों भदोंमें ही गर्भित हैं ॥ ७४ ॥ आगें इन चार प्रकार पुद्गलोंका लक्षण कहते हैं । [स्कध'] पुद्गलकाय जो स्कध भेद हैं सो [सकलसमस्त] अनत समस्त परमाणुवोंका मिलकर एक पिंड होता है [तु] और [तस्य] उस पुद्गल स्कंधका [अर्द्ध] अर्द्धभाग [देश इति] स्कधदेश नामका [भणन्ति] अरहतदेव कहते हैं [च] फिर [अर्द्धार्द्ध] तिस स्कधके आधका आधा चौथाई भाग [स्कधप्रदेश']

१ साकं ।

च बादरसूक्ष्मत्वपरिणामविकल्पैः षट्प्रकारतामापद्य त्रैलोक्यरूपेण निष्पद्य स्थितवन्त इति । तथाहि—बादरबादरा, बादरा, बादरसूक्ष्मा, सूक्ष्मबादरा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मसूक्ष्मा इति । तत्र छिन्ना स्वयं संधानासमर्था काष्ठपाषाणाद्या बादरबादरा । छिन्ना स्वयं संधानसमर्था क्षीरघृततैलतोयरसप्रभृतयो बादरा । स्थूलोपलम्भा अपि छेत्तुं भेत्तुमादातु मशक्या छायाऽऽतपतमोज्योत्स्नादयो बादरसूक्ष्मा । सूक्ष्मत्वेऽपि स्थूलोपलम्भा स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दा सूक्ष्मबादरा सूक्ष्मत्वेऽपि हि करणानुपलभ्या कर्मवर्गणादय सूक्ष्मा । अत्यन्तसूक्ष्मा कर्मवर्गणाभ्योऽधो द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्ता सूक्ष्मसूक्ष्मा इति ॥ ७६ ॥

तात्पर्य—लोक्यन्ते जीवादिपदार्था यत्र स लोक इति वचनात्पुद्गलादिषड्द्रव्यैर्निष्पन्नोऽयं लोक न चान्येन केनापि पुरुषविशेषेण क्रियते ह्रियते ध्रियते वेति ॥ ७६ ॥

अथ तानेव षड्भेदान् विवृणोति;—

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपाओग्गा ।
कम्मातीदा एवं छब्भेया पोग्गला होंति ॥ १ ॥

पृथिवी जलं च छाया चक्षुर्विषयं विहाय चतुरिन्द्रियविषया कर्मप्रायोग्या कर्मातीता इति षड्भेदा पुद्गला भवन्ति । ते च कथंभूता । स्थूलस्थूला स्थूला स्थूलसूक्ष्मा सूक्ष्मस्थूला

स्पर्शरसवर्णगंध गुणके भेदोंसे षट्गुणी हानिवृद्धिके प्रभावसे पुद्गल नाम पाता है। और उस ही परमाणुमें किसी कालमें स्कंध होने की प्रगट शक्ति है जो कभी नहीं होती तौ भी परमाणुको पुद्गल संज्ञा है । और तीन प्रकारके जो स्कंध हैं वे अनंत परमाणुमिलकर एक पिंड अवस्थाको करते हैं । इसकारण उनमें भी पूरणगलन स्वभाव है और उनका भी नाम पुद्गल कहा जाता है [**ते**] वे पुद्गल [**षट्प्रकारा**] छैप्रकारके [**भवन्ति**] होते हैं । [**यै**] जिन पुद्गलोंमे [**त्रैलोक्य**] तीन लोक [**निष्पन्नं**] निर्मापित है । **भावार्थ**—वे छहप्रकारके पुद्गलस्कंध अपने स्थूल सूक्ष्म परिणामोंके भेदोंसे तीन लोककी रचनामें प्रवर्त्तते हैं—वे छह प्रकार कौन २ से हैं सो वताये जाते हैं । वादरवादर १ वादर २ वादरसूक्ष्म ३ सूक्ष्मवादर ४ सूक्ष्म ५ सूक्ष्म सूक्ष्म ६ येछह प्रकार जानने । जो पुद्गलपिंड दो खंड करने पर अपने आप फिर नहीं मिलैं ऐसे काष्ठपाषाणादिकको वादरवादर कहते हैं १ और जो पुद्गलस्कंध खंड खंड किये हुये अपने आप मिल जाय ऐसे दुग्ध घृत तैलादिक पुद्गलोंको वादर कहते हैं २ और जो देखनेमें तो थूल होंहिं खंड खंड करनेमें नहीं आव हस्तादिकसे ग्रहण करनेमें नहीं आवैं ऐसे धूप चंद्रमाकी चांदनी आदिक पुद्गल वादरसूक्ष्म कहलाते हैं ३ और जो स्कंध तो हैं सूक्ष्म परंतु स्थूलसे प्रति भासते हैं ऐसे स्पर्श रस गंध शब्दादिक पुद्गल सूक्ष्मवादर कहलाते हैं ४ और जो स्कंध अति सूक्ष्म हैं इंद्रियोंसे ग्रहण करनेमें नहीं आते एसे जो कर्मवर्गणादिक हैं वे सूक्ष्मपुद्गल कहलाते हैं ५ और जो

परमाणुव्याख्येयम्,—

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू ।
सो सस्सदो असद्दो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥ ७७ ॥

सर्वेषां स्कन्धानां योऽन्त्यस्तं विजानीहि परमाणुं ।
स शाश्वतोऽशब्दः एकोऽविभागी मूर्तिभवः ॥ ७७ ॥

उक्तानां स्कन्धपर्यायाणां योऽन्त्यो भेदः स परमाणुः । स तु पुनर्विभागाभावादविभागी । निर्विभागैकप्रदेशत्वादेकः । मूर्तद्रव्यत्वेन सदाप्यविनश्वरत्वान्नित्यः । अनादिनि

सूक्ष्माः सूक्ष्मसूक्ष्मा इति । तद्यथा । ये छिन्ना भेदे स्वयमेव संधातुमसमर्थास्ते स्थूलस्थूलाः भूपर्वतादयः, ये तु छिन्नाः सन्तः तत्क्षणादेव संधानेन स्वयमेव समर्थास्ते स्थूलाः सर्पिस्तैलजलादयः, ये तु हस्तेनादातुं देशान्तरं नेतुं अशक्यास्ते स्थूलसूक्ष्माः छायातपादयः, ये पुनः लोचनविषया न भवन्ति ते सूक्ष्मस्थूलाश्चतुरिन्द्रियविषयाः, ये तु ज्ञानावरणादिकर्मवर्गणायोग्यास्ते सूक्ष्मा इन्द्रियज्ञानाविषयाः, ये चातिसूक्ष्मत्वेन कर्मवर्गणातीतास्ते सूक्ष्मसूक्ष्माः कर्मवर्गणातीतेभ्यो (भेदेभ्यः) ऽन्यन्तसूक्ष्मा द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्ता इति तात्पर्यं ॥ १ ॥ एवं प्रथमस्थले स्कन्धव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथाचतुष्टयं समाप्तं । तदनंतरं परमाणुव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापंचकं कथ्यते । तथाहि । शाश्वतादिगुणोपेतं परमाणुद्रव्यं प्रतिपादयति,—**सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू** यथा य एव कर्मस्कन्धानामन्तो विनाशस्तमेव शुद्धात्मानं विजानीहि तथा य एव षड्विधस्कन्धानामन्तोऽवसानो भेदस्तं परमाणुं विजानीहि **सो** स च । कथंभूतः । **सस्सदो** यथा परमात्मा टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावेन द्रव्यार्थिकनयेनाविनश्वरत्वात् शाश्वतः तथा पुद्गलत्वेनाविनश्वरत्वात्परमाणुरपि नित्यः **असद्दो** यथा शुद्धजीवास्तिकायो निश्चयेन स्वसंवेदनज्ञानविषयोपि शब्दविषयः शब्दरूपो वा न भवतीत्यशब्दः तथा हि परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोपि व्यक्तिरूपेण शब्दपर्यायरूपो न भवतीत्यशब्दः **एक्को** यथा शुद्धात्मद्रव्यं निश्चयेन परोपाधिरहितत्वेन केवलमसहायमेकं भण्यते तथा परमाणु-

कर्मवर्गणाओंसे भी अति सूक्ष्म द्व्यणुकस्कंध ताईं जे हैं ते सूक्ष्मसूक्ष्म कहलाते हैं ॥ ७६ ॥

आगें परमाणुका स्वरूप कहते हैं, [**सर्वेषां**] समस्त [**स्कन्धानां**] स्कंधोंका [**यः**] जो [**अन्त्यः**] अंतका भेद है [**तं**] उसको [**परमाणुं**] परमाणु [**विजानीहि**] जानना । अर्थात्—ये जो पूर्वमें छह प्रकारके स्कंध कहे उनमेंसे जो अंतका भेद (अविभागी खंड) है सो परमाणु कहाता है [**सः**] वह परमाणु [**शाश्वतः**] त्रिकाल अविनाशी है यद्यपि स्कंधोंके मिलापसे एक पर्यायसे पर्यायांतरको प्राप्त होता है तथापि अपने द्रव्यस्वरूप सदा टंकोत्कीर्ण नित्य द्रव्य है । फिर कैसा है वह परमाणु? [**अशब्दः**] शब्दरहित है यद्यपि स्कंधके मिलापसे शब्द पर्यायको धरता है तथापि स्वरूपसे शब्द पर्यायसे रहित है । फिर कैसा है परमाणु?

स्येति । तत्र क्वचित्परमाणौ गंधगुणे, क्वचित् गंधरसगुणयो, क्वचित् गंधरसरूपगुणेषु अपकृष्यमाणेषु तदविभक्तप्रदेश' परमाणुरेव विनश्यतीति । न तदपकर्षो युक्त' । तत पृथिव्यप्तेजोवायुरूपस्य धातुचतुष्कस्यैक एव परमाणु कारण । परिणामवशात् विचित्रो हि परमाणो परिणामगुण क्वचित्कस्यचिद्गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वेन विचित्रा परिणतिमादधाति । यथा च तस्य परिणामवशादव्यक्तो गंधादिगुणोऽस्तीति प्रतिज्ञायते न तथा शब्दोऽप्यव्यक्तोऽस्तीति ज्ञातु शक्यते । तस्यैकप्रदेशस्यानेकप्रदेशात्मकेन शब्देन सहैकत्वविरोधादिति ॥ ७८ ॥

पूर्व कथित एकोऽपि परमाणु पृथिव्यादिधातुचतुष्करूपेण कालान्तरेण परिणमति स परमाणुरिति ज्ञेय परिणामगुणो औदयिकादिभावचतुष्टयरहितत्वेन पारिणामिकगुण । पुन किंविशिष्ट । सयमसद्दो एकप्रदेशत्वेन स्कन्धान्तरपरमाणुपिंडलक्षणेन शब्दपर्यायेण सह विलक्षणत्वात्स्वय

कारण है । ये चार धातु इन परमाणुओंमे ही पैदा होते हैं । फिर कैसा है ? [परिणामगुण] परिणमन स्वभाववाला है [स्वय अशब्द] आप अशब्द है किंतु शब्दका कारण है । भावार्थ—परमाणु जो द्रव्य है उसमें स्पर्श रस गंध वर्ण ये चार गुण हैं। इन चारों ही गुणोंसे परमाणु मूर्तीक कहलाता है । परमाणु निर्विभाग है क्योंकि जो प्रदेश आदिमें है वही मध्य और अंतमें है इसकारण दूसरा भाग परमाणुका नहीं होता। द्रव्य गुणमें प्रदेशभेद नहीं होता इसकारण जो प्रदेश परमाणुका है वही प्रदेश स्पर्श रस गंध वर्णका जान लेना । ये चार गुण परमाणुमें सदा काल पाये जाते हैं परन्तु गौण मुख्यके भेदसे न्यूनाधिक भी इन गुणोंका कथन किया जाता है । पृथिवी जल अग्नि वायु ये चारों ही पुद्गलजातिय परमाणुओंसे उत्पन्न हैं । इनके परमाणुओंकी जाति जुदी नहीं है पर्यायके भेदसे भेद होता है । पृथिवी जातिके परमाणुओंमें चारों ही गुणोंकी मुख्यता है । जलमें गंध गुणकी गौणता है अन्य तीन गुणोंकी मुख्यता है । अग्निमें गंध और रसकी गौणता है स्पर्श और वर्णकी मुख्यता है । वायुमें तीन गुणोंकी गौणता है स्पर्श गुणकी मुख्यता है । पर्यायोंके कारण परमाणुमें नानाप्रकारके परिणामगुण होते हैं । कहीं पर किसी एक गुणकी प्रगटता अप्रगटताके कारण नानाप्रकारकी परणतिको धारण करते हैं । प्रश्न—जिस प्रकार परमाणुओंके परिणमनसे गंधादिक गुण हैं उसी प्रकार शब्द भी प्रगट होता होगा ? ऐसी जो कोई शंका करै तो उसका समाधान यह है कि—परमाणु एकप्रदेशी है इस कारण शब्द प्रगट नहीं होता शब्द है

---

१ पूर्वोक्तपु एतपु [illegible] परमाणु [illegible] २ तस्य परमाणोरपकर्षो विनाशो न युक्त
३ परमाणु ।

शब्दस्य पुद्गलस्कन्धपर्यायत्वख्यापनमेतत्,—

सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणुसंगसंघादो ॥
पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥ ७९ ॥

शब्दः स्कन्धप्रभवः स्कन्धः परमाणुसङ्गसङ्घातः ।
स्पृष्टेषु तेषु जायते शब्द उत्पादको नियतः ॥ ७९ ॥

इह हि बाह्यश्रवणेन्द्रियावलम्बितो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिः शब्दः । स खलु स्वरूपेणानन्तपरमाणूनामेकस्कन्धो नाम पर्यायः । बहिरङ्गसाधनीभूतमहास्कन्धेभ्यः तथाविधपरिणामेन समुत्पद्यमानत्वात् स्कन्धप्रभवः । यतो हि परस्पराभिहतेषु महास्कन्धेषु शब्दः समुपजायते । किंच स्वभावनिर्वृत्ताभिरेवानन्तपरमाणुमयीभिः शब्दयोग्यवर्गणाभिरन्योन्य

व्यक्तिरूपेणाशब्द इति सूत्रार्थः ॥ ७८ ॥ एवं परमाणूनां पृथिव्यादिजातिभेदनिराकरणकथनेन द्वितीयगाथा गता । अथ शब्दस्य पुद्गलस्कन्दपर्यायत्वं दर्शयति,—**सद्दो** श्रवणेन्द्रियावलम्बनो भावेन्द्रियपरिच्छेद्यो ध्वनिविशेषः शब्दः । स च किंविशिष्टः । **खंदप्पभवो** स्कन्देभ्यः सकाशादुत्पन्नः प्रभव इति स्कन्दप्रभवः । स्कन्दलक्षणं कथ्यते । **खंदो परमाणुसंगसंघादो** स्कन्दो भवति । कथंभूतः । परमाणुसंगसंघातः अनन्तपरमाणुसंगानां समूहानामपि संघातः समुदायः । इदानीं स्कन्देभ्यः सकाशाच्छब्दस्य प्रभवत्वमुत्पत्तिं कथयति । **पुट्ठेसु तेसु** स्पृष्टेषु तेषु पूर्वोक्तेषु स्कन्देषु स्पृष्टेषु लग्नेषु परस्परं संघट्टितेषु सत्सु **जायदि** जायते प्रभवति । स कः कर्ता । **सद्दो** पूर्वोक्तशब्दः । अयमत्राभिप्रायः । द्विविधाः स्कन्दा भवन्ति भाषावर्गणायोग्या ये तेऽभ्यन्तरे कारणभूताः सूक्ष्मास्ते च निरन्तरं लोके तिष्ठन्ति ये तु बहिरङ्गकारणभूतास्ताल्वोष्ठपुटव्यापारघटाभिघातमेघादयस्ते स्थूलाः क्वापि क्वापि तिष्ठन्ति न सर्वत्र यत्रेयमुभयसामग्री समुदिता तत्र भाषावर्गणाः शब्दरूपेण परिणमन्ति न सर्वत्र । स च शब्दः किं विशिष्टः । **उप्पादिगो णियदो** भाषावर्गणास्कन्देभ्य उत्पद्यते इत्युत्पादकः नियतो निश्चितः न चाकाशद्र-

---

सो अनेक परमाणुओंके स्कंधोंसे उत्पन्न होता है इसकारण परमाणु अशब्दमय है ॥ ७८ ॥
आगें शब्दको पुद्गलका पर्यायत्व दिखाते हैं । [**शब्दः**] शब्द जो है सो [**स्कन्धप्रभवः**] स्कंधसे उत्पन्न है [**परमाणुसङ्गसङ्घातः**] अनंत परमाणुओंके मिलापका समूह [**स्कन्धः**] स्कंध होता है । [**तेषु स्पृष्टेषु**] उन स्कंधोंके परस्पर स्पर्श होनेपर [**नियतः**] निश्चित [**उत्पादकः**] अन्य वर्गणाओंको शब्दरूपभाव करनेहारा ऐसा [**शब्दः**] शब्द [**जायते**] उत्पन्न होता है । **भावार्थ**—द्रव्यकर्णेन्द्रियके आधारसे भावकर्णेन्द्रियके द्वारा जो धुनि सुनी जाय उस शब्द कहते हैं । वह शब्द अनंत परमाणुओंका पिंड अर्थात् स्कंधोंसे ही उत्पन्न होता है क्योंकि जब परस्पर महास्कंधोंका संघट्ट

---

१ शब्दरूपेण २ भाषावर्गणादिरूपेण ।

परमाणोरेकप्रदेशत्वख्यापनमेतत्,—

णिचो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेत्ता ।
खंधाण पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥ ८० ॥

नित्यो नानवकाशो न सावकाशः प्रदेशतो भेत्ता ।
स्कंधानामपि च कर्ता प्रविभक्ता कालसंख्यायाः ॥ ८० ॥

परमाणुः स खल्वेकेन प्रदेशेन रूपादिगुणसामान्यभाजा सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यः ।

सर्वं हेयतत्त्वमेतस्माद्भिन्नं शुद्धात्मतत्त्वमुपादेयमिति भावार्थः ॥ ७९ ॥ एवं शब्दस्य पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वस्थापनामुख्यत्वेन तृतीयगाथा गता । अथ परमाणोरेकप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति,—**णिच्चो** नित्यः । कस्मात् । **पदेसदो** प्रदेशतः परमाणोः खलु एकेन प्रदेशेन सर्वदैवाविनश्वरत्वान्नित्यो भवति **णाणवगासो** नानवकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन स्वकीयवर्णादिगुणानामवकाशदानात्सावकाशः **ण सावगासो** न सावकाशः किंत्वेकेन प्रदेशेन द्वितीयादिप्रदेशाभावान्निरवकाशः **भेत्ता खदाणं** भेत्ता स्कंधानां **कत्ता अवि य** कर्ता अपि च स्कंधानां जीववत् । तद्यथा । यथायं जीवः स्वप्रदेशगतरागादिविकल्परूपस्निग्धभावेन परिणतः सन् कर्मस्कंधानां भेत्ता विनाशको भवति तथा परमाणुरप्येकप्रदेशगतस्निग्धभावेन परिणतः सन् स्कंधानां विघटनकाले भेत्ता भेदको भवति । यथा स एव जीवो निःस्नेहात्परमात्मतत्त्वाद्विपरीतेन स्वप्रदेशगतमिथ्यात्वरागादिस्निग्धभावेन परिणतः सन्नवतरज्ञानावरणादिकर्मस्कंधानां कर्ता भवति तथा स एव परमाणुः स्वप्रदेशगतस्निग्धभावेन परिणतः सन् द्व्यणुकादिस्कंधानां कर्ता भवति । अत्र योसौ स्कंधानां भेदको भणितः स कार्यपरमाणुरुच्यते यस्तु कारकस्तेषां स कारणपरमाणुरिति कार्यकारणभेदेन द्विधा परमाणुर्भवति । तथा चोक्तं । "स्कंधभेदाद्भवेदाद्यः स्कंधानां जनकोपरः ।" अथवा

हैं वे वैस्रसिक अभाषात्मक शब्द होते हैं । ये समस्त प्रकारके ही शब्द पुद्गल स्कंधोंसे उत्पन्न होते हैं ऐसा जानना ॥ ७९ ॥ आगे परमाणुके एकप्रदेशत्व दिखाते हैं,— परमाणु कैसा है ? [नित्यः] सदा अविनाशी है । अपने एक प्रदेशकर रूपादि गुणोंसे भी कभी त्रिकालमें रहित नहीं होता । फिर कैसा है ? [न अनवकाशः] जगह देनेकेलिये समर्थ है परमाणुके प्रदेशसे जुदे नहीं ऐसे जो हैं उसमें स्पर्शादि गुण उनको अवकाश देनेकेलिये समर्थ है । फिर कैसा है ? [न सावकाशः] जगह देता भी नहीं अपने एक प्रदेशकर आदि मध्य अंतमें निर्विभाग एक ही है इसकारण दो आदि प्रदेशोंकी समाइ (जगह) उसमें नहीं है । इसलिये अवकाशदान देनेको असमर्थ भी है । फिर कैसा है ? [प्रदेशतः भेत्ता] अपने एक ही प्रदेशसे स्कंधोंका भेद करनेवाला है । जब अपने बिछुरनेका समय पाता है उस समय स्कंधसे निकल जाता है इसकारण स्कंधका भेद करनेवाला कहा जाता है । फिर कैसा है ? [स्कंधानां] स्कंधोंका [कर्ता अपि] कर्ता भी है अर्थात् अपना कालपाकर अपनी मिलनशक्तिसे

परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायवृत्तिप्ररूपणमेतत्,—

एयरसवण्णगंधं दो फासं सद्दकारणमसद्दं ।
खंधतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणेहि ॥ ८१ ॥

एकरसवर्णगंधं द्विस्पर्शं शब्दकारणमशब्दम् ।
स्कंधांतरितं द्रव्यं परमाणुं तं विजानीहि ॥ ८१ ॥

सर्वत्रापि परमाणौ रसवर्णगंधस्पर्शाः सहभुवो गुणाः । ते च क्रमप्रवृत्तैस्तत्र स्वपर्य्यायैर्वर्तंते । तथाहि—पञ्चानां रसपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते । पञ्चानां वर्णपर्य्यायाणामन्यतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते । उभयोर्गंधपर्य्याययोरन्यतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते । चतुर्णां शीतस्निग्धशीतरूक्षोष्णस्निग्धोष्णरूक्षरूपाणां स्पर्शपर्य्यायद्वंद्वानामन्यतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते । एवमयमुक्तगुणवृत्तिः परमाणुः शब्दस्कंधपरिणतिशक्तिस्वभावात्

तु या वर्णादिशक्तिः सा तूत्कृष्टा भावसंख्येति । एवं जघन्योत्कृष्टा प्रत्येकं द्रव्यक्षेत्रकालभावसंख्या ज्ञातव्या ॥ ८० ॥ एवं परमाणुद्रव्यप्रदेशाधारं कृत्वा समयादिव्यवहारकालकथनमुख्यत्वेन एकत्वादिसंख्याकथनेन च द्वितीयस्थले चतुर्थगाथा गता । अथ परमाणुद्रव्ये गुणपर्यायस्वरूपं कथयति,—**एयरसवण्णगंधं दोफासं** एकरसवर्णगंधद्विस्पर्शं । तथाहि—तत्र परमाणौ तिक्तादिपंचरसपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा रसो वर्तते शुक्लादिपंचवर्णपर्यायाणामेकतमेनैकेनैकदा वर्णो वर्तते सुरभिदुरभिरूपगंधपर्याययोर्द्वयोरेकतरेणैकेनैकदा गंधो वर्तते शीतस्निग्धशीतरूक्षउष्णस्निग्धउष्णरूक्षरूपाणां चतुर्णां स्पर्शपर्यायद्वंद्वानामेकतमेनैकेनैकदा स्पर्शो वर्तते **सद्दकारणमसद्दं** शब्दकारणोप्यशब्दः आत्मवत् । यथात्मा व्यवहारेण ताल्वोष्ठपुटव्यापारेण शब्दकारणभूतोपि निश्चये नातींद्रियज्ञानविषयत्वाच्छब्दज्ञानविषयो न भवति शब्दादिपुद्गलपर्यायरूपो वा न भवति तेन कारणेनाशब्दः तथा परमाणुरपि शक्तिरूपेण शब्दकारणभूतोप्येकप्रदेशत्वेन शब्दव्यक्त्यभावाद् शब्दः **खंदतरिदं दव्वं परमाणुं तं वियाणाहि** यमेवमुक्तवर्णादिगुणशब्दादिपर्यायवृत्तिविशि

उत्कृष्ट भेदसे उस भेद संख्याको भी करता है । यह चार प्रकारका भेदभाव संख्या परमाणुजनित जान लेना ॥ ८० ॥ आगें परमाणु द्रव्यमें गुणपर्यायका स्वरूपकथन करते हैं;—हे शिष्य ! ['यत्'] जो द्रव्य [एकरसवर्णगंध] एक है रस वर्ण गंध जिसमें ऐसा [द्विस्पर्शं] दो स्पर्श गुणवाला है [शब्दकारणं] शब्दकी उत्पत्तिका कारण है [अशब्दं] अपने एक प्रदेशकर शब्दत्वरहित है [स्कंधांतरितं] पुद्गलपिंडसे जुदा है [तं द्रव्यं] उस द्रव्यको [परमाणुं] परमाणु [विजानीहि] जान । भावार्थ—एक परमाणुमें पुद्गलके जीतगुणोंमेंसे जो पांच रस हैं उनमेंसे कोई एक रस पाया जाता है । पांच वर्णोंमेंसे कोई एक वर्ण होता है । इसीप्रकार दो गंधोंमेंसे कोई एक गंध तथा शीतस्निग्ध, शीतरूक्ष, उष्णस्निग्ध, उष्णरूक्ष, इन चार स्पर्शके युगलोंमेंसे एक कोई युगल होता है । इस प्रकार एक परमाणुमें पांच गुण

शब्दकारण । एकप्रदेशत्वेन शब्दपर्य्यायपरिणतिवृत्त्यभावादशब्द । स्निग्धरूक्षत्वप्रत्ययप्रवशादनेकपरमाण्वेकत्वपरिणतिरूपस्कन्धान्तरितोऽपि स्वभावमपरित्यजन्नुपात्तसंख्यत्वादेकमेव द्रव्यमिति ॥ ८१ ॥

सकलपुद्गलविकल्पोपसंहारोऽयम्,—

उवभोज्जमिंदियेहिं य इंदिय काया मणो य कम्माणि ।
जं हवदि मुत्तमण्णं तं सव्वं पुग्गलं जाणे ॥ ८२ ॥

उपभोग्यमिन्द्रियैश्चेन्द्रियं कायां मनश्च कर्माणि ।
यद्भवति मूर्त्तमन्यत् तत्सर्वं पुद्गलं जानीयात् ॥ ८२ ॥

स्कन्धांतरित द्रव्यरूपस्कन्दपरमाणु विजानीहि परमात्मवदेव । तद्यथा । यथा परमात्मा व्यवहारेण द्रव्यभावरूपकर्मस्कन्दांतगतोऽपि निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभाव एव तथा परमाणुरपि व्यवहारेण स्कंदांतर्गतोऽपि निश्चयनयेन स्कंदबहिर्भूतशुद्धद्रव्यरूप एव । अथवा स्कंदांतरित इति कोऽर्थः स्कंदात्पूर्वमेव भिन्न इत्यभिप्रायः ॥ ८१ ॥ एवं परमाणुद्रव्यवर्णादिगुणस्वरूपशब्दादिपर्यायस्वरूपकथनेन पंचमगाथा गता । इति परमाणुद्रव्यरूपेण द्वितीयस्थले समुदायेन गाथापंचकं गतं । अथ सकलपुद्गलभेदानामुपसंहारमावेदयति,—**उवभोज्जमिंदियेहिं य** वीतरागातीन्द्रियसुखास्वादरहितानां जीवानां यदुपभोग्यं पंचेन्द्रियविषयस्वरूपं **इंदियकाया** अतीन्द्रियात्मस्वरूपाद्विपरीतानीन्द्रियाणि अशरीरात्मपदार्थाप्रतिपक्षभूता औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीरसंज्ञाः पंचकायाः **मणोय** मनोगतविकल्पजालरहितात् शुद्धजीवास्तिकायाद्विपरीतं मनश्च **कम्माणि** कर्मरहितात्मद्रव्यात् प्रतिकूलानि ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माणि **जं हवदि मुत्तिमण्णं** अमूर्तात्मस्वभावात्प्रतिपक्षभूतमन्यदपि यन्मूर्तं प्रत्येकानंतसंख्येयासंख्येयानंताणुस्कंदरूपमनंतविभागिपरमाणुरूपं च **तं सव्वं पोग्गलं जाणे** तत्सर्वमन्यच्च नोकर्मादिकं पुद्गलं जानीहि । इति पुद्गलद्रव्यो

जानने । यह परमाणु स्कंधभावको परणया हुआ शब्दपर्यायका कारण है । और जब स्कंधसे जुदा होता है तब शब्दसे रहित है । यद्यपि अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंके कारण पाकर अनेक परमाणुरूपस्कंधपरणतिको धरकर एक होता है तथापि अपने एकरूपसे स्वभावको नहीं छोडता सदा एक ही द्रव्य रहता है ॥ ८१॥ आगें समस्त पुद्गलोंके भेद संक्षेपतासे दिखाये जाते हैं,—['यत्'] जो [इन्द्रियैः] पांचों इन्द्रियोंसे [उपभोग्यं] स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दरूप पांच प्रकारके विषय भोगनेमें आते हैं [च] और [इन्द्रियं] स्पर्श जीभ नासिका चक्षु नेत्र ये पांच प्रकारकी द्रव्यइंद्रिय [कायाः] औदारिक वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण ये पांच प्रकारके शरीर [च] और [मनः] पौद्गलीक द्रव्यमन तथा [कर्माणि] द्रव्यकर्म नोकर्म और [यत्] जो कुछ [अन्यत्] और भी [मूर्त्तं] मूर्तीक पदार्थ [भवति] है [तत्सर्वं] वे समस्त [पुद्गलं] पुद्गल द्रव्य [जानीयात्] जानो । भावार्थ—

इन्द्रियविषयाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाश्च, द्रव्येन्द्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि, कायाः औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानि, द्रव्यमनोद्रव्यकर्माणि नोकर्माणि, विचित्रपर्यायोत्पत्तिहेतवोऽनन्ताऽनन्ताणुवर्गणा, अनन्ताऽसंख्येयाणुवर्गणा, अनन्ता संख्येयाणुवर्गणा, द्व्यणुकस्कन्धपर्यन्ता परमाणवश्च, यदन्यदपि मूर्तं तत्सर्वं पुद्गलविकल्पत्वेनोपसंहर्तव्यमिति ॥ ८२ ॥ इति पुद्गलद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् ।

अथ धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् । धर्मस्वरूपाख्यानमेतत्,—

धम्मत्थिकायमरसं अवण्णगंधं असद्दमप्फासं ।
लोगोगाढं पुट्ठं पिहुलमसंखादियपदेसं ॥ ८३ ॥

धर्मास्तिकायोऽरसोऽवर्णगन्धोऽशब्दोऽस्पर्शः ।
लोकावगाढः स्पृष्टः पृथुलोऽसंख्यातप्रदेशः ॥ ८३ ॥

धर्मो हि स्पर्शरसगन्धवर्णानामत्यन्ताभावादमूर्तस्वभावः । तत एव चाशब्दः । सकललोकाकाशाभिव्याप्यावस्थितत्वाल्लोकावगाढः । अयुतसिद्धप्रदेशत्वात् स्पृष्टः । स्वभावादेव

पसंहार ॥८२॥ एवं पुद्गलास्तिकायोपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथैका गता । इति पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारे गाथादशकपर्यंतं स्थलत्रयेण पुद्गलास्तिकायनामा पंचमोंतराधिकारः समाप्तः ॥ अथानंतरमनंतकेवलज्ञानादिरूपशुद्धोपादेयभूतात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्ने हेयरूपे धर्माधर्मास्तिकायाधिकारे गाथासप्तकं भवति तत्र गाथासप्तकमध्ये धर्मास्तिकायस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "धम्मत्थिकायमरसं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरमधर्मास्तिकायस्वरूपनिरूपणमुख्यत्वेन "जह हवदि" इत्यादि गाथासूत्रमेकं, अथ धर्माधर्मोभयसमर्थनमुख्यत्वेन तयोरस्तित्वाभावे दूषणमुख्यत्वेन च 'जादो अलोग' इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयमिति । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेण धर्माधर्मास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । धर्मास्तिकायस्वरूपं कथयति,—**धम्मत्थिकायं** धर्मास्तिकायो भवति **अरसमवण्णमगंधमसद्दमप्फासं** रसवर्णगंधशब्दस्पर्शरहितः **लोगोगाढं** लोकव्यापकः **पुट्ठं** निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपरि-

पांच प्रकार इन्द्रियोंके विषय, पांच प्रकारकी इन्द्रियें, द्रव्यमन, द्रव्यकर्म, नोकर्म, इनके सिवाय और जो अनेक पर्यायोंकी उत्पत्तिके कारण नानाप्रकारकी अनंतानंत पुद्गलवर्गणायें हैं अनंती असंख्येयाणुवर्गणा हैं और अनंती वा असंख्याती संख्येयाणुवर्गणा हैं, दो अणुके स्कंधतांई और परमाणु अविभागी इत्यादि जो भेद हैं वे समस्त ही पुद्गलद्रव्यमयी जानने यह पुद्गलद्रव्यास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुवा ॥ ८२ ॥ आगें धर्म अधर्म द्रव्यास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है जिसमेंसे प्रथम ही धर्म द्रव्यका स्वरूप कहा जाता है,—[**धर्मास्तिकाय.**] धर्मद्रव्य जो है सो काय

१ अशरीरत्वम् ।

गाढो निःसृतत्वात्पृथुलः । निश्चयादेकप्रदेशोऽपि व्यवहारनयेनासंख्यातप्रदेश इति ॥ ८३ ॥

धर्मस्यावशिष्टस्वरूपाख्यानमेतत्।—

> अगुरुगलघुगेहिं सया तेहिं अणंतेहिं परिणदं णिच्चं ।
> गदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं सयमकज्जं ॥ ८४ ॥
>
> अगुरुलघुकैः सदा तैः अनन्तैः परिणतः नित्यः ।
> गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतः स्वयमकार्यः ॥ ८४ ॥

अपि च धर्मः अगुरुलघुभिर्गुणैरगुरुलघुत्वाभिधानस्य स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबन्धनस्य स्वभावस्याविभागपरिच्छेदैः प्रतिसमयसम्भवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनन्तैः सदा परिण

णाज्जीवप्रदेशेषु परमानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादसमरसीभाववत् सिद्धक्षेत्रे सिद्धराशिवत् शून्यघटे शब्दवत् स्थितः परस्परप्रदेशव्यवधानरहितत्वेन निरन्तर नच निर्जनप्रदेशे भाविता-त्मनिवासस्वरूपारे जनवत्सान्तर, बहुल अभव्यजीवप्रदेशेषु मिथ्यात्वरागादिवत्तथैव नभो-देशे पृथुलोऽनादिनिधनत्वेन स्वभावनिर्मितः न च घटवत्समुद्घाते जीवप्रदेशवल्लोके धर्मादिप्रदेश-स्थितप्रदेशः पुनरिदानीं निर्मितः । पुनरपि किंविशिष्टः । असंखादियपदेसं निश्चयेनाखण्डै-कप्रदेशोऽपि सद्भूतव्यवहारेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशः इति सूत्रार्थः ॥ ८३ ॥ अथ धर्मस्यावशिष्टस्वरूपं प्रतिपादयति;—अगुरुगलहुगेहिं सदा तेहिं अणंतेहिं परिणदं

रहित प्रवर्ते है । कैसा है वह धर्म द्रव्य ? [अरस] पांच प्रकारके रसरहित [अवर्णगंध] पांच प्रकारके वर्ण और दो प्रकारके गंधरहित [अशब्द] शब्दपर्यायसे रहित [अस्पर्श] आठ प्रकारके स्पर्श गुणरहित है । फिर कैसा है ? [लोकावगाढ] समस्त लोकको व्याप्त होकर तिष्ठता है [स्पृष्ट] अपने प्रदेशोंके स्पर्शसे अखंडित है [पृथुल] स्वभावहीसे सब जगहँ विस्तृत है । और [असंख्यातप्रदेशा] यद्यपि निश्चयनयसे एक अखंडित द्रव्य है तथापि व्यवहारसे असंख्यातप्रदेशी है । भावार्थ—धर्मद्रव्य स्पर्श रस गंध वर्ण गुणोंसे रहित है इसकारण अमूर्तीक है क्योंकि स्पर्श रस गंध वर्णवती वस्तु सिद्धांतमें मूर्तीक ही है । ये चार गुण जिसमें नहीं होय उसीका नाम अमूर्तीक है । इस धर्मद्रव्यमें शब्द भी नहीं है क्योंकि शब्द भी मूर्तीक होते हैं इसकारण शब्द पर्यायसे रहित है । लोकप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है । यद्यपि अखंडद्रव्य है परंतु भेदविवक्षाके लिये परमाणुओंद्वारा असंख्यात प्रदेशी गिना जाता है ॥ ८३ ॥ आगे फिर भी धर्मद्रव्यका स्वरूप कुछ विशेषता कर दिखाया जाता है [सदा] सदाकाल [तैः] उन प्रसिद्ध अविनाशी करनहार [अगुरुलघुक] अगुरु लघु नामक [अनंतैः] अनंत गुणोंसे [परिणत]

तत्वादुत्पादव्ययभावेऽपि स्वरूपादप्रच्यवनान्नित्यः गतिक्रियापरिणतानामुदासीनाविनाभूतसहायमात्रत्वात्कारणभूतः । स्वास्तित्वमात्रनिर्वृतत्वात् स्वयमकार्य इति ॥ ८४॥

धर्मस्य गतिहेतुत्वे दृष्टान्तोऽयम्,—

उदयं जह मच्छाणं गमणाणुग्गहयरं हवदि लोए।
तह जीवपुग्गलाणं धम्मं दव्वं वियाणेहि ॥ ८५ ॥

उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके ।
तथा जीवपुद्गलानां धर्मं द्रव्यं विजानीहि ॥ ८५ ॥

अगुरुलघुकै सदा तैरनंतै परिणत प्रतिसमयमभवत्षट्स्थानपतितवृद्धिहानिभिरनंतैरविभागपरिच्छेदै परिणता येऽगुरुलघुकगुणा स्वरूपप्रतिष्ठत्वनिबन्धनभूतास्तैः कृत्वा पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययपरिणतोपि द्रव्यार्थिकनयेन **णिच्चं** नित्यं **गतिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं** गतिक्रियायुक्तानां कारणभूतं यथा सिद्धो भगवानुदासीनोपि सिद्धगुणानुरागपरिणतानां भव्यानां सिद्धगतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोपि स्वभावेनैव गतिपरिणतजीवपुद्गलानामुदासीनोपि गतिसहकारिकारणं भवति **सयमकज्जं** स्वयमकार्यं यथा सिद्धः स्वकीयशुद्धास्तित्वेन निष्पन्नत्वाद्येन केनापि न कृत इत्यकार्यः तथा धर्मोपि स्वकीयास्तित्वेन निष्पन्नत्वादकार्य इत्यभिप्रायः ॥८४॥ अथ धर्मस्य गतिहेतुत्वे लोकप्रसिद्धदृष्टांतमाह,—उदकं यथा मत्स्यानां गमनानुग्रहकरं भवति लोके तथैव जीवपुद्गलानां धर्मद्रव्यं विजानीहि हे शिष्य । तथाहि—यथा हि जलं स्वयमगच्छ

समय समयमें परिणमता है । फिर कैसा है ? [**नित्यः**] टंकोत्कीर्ण अविनाशी वस्तु है । फिर कैसा है ? [**गतिक्रियायुक्तानां**] गमन अवस्थाकर सहित जो जीव पुद्गल हैं तिनको [**कारणभूतं**] निमित्तकारण है । फिर कैसा है ? [**स्वयमकार्यं**] किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ है । **भावार्थ**—धर्मद्रव्य सदा अविनाशी टंकोत्कीर्ण वस्तु है । यद्यपि अपने अगुरुलघु गुणसे षट्गुणी हानिवृद्धिरूप परिणमता है, परिणामसे उत्पादव्ययसंयुक्त है तथापि अपने ध्रौव्य स्वरूपसे चलायमान नहीं होता क्योंकि द्रव्य वही है जो उपजै विनशै थिर रहै । इसकारण यह धर्मद्रव्य अपने ही स्वभावको परिणये जो पुद्गल तिनको उदासीन अवस्थासे निमित्तमात्र गतिको कारणभूत है । और यह अपनी अवस्थासे अनादि अनंत है, इस कारण कार्यरूप नहीं हैं । कार्य उसे कहते हैं जो किसीसे उपज्या होय । गतिको निमित्तपाय सहायी है, इसलिये यह धर्मद्रव्य कारणरूप है किंतु कार्य नहीं है ॥ ८४ ॥ आगे धर्मद्रव्य गतिको निमित्तमात्र सहाय किस दृष्टांतकर है सो दिखाया जाता है,–[**लोके**] इस लोकमें [**यथा**] जैसें [**उदकं**] जल [**मत्स्यानां**] मच्छियोंको [**गमनानुग्रहकरं**] गमनके उपका-

---

१ धर्मं विना गमनं नास्ति २ जीवपुद्गलानाम् ।

यथोदकं स्वयमगच्छदगमयंच स्वयमेव गच्छतां मत्स्यानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति । तथा धर्मोऽपि स्वयमगच्छन् अगमयंश्च स्वयमेव गच्छतां जीवपुद्गलानामुदासीनाऽविनाभूतसहायकारणमात्रत्वेन गमनमनुगृह्णाति इति ॥ ८५ ॥

अधर्मस्वरूपाख्यानमेतत्,—

जह हवदि धम्मदव्वं तह तं जाणेह दव्वमधमक्खं ।
ठिदिकिरियाजुत्ताणं कारणभूदं तु पुढवीव ॥ ८६ ॥

यथा भवति धर्मद्रव्यं तथा तज्जानीहि द्रव्यमधर्माख्यं ।
स्थितिक्रियायुक्तानां कारणभूतं तु पृथिवीव ॥ ८६ ॥

मत्स्यानप्रेरयत्तेषां स्वयं गच्छतां गतेः सहकारिकारणं भवति तथा धर्मोऽपि स्वयमगच्छन्सन्नप्रेरयंश्च स्वयमेव गतिपरिणतानां जीवपुद्गलानां गतेः सहकारिकारणं भवति । अथवा भव्यानां सिद्धगतेः पुण्यवत् । तद्यथा । यथा रागादिदोषरहितः शुद्धात्मानुभूतिसहितो निश्चयधर्मो यद्यपि सिद्धगतेरुपादानकारणं भव्यानां भवति तथा निदानरहितपरिणामोपार्जिततीर्थंकरप्रकृत्युत्तमसंहननादिविशिष्टपुण्यरूपधर्मोऽपि सहकारिकारणं भवति, तथा यद्यपि जीवपुद्गलानां गतिपरिणतेः स्वकीयोपादानकारणमस्ति तथापि धर्मास्तिकायोऽपि सहकारिकारणं भवति । अथवा भव्यानामभव्यानां वा यथा चतुर्गतिगमनकाले यद्यप्यभ्यन्तरशुभाशुभपरिणाम उपादानकारणं भवति तथापि द्रव्यलिङ्गादि दानपूजादिकं वा बहिरङ्गशुभानुष्ठानं च बहिरङ्गसहकारिकारणं भवति तथा जीवपुद्गलानां यद्यपि स्वयमेव निश्चयेनाभ्यन्तरेऽन्तरङ्गसामर्थ्यमस्ति तथापि व्यवहारेण धर्मास्तिकायोऽपि गतिकारणं भवतीति भावार्थः ॥ ८५ ॥ एवं प्रथमस्थले धर्मास्तिकायव्याख्यानमुख्यत्वेन गाथात्रयं गतं । अथाधर्मास्तिकायस्वरूपं कथ्यते,—यथा भवति धर्मद्रव्यं तथार्थं कर्तुं जानीहि हे शिष्य

रूपो निमित्तमात्रसहाय [भवति] होता है [तथा] वैसें ही [जीवपुद्गलानां] जीव और पुद्गलोंके गमनको सहाय [धर्मद्रव्यं] धर्म नामा द्रव्य [विजानीहि] जानना । भावार्थ—जैसें जल मच्छियोंके गमन करते समय न तो आप उनके साथ चलता है और न मच्छियोंको चलावे है किंतु उनके गमनको निमित्तमात्र सहायक है, ऐसा ही कोई एक स्वभाव है । मच्छियां जो जलके विना चलनेमें असमर्थ हैं इस कारण जल निमित्तमात्र है । इसी प्रकार ही जीव और पुद्गल धर्मद्रव्यके विना गमन करनेको असमर्थ हैं जीव पुद्गलके चलते धर्मद्रव्य आप नहीं चलता और न इनको प्रेरणा करके [illegible] है आप तो उदासीन है परन्तु कोई एक [illegible] ही अनादि निधन स्वभाव है कि जीव पुद्गल गमन करें तो उनको निमित्तमात्र सहायक होता है । ८५ ॥ आगे अधर्मद्रव्यका स्वरूप दिखाया जाता है—[यथा] जै[से] [तत्] जिसका स्वरूप पहिले कह आये हैं [धर्मद्रव्यं] ध[र्म]द्रव्य [भवति] होता है [तथा]

१ अ[illegible]

जातमलोकलोकं ययोः सद्भावतश्च गमनस्थिती ।
द्वावपि च मतौ विभक्तावविभक्तौ लोकमात्रौ च ॥ ८७ ॥

धर्माधर्मौ विद्येते । लोकालोकविभागान्यथानुपपत्ते । जीवादिसर्वपदार्थानामेकत्र वृत्ति
...पो लोकः । शुद्धैकाकाशवृत्तिरूपोऽलोकः । तत्र जीवपुद्गलौ स्वरसत एव गतितत्पूर्व
...स्थितिपरिणामापन्नौ । तयोर्यदि गतिपरिणामं तत्पूर्वस्थितिपरिणामं वा स्वयमनुभवतोर्बहि
...रङ्गहेतू धर्माधर्मौ न भवेताम्, तदा तयोर्निरर्गलगतिस्थितिपरिणामत्वादलोकेऽपि वृत्तिः
केन वार्येत । ततो न लोकालोकविभागः सिध्येत । धर्माधर्मयोस्तु जीवपुद्गलयोर्गतितत्पू
र्वस्थित्योर्बहिरङ्गहेतुत्वेन सद्भावेऽभ्युपगम्यमाने लोकालोकविभागो जायत इति । किञ्च
धर्माधर्मौ द्वावपि परस्परं पृथग्भूतास्तित्वनिर्वृत्तत्वाद्विभक्तौ । एकक्षेत्रावगाढत्वादविभक्तौ ।

धम्माजात । जेसिं सब्भावदो य ययोर्धर्माधर्मयोः स्वभावतश्च । न केवलं लोकालोकद्वयं जातं ।
गमणठिदी गतिस्थितिनिश्चितौ द्वौ । कथंभूतौ । दोवि य मया द्वौ धर्माधर्मौ मतौ सम्मतौ स्तः
अथवा पाठांतरं "अमया" अमयौ न केनापि कृतौ विभत्ता विभक्तौ भिन्नौ अविभत्ता
अविभक्तौ लोयमेत्ता य लोकमात्रौ चेति । तद्यथा—धर्माधर्मौ विद्येते लोकालोकसद्भावात् षड्द्रव्य
समूहात्मको लोकः तस्माद्बहिर्भूतं शुद्धाकाशमलोकः, तत्र लोके गतिं तत्पूर्वकस्थितिमास्कन्दतो
र्जीवपुद्गलयोर्यदि बहिरङ्गहेतुभूतधर्माधर्मौ न स्यातां तदा लोकाद्बहिर्भूतबाह्यभागेऽपि
गतिं केन नाम निषिध्यते न केनापि ततो लोकालोकविभागादेव ज्ञायते धर्माधर्मौ विद्येते ।

समाधान करनेकेलिये आचार्य कहते हैं;—[ययो] जिन धर्माधर्म द्रव्यके [सद्भावत] अस्तित्व होनेसे [अलोकलोक] लोक और अलोक [जात] हुआ है [च] और जिनसे [गमनस्थिती] गति स्थिति होती है वे [द्वौ अपि] दोनों ही [विभक्तौ मतौ] अपने अपने स्वरूपसे जुदे जुदे कहे गये हैं किंतु [अविभक्तौ] एकक्षेत्र अवगाहसे जुदे २ नहीं है । [च] और [लोकमात्रौ] असंख्यातप्रदेशी लोकमात्र हैं । **भावार्थ**—यहां जो प्रश्न किया था कि—धर्म अधर्म द्रव्य है ही नहीं—आकाश ही गति स्थितिको सहायक है तिसका समाधान इस प्रकार हुआ कि—धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं । जो ये दोनों नहीं होते तो लोक अलोकका भेद नहीं होता । लोक उसको कहते हैं जहां कि जीवादिक समस्त पदार्थ हों जहां एक आकाश ही है सो अलोक है, इस कारण जीव पुद्गलकी गतिस्थिति लोकाकाशमें है अलोकाकाशमें नहीं है । जो इन धर्म अधर्मके गतिस्थिति निमित्तका गुण नहीं होता तो लोक अलोकका भेद दूर हो जाता । जीव और पुद्गल ये दोनों ही द्रव्य गति स्थिति अवस्थाको धरते हैं इनकी गति स्थितिको बहिरंग कारण धर्म अधर्म द्रव्य लोकमें ही

---

१ समाधान २ जीवपुद्गलयोः ३ अङ्गीक्रियमाणे सति ।

निष्क्रियत्वेन सकललोकवर्तिनोर्जीवपुद्गलयोर्गतिस्थित्युपग्रहणकरणाल्लोकमात्राविति ॥८७॥

धर्माधर्मयोर्गतिस्थितिहेतुत्वेऽप्यत्यन्तौदासीन्याख्यापनमेतत्,—

ण य गच्छदि धम्मत्थी गमणं ण करेदि अण्णदवियस्स ।
हवदि गती स प्पसरो जीवाणं पुग्गलाणं च ॥ ८८ ॥

न च गच्छति धर्मास्तिको गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य ।
भवति गतेः स प्रसरो जीवानां पुद्गलानां च ॥ ८८ ॥

यथा हि गतिपरिणतः प्रभञ्जनो वैजयन्तीनां गतिपरिणामस्य हेतुकर्त्तावलोक्यते न तथा धर्मः । स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपरिणाममेवापद्यते । कुतोऽस्य सहकारित्वेन परेषां गतिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं । किंतु सलिलमिव मत्स्यानां जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतेः प्रसरो भवति । अपि च यथा गतिपूर्व

ता च किंविशिष्टौ । भिन्नास्तित्वनिष्पन्नत्वान्निश्चयनयेन पृथग्भूतौ एकक्षेत्रावगाहत्वादसद्भूतव्यवहारनयेन सिद्धराशिवदभिन्नौ सर्वदैव निःक्रियत्वेन लोकव्यापकत्वाल्लोकमात्राविति सूत्रार्थः ॥८७॥ अथ धर्माधर्मौ गतिस्थितिहेतुत्वविषयेऽत्यन्तोदासीनाविति निश्चिनोति,—**ण य गच्छदि** नैव गच्छति । स कः । **धम्मत्थी** धर्मास्तिकायः **गमणं ण करेदि** **अण्णदवियस्स** गमनं न करोत्यन्यद्रव्यस्य **हवदि** तथापि भवति । स कः । **पसरो** प्रसरः प्रवृत्तिः । कस्याः । **गदिस्स य** गतेश्च । केषां गतेः । **जीवाणं पोग्गलाणं च** जीवानां पुद्गलानां चेति ।

है । जो ये धर्म अधर्म द्रव्य लोकमें नहीं होवे तो लोक अलोक ऐसा भेद ही नहीं होता सब जगहँ ही लोक होता । इस कारण धर्म अधर्म द्रव्य अवश्य हैं । जहांतक जीवपुद्गल गति स्थितिको करते हैं तहां तांई लोक है उससे परे अलोक जानना—इसी न्याय पर लोक अलोकका भेद धर्म अधर्म द्रव्यसे जानना । ये धर्म अधर्म द्रव्य दोनों ही अपने २ प्रदेशोंको लियेहुये जुदे जुदे हैं एक लोकाकाश क्षेत्रकी अपेक्षा जुदे जुदे नहीं हैं क्योंकि लोकाकाशके जिन प्रदेशोंमें धर्मद्रव्य है उन ही प्रदेशोंमें अधर्मद्रव्य भी है दोनों ही हिलनचलनरूप क्रियासे रहित सर्वलोकव्यापी हैं । समस्त लोकव्यापी जीव पुद्गलोंको गतिस्थितिको सहकारी कारण हैं इसकारण दोनों ही द्रव्य लोकमात्र असंख्यातप्रदेशी हैं ॥ ८७ ॥ आगे धर्म अधर्म द्रव्य प्रेरक होकर गति स्थितिको कारण नहीं है अत्यंत उदासीन हैं ऐसा कथन करनेको गाथा कहते हैं, **[धर्मास्तिकः]** धर्मास्तिकाय **[न]** नहीं **[गच्छति]** चलता हिलता है । **[च]** और **[अन्यद्रव्यस्य]** अन्य जीव पुद्गलका प्रेरक होयकर **[गमनं]** हलन चलन क्रियाको **[न]** नहीं **[करोति]** करता है **[सः]** वह धर्मद्रव्य **[जीवानां]** जीवोंकी और **[पुद्गलानां]** पुद्गलोंकी **[गतेः]** हलन चलन क्रियाका **[प्रसरः]**

१ वायुः २ पताकानाम् ३ धर्मद्रव्यस्य ४ प्रवर्तको भवति । न प्रेरकतया ज्ञेयः ।

स्थितिपरिणतस्तुरङ्गोऽश्ववारस्य स्थितिपरिणामस्य हेतुकर्त्ताऽवलोक्यते न तथा धर्मं । स खलु निष्क्रियत्वात् न कदाचिदपि गतिपूर्वस्थितिपरिणाममेवापद्यते । कुतोऽस्य सहस्थायित्वेन परेषां गतिपूर्वस्थितिपरिणामस्य हेतुकर्तृत्वं । किंतु पृथिवीवत्तुरङ्गस्य जीवपुद्गलानामाश्रयकारणमात्रत्वेनोदासीन एवाऽसौ गतिपूर्वस्थिते प्रसरो भवतीति ॥ ८८ ॥

तथाहि—यथा तुरंगम स्वयं गच्छन् स्वकीयारोहकस्य गमनहेतुर्भवति न तथा धर्मास्तिकाय । कस्मात् । निष्क्रियत्वात् किंतु यथा जलं स्वयं तिष्ठति सति वा तिष्ठत्मत्स्यस्य गच्छतां मत्स्यानामौदासीन्येन गतेर्निमित्तं भवति तथा धर्मोऽपि स्वयं तिष्ठन्सन् स्वकीयोपादानकारणेन गच्छतां जीवपुद्गलानामप्रेरकत्वेन बहिरंगनिमित्तं भवति । यद्यपि धर्मास्तिकायो य उदासीनो जीवपुद्गल गतिविषये तथापि जीवपुद्गलानां स्वकीयोपादानबलेन जले मत्स्यानामिव गतिहेतुर्भवति, अधर्मस्तु पुनः स्वयं तिष्ठतामश्वादीनां पृथिवीवत्पथिकानां छायावद्वा स्थितेर्बहिरंगहेतुर्भवतीति

प्रवर्तक [भवति] होता है । [च] फिर इसप्रकारही अधर्मद्रव्य भी स्थितिको निमित्तमात्र कारण जानना । **भावार्थ**—जैसें पवन अपने चचलस्वभावसे ध्वजाओंकी हलन चलन क्रियाका कर्त्ता देखनेमें आता है वैसें धर्मद्रव्य नहीं है । धर्मद्रव्य जो है सो आप हलनचलनरूप क्रियासे रहित है किसी कालमें भी आप गति परणतिको (गमनक्रियाको) नहीं धारता । इसकारण जीवपुद्गलकी गतिपरणतिका सहायक किस प्रकार होता है उसका दृष्टांत देते हैं जैसे कि नि कम्प सरोवरमें 'जल' मच्छियोंकी गतिको सहकारी कारण है—जल स्वयं प्रेरक होकर मच्छियोंको नहीं चलाता, मच्छियें अपने ही गति परिणामके उपादान कारणसे चलतीं हैं परंतु जलके विना नहीं चल सक्ती, जल उनको निमित्तमात्र कारण है । उसी प्रकार जीवपुद्गलोंकी गति अपने उपादान कारणसे है धर्मद्रव्य आप चलता नहीं किंतु अन्य जीवपुद्गलोंकी गतिकेलिये निमित्त मात्र होता है । इसीप्रकार अधर्मद्रव्य भी निमित्तमात्र है। जैसें घोडा प्रथम ही गति क्रियाको करके फिर स्थिर होता है असवारकी स्थितिका कर्त्ता देखिये है, उसी प्रकार अधर्मद्रव्य प्रथम आप चलकर जीवपुद्गलकी स्थिरक्रियाका आप कर्त्ता नहीं है किंतु आप निःक्रिय है इसकारण गतिपूर्वस्थिति परणाम अवस्थाको प्राप्त नहीं होता है । यदि परद्रव्यकी क्रियासे इसकी गति पूर्वक्रिया नहीं होती तो किसप्रकार स्थिति क्रियाका सहकारी कारण होता है? जैसें घोडेकी स्थिति क्रियाका निमित्त कारण भूमि (पृथिवी) होती है । भूमि चलती नहीं परंतु गतिक्रियाके करनेहारे घोडेकी स्थितिक्रियाको सहकारिणी है उसीप्रकार अधर्मद्रव्य जीवपुद्गलकी स्थितिको उदासीन अवस्थासे स्थितिक्रियाका सहायी है ॥ ८८ ॥ आगें धर्म अधर्म

१ अधर्मद्रव्यस्य २ सहचलनरूपेण ।

मता पदार्थानां गतिस्थिती भवत इति चेत्, सर्वे हि गतिस्थितिमंत पदार्था स्वपरिणा मैरेव निश्चयेन गतिस्थिती कुर्वंतीति ॥ ८९ ॥ इति धर्माधर्मद्रव्यास्तिकायव्याख्यानं समाप्तम् । अथाकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

आकाशस्वरूपाख्यानमेतत्,—

सव्वेसिं जीवाणं सेसाणं तह य पुग्गलाणं च ।
जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥ ९० ॥

सर्वेषां जीवानां शेषाणां तथैव पुद्गलानां च ।
यद्ददाति विवरमखिलं तल्लोके भवत्याकाशं ॥ ९० ॥

स्थिती इति चेत् ? तत्रोत्तरं सर्वे पदार्थाः स्वपरिणामैरेव गतिं स्थितिं च कुर्वंतीति । अत्र सूत्रे निर्विकारचिदानंदैकस्वभावशुद्धात्मस्वभावात् शुद्धात्मतत्त्वाद्भिन्नत्वाद्धेयतत्त्वमित्यभिप्रायः ॥ ८९ ॥ एवं धर्माधर्मोभयव्यवस्थापनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतं । इति गाथासप्तकपर्यंतं स्थलत्रयेण पंचास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये धर्माधर्मव्याख्यानरूपेण पंचमांतराधिकारः समाप्तः । अथानंतरं शुद्धबुद्धैकस्वभावनिश्चयमोक्षकारणभूतात्मस्वरूपरोपादेयरूपात् शुद्धजीवास्तिकायात्सकाशाद्भिन्न आकाशास्तिकाय सप्तगाथापर्यंतं कथ्यते । तत्र गाथासप्तकमध्ये प्रथमतस्तावत् लोकाकाशालोकाकाशद्वयस्वरूपकथनमुख्यत्वेन "सव्वेसिं जीवाणं" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ आकाशमेव गतिस्थितिद्वयं करिष्यति धर्माधर्माभ्यां किं प्रयोजनमिति पूर्वपक्षनिराकरणमुख्यत्वेन "आगासं अवगासं" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, तदनंतरं धर्माधर्मलोकाकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वात्समानपरिमाणत्वाच्चासद्भूतव्यवहारेणैकत्वं भिन्नलक्षणत्वान्निश्चयेन पृथक्त्वमिति प्रतिपादनमुख्यत्वेन "धम्माधम्मागासा" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं सप्तगाथाभिः स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । आकाशस्वरूपं कथयति;—सव्वेसिं जीवाणं सर्वेषां जीवानां सेसाणं तह य शेषाणां तथैव च धर्माधर्मकालानां पोग्गलाणं च पुद्गलानां च जं देदि यत् ददाति । किं । विवरं विवरं छिद्रं अवकाशमवगाहं अखिलं समस्तं तं तत्कथितं लोए लोके हवदि आयासं आकाशं भवति । अत्राह शिवकुमारमहाराजनामा ।

[कुर्वन्ति] करते हैं । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि धर्म अधर्म द्रव्य मुख्य कारण नहिं हैं व्यवहार नयकरि अपना स्वभाव अवस्था निमित्तकारण हैं । निश्चय करके जीव पुद्गलोंकी गति स्थितिका उपादानकारण अपना ही परिणाम है ॥ ८९ ॥

यह धर्मअधर्मास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुआ । आगे आकाशास्तिकायका व्याख्यान किया जाता है [सर्वेषां] समस्त [जीवानां] जीवोंको [तथैव] तैसे ही [शेषाणां] धर्म अधर्म काल इन बाकी के द्रव्योंको [च] और [पुद्गलानां] पुद्गलोंको [यत्] जो [अखिलं] समस्त [विवरं] जगहको [ददाति] देता है [तत्] वह [लोके] इस लोकमें [आकाशं] आकाश

षड्द्रव्यात्मके लोके सर्वेषां शेषद्रव्याणां समस्तावकाशनिमित्तं विशुद्धक्षेत्ररूपं तदाकाशमिति ॥ ९० ॥

लोकाद्बहिराकाशसूचनेयम्;—

जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा य लोगदोणण्णा ।
तत्तो अणण्णमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥ ९१ ॥

जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ च लोकतोऽनन्ये ।
ततोऽनन्यदन्यदाकाशमन्तव्यतिरिक्तम् ॥ ९१ ॥

हे भगवन् लोकस्यासंख्यातप्रदेशत्वे तत्र लोके [illegible] अनन्तज्ञानमनन्तानन्त [illegible] अनन्तानन्तजीवास्तेभ्योऽप्यनन्तगुणाः पुद्गलाः लोकाकाशप्रमितप्रदेशप्रमाणाः कालाणवो धर्माधर्मौ चेति सर्वे कथमवकाशं लभन्त इति । भगवानाह । एकापवरके अनेकप्रदीपप्रकाशवदेकगूढनागरसगद्याणके बहुसुवर्णवदेकस्मिन्नुष्ट्रीक्षीरघटे मधुघटवदेकस्मिन् भूमिगृहे जयघण्टादिशब्दवद्विशिष्टावगाहगुणेनासंख्येयप्रदेशेऽपि लोके अवकाशलाभो भवति जीवादयोऽनन्ता इति भावः इत्यभिप्रायः ॥९०॥ अथ पञ्चद्रव्यसमवायो लोकस्तस्माद्बहिरनन्तमाकाशमलोक इति प्रकटयति;—जीवा जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मद्वयं चकाराकालश्च । एते सर्वे कथंभूता । लोगदो अणण्णा लोकाकाशादनन्ये तत्तो तस्माल्लोकाकाशात् अणण्णमण्णं आयासं अनन्यदन्यच्चाकाशं यदन्यद् लोकाकाशं । तत्किं प्रमाणं । अंतवदिरित्तं अन्तव्यतिरिक्तमनन्तमिति । अत्र सूत्रे यद्यपि सामान्येन पदार्थानां लोकादनन्यत्वं भणितं तथापि निश्चयेन मूर्तिरहितत्वकेवलज्ञानत्वसहजपरमानन्दत्वनित्य

[भवति] होता है । भावार्थ—इस लोकमें पाच द्रव्योंको जो अवकाश देता है उसको आकाश कहते हैं ॥९०॥ आगें लोकसे बाहर अलोकाकाश है उसका स्वरूप कहते हैं—[जीवाः] अनत जीव [पुद्गलकायाः] अनत पुद्गलपिंड [च] और [धर्माधर्मौ] धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य [लोकतः अनन्ये] लोकसे बाहर नाहीं । ये पाच द्रव्य लोकाकाशमें हैं [ततः] तिस लोकाकाशसे [अन्यत्] जो और है [अनन्यत्] और नहीं भी है ऐसा [आकाशं] आकाशद्रव्य है सो [अतव्यतिरिक्तं] अनत है । भावार्थ—आकाश लोक अलोकके भेदसे दो प्रकारका है । लोकाकाश उसे कहते हैं जो जीवादि पाच द्रव्याकर सहित है । और अलोकाकाश वह है जहापर आप एक आकाश ही है । वह अलोकाकाश एक द्रव्यकी अपेक्षा लोकसे जुदा नहीं है और वह अलोकाकाश पाचद्रव्यसे रहित है जब यह अपेक्षा लीजाय तब जुदा है । अलोकाकाश अनतप्रदेशी है लोकाकाश असख्यात प्रदेशी है । यहा कोई प्रश्न करै कि लोकाकाशका क्षेत्र किंचिन्मात्र है । उसमें अनत

---

१ पञ्चद्रव्याणाम् ।

जीवादीनि शेषद्रव्याण्यवधृतपरिमाणत्वाल्लोकादनन्यान्येव । आकाशं त्वनन्तत्वाल्लोकादनन्यदन्यच्चेति ॥ ९१ ॥

आकाशस्यावकाशैकहेतोर्गतिस्थितिहेतुत्वशङ्कायां दोषोपन्यासोऽयम्,—

आयासं अवगासं गमणट्ठिदिकारणेहिं देदि जदि ।
उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिट्ठंति किध तत्थ ॥ ९२ ॥

आकाशमवकाशं गमनस्थितिकारणाभ्यां ददाति यदि ।
ऊर्ध्वगतिप्रधानाः सिद्धाः तिष्ठन्ति कथं तत्र ॥ ९२ ॥

यदि खल्वाकाशमवगाहिनामवगाहहेतुरिव गतिस्थितिमतां गतिस्थितिहेतुरपि स्यात्, तदा

त्वविरिंजनत्वादिलक्षणेन शेषान्येभ्यो जीवानामपरस्परपरिगतस्वकीयस्वकीयलक्षणेन शेषद्रव्याणां च जीवेभ्यो भिन्नत्वं । तेन कारणेन ज्ञायते संकरव्यतिकरदोषो नास्तीति भावः ॥ ९१ ॥ एवं लोकाके काशद्रव्यव्यवस्थासमर्थनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतं । अथाकाशं जीवादीनां यथावकाशं ददाति तथा यदि गतिस्थिती अपि ददाति तदा दोषं दर्शयति,—**आयासं** आकाशं कर्तृ **देदि जदि** ददाति यदि चेत् । किं । **अवगासं** अवकाशमवगाहं । काभ्यां सह । **गमणट्ठिदिकारणेहिं** गमनस्थितिकारणाभ्यां । तदा किं दूषणं । **उड्ढंगदिप्पधाणा** निर्विकारविशिष्टचैतन्यप्रकाशमात्रं कारणसमयसारभावनाबलेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिविनाशं कृत्वा पश्चात्स्वाभाविकोर्ध्वगतिस्वभावाः संतः । के ते । **सिद्धा** स्वभावोपलब्धिसिद्धिरूपाः सिद्धा भगवन्तः **चिट्ठंति किह** तिष्ठन्ति कथं । कुत्र । **तत्थ** तत्र लोकाग्रे इति । अत्र सूत्रे लो

जीवादि पदार्थ कैसें समा रहे हैं? उत्तर—एक घरमें जिसप्रकार अनेक दीपकोंका प्रकाश समाय रहा है और जिसप्रकार एक छोटेसे गुटकेमें बहुतसी सुवर्णकी राशि रहती है उसीप्रकार असंख्यात प्रदेशी आकाशमें साहजीक अवगाहना स्वभावसे अनंत जीवादि पदार्थ समा रहे हैं। वस्तुओंके स्वभाव वचनगम्य नहीं हैं सर्वज्ञ देव ही जानते हैं इसकारण जो अनुभवी हैं वे संदेह उपजाते नहीं वस्तुस्वरूपमें सदा निश्चल होकर आत्मीक अनंत सुख वेदते हैं ॥ ९१ ॥ आगें कोई प्रश्न करै कि धर्म अधर्मद्रव्य गतिस्थितिके कारण क्यों कहते हो आकाशको ही गतिस्थितिका कारण क्यों न कहदेते? उसका दूषण दिखाते हैं—[**यदि**] जो [**आकाशं**] आकाशनामक द्रव्य [**गमनस्थितिकारणाभ्यां**] चलने और स्थिरताके कारण धर्म अधर्म द्रव्योंके गुणोंसे [**अवकाशं**] जगह [**ददाति**] देता है [**तदा**] तो [**ऊर्ध्वगतिप्रधानाः**] ऊर्ध्व गमनवाले प्रसिद्ध जो [**सिद्धाः**] मुक्त जीव हैं वे [**तत्र**] सिद्ध क्षेत्रमें [**कथं**] कैसे [**तिष्ठन्ति**] रहते हैं? **भावार्थ**—जो गमनस्थितिका

---

१ जीवपुद्गलानाम् ।

यदि भवति गमनहेतुराकाशं स्थानकारणं तेषां ।
प्रसजत्यलोकहानिर्लोकस्य चान्तपरिवृद्धिः ॥ ९४ ॥

नाकाशं गतिस्थितिहेतुः लोकालोकसीमव्यवस्थायास्तथोपपत्तेः । यदि गतिस्थित्योराकाशमेव निमित्तमिष्येत्, तदा तस्य सर्वत्र सद्भावाज्जीवपुद्गलानां गतिस्थित्योर्निःसीमत्वात्प्रतिक्षणमलोको हीयते । पूर्वं पूर्वं व्यवस्थाप्यमानश्चान्तो लोकस्योत्तरोत्तरपरिवृद्ध्या विघटते । ततो न तत्र तद्धेतुरिति ॥ ९४ ॥

आकाशस्य गतिस्थितिहेतुत्वनिरासव्याख्योपसंहारोऽयम्,—

तम्हा धम्माधम्मा गमणट्ठिदिकारणाणि णागासं ।
इदि जिणवरेहिं भणिदं लोगसहावं सुणंताणं ॥ ९५ ॥

हेदू गमनहेतुः । किं । आयास आकाशं, न केवलं गमनहेतुः ठाणकारणं स्थितिकारणं [illegible] तेषां । तेसिं तेषां जीवपुद्गलानां । तदा किं दूषणं भवति । पसजदि प्रसजति प्रसङ्गं [illegible] । [illegible] । अलोगहाणी अलोकहानिः न केवलमलोकहानिः लोगस्स य अंतपरिवड्ढी लोकस्य चान्तपरिवृद्धिरिति । तथाहि । यथाकाशं गतिस्थित्योः कारणं च भवति तर्हि तस्या[illegible]कारस्य लोकबहिर्भागेऽपि सद्भावात्तत्रापि जीवपुद्गलानां गमनं भवति [illegible] हानिः [illegible] भवति लोकान्तस्य तु वृद्धिर्भवति न च तथा, तस्मात्कारणात् ज्ञायते नाकाशं गतिस्थित्योः कारणमित्यभिप्रायः ॥ ९४ ॥ अथाकाशस्य गतिस्थितिकारणनिराकरणव्याख्यानोपसंहारः कथ्यते,—

उन जीवपुद्गलोंको [गमनहेतु] गमन करनेकेलिये सहकारी कारण तथा [स्थान कारण] स्थितिको सहकारी कारण [भवति] होय ['तदा'] तो [अलोक हानि'] अलोकाकाशका नाश [प्रसजति] उत्पन्न होय [च] और [लोकस्य] लोकके [अन्तपरिवृद्धि] अवधी (पूर्णताकी) वृद्धि हो जायगी । भावार्थ— आकाश गतिस्थितिका कारण नहीं है क्योंकि—जो आकाश कारण हो जाय तो लोक अलोककी मर्यादा (हद) नहीं होती अर्थात् सर्वत्र ही जीव पुद्गलकी गतिस्थिति हो जाती । इसकारण लोक अलोककी मर्यादाका कारण धर्म अधर्म द्रव्य हो हैं [illegible] द्रव्यमें गतिस्थिति गुणका अभाव है जो ऐसा न होय तो अलोकाकाशका अभाव होता और लोकाकाश असंख्यात प्रदेशप्रमाणता धर्म अधर्म द्रव्योंसे सिद्ध हो [illegible] अर्थात् समस्त अलोकाकाशमें जीवपुद्गल फैल जाते अतएव गतिस्थिति गुण [illegible] नहीं है किंतु धर्म अधर्म द्रव्यका है । [illegible] [illegible] ॥ ९४ ॥

आगे आकाशके गतिस्थितिका कारण [illegible] —

[illegible]

तस्माद्धर्माधर्मौ गमनस्थितिकारणे नाकाश ।
इति जिनवरै भणित लोकस्वभाव शृण्वताम् ॥ ९५ ॥
धर्माधर्मावेव गतिस्थितिकारणे नाकाशमिति ॥ ९५ ॥

धर्माऽधर्माऽलोकाकाशानामवगाहनशादेकत्वेऽपि वस्तुत्वेनान्यत्वमनोक्तम्,—

धम्माधम्मागासा अपुधब्भूदा समाणपरिमाणा ।
पुधगुवलद्धिविसेसा करंति एगत्तमण्णत्त ॥ ९६ ॥

धर्माधर्माकाशान्यपृथग्भूतानि समानपरिमाणानि ।
पृथगुपलब्धिविशेषाणि कुर्वन्त्येकत्वमन्यत्व ॥ ९६ ॥

धर्माधर्मलोकाकाशानि हि समानपरिमाणत्वात्सहावस्थानमात्रेणैवैकत्वभाञ्जि । वस्तु

तस्माद्धर्माधर्मौ गमनस्थितिकारणे न चाकाश इति जिनवरैर्भणित । केषा सबधित्वेन । भव्याना । किंकुर्वता । समवशरणे लोकस्वभाव शृण्वतामिति भावार्थ ॥ ९५ ॥ एव धर्माधर्मौ गतिस्थित्यो कारण न चाकाशमिति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टय गत । अथ धर्माधर्माकाशानामेकक्षेत्रावगाहत्वाद्व्यवहारेणैकत्व निश्चयेन भिन्नत्व दर्शयति;—**धम्माधम्मागासा** धर्माधर्मलोकाकाशद्रव्याणि भवति । किविशिष्टानि । **अपुधभूदा समाणपरिमाणा** व्यवहारनयेनापृथग्भूतानि तथा समानपरिमाणानि च । पुनश्च किंरूपाणि । **पुधगुवलद्धविसेसा** निश्चयेन पृथग्रूपेणोपलब्धविशेषाणि । इत्थभूतानि सति किं कुर्वन्ति । **करंति** कुर्वन्ति **एयत्तमण्णत्त** व्यवहारेणैकत्व निश्चयेनान्यत्व चेति । तथाहि—यथाय जीव पुद्गलादि-

---

[तस्मात्] तिसकारणसे **[धर्माधर्मौ]** धर्म अधर्म द्रव्य **[गमनस्थितिकारणे]** गमन और स्थितिको निमित्त कारण हैं **[आकाश]** आकाश गमनस्थितिको कारण **[न]** नहीं है **[इति]** इसप्रकार **[जिनवरैः]** जिनेश्वर वीतराग सर्वज्ञने **[लोकस्वभाव]** लोकके स्वभावको **[शृण्वता]** सुननेवाले जो जीव हैं तिनको **[भणित]** कहा है ॥ ९५ ॥ आगें धर्म अधर्म आकाश ये तीनों ही द्रव्य एक क्षेत्रावगाहकर एक हैं परन्तु निजस्वरूपसे तीनों पृथक् पृथक् हैं ऐसा कहते हैं,—**[धर्माधर्माकाशानि]** धर्म अधर्म और लोकाकाश ये तीन द्रव्य व्यवहार नयकी अपेक्षा **[अपृथग्भूतानि]** एकक्षेत्रावगाही हैं अर्थात् जहा आकाश है वहा ही धर्म अधर्म ये दोनों द्रव्य हैं। कैसे हैं ये तीनों द्रव्य ? **[समान परिमाणानि]** बराबर हैं असख्यात प्रदेश जिनके ऐसे हैं। फिर कैसे हैं ? **[पृथगुपलब्धिविशेषाणि]** निश्चयनयकी अपेक्षा भिन्नभिन्न पाये जाते हैं भेद जिनके ऐसे हैं अर्थात् निज स्वभावसे टकोत्कीर्ण अपनी जुदी जुदी सत्ता लिये हुए हैं अत एव ये तीनों ही द्रव्य **[एकत्व]** व्यवहारनयकी अपेक्षा एकक्षेत्रावगाही हैं इस कारण एकभावको

त्तन्तु व्यवहारेण गतिस्थित्यवगाहहेतुत्वरूपेण निश्चयेन विभक्तप्रदेशत्वरूपेण विशेषेण पृथ-
गुपलभ्यमानान्यत्वभाजेव भवन्तीति ॥ ९६ ॥ इत्याकाशद्रव्यास्तिकायव्याख्यानम् ।

अथ चूलिका । अत्र द्रव्याणां मूर्तामूर्तत्वं चेतनाचेतनत्वं चोक्तम् —

आगासकालजीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।
मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥ ९७ ॥

आकाशकालजीवा धर्माधर्मौ च मूर्तिपरिहीना ।
मूर्तं पुद्गलद्रव्यं जीवः खलु चेतनस्तेषु ॥ ९७ ॥

स्पर्शरसगन्धवर्णसद्भावस्वभावं मूर्तं । स्पर्शरसगन्धवर्णाऽभावस्वभावममूर्तं, चैतन्यस
द्भावस्वभावं चेतनं । चैतन्याभावस्वभावमचेतनं । तत्रामूर्तमाकाशं अमूर्तः काल

एकद्रव्य साह देवजीवानां भेकक्षेत्रावगाहित्वाद्व्यवहारेणैकत्वं करोति निश्चयेन तु समस्तवस्तुग
तानन्तधर्मगुणप्रमाणेन परमचैतन्यविलासलक्षणज्ञानगुणेन भिन्नं च तथा धर्माधर्मलोकाका
शद्रव्याण्येकक्षेत्रावगाहनाभिन्नत्वा समानपरिमाणत्वाद्योपचरितासद्भूतव्यवहारेण परस्परमैकत्वं कुर्व
न्ति निश्चयनयेन गतिस्थित्यवगाहरूपस्वकीयस्वकीयलक्षणानानात्वं चेति सूत्रार्थः ॥ ९६ ॥ एवं
धर्माधर्मलोकाकाशानामेकत्वनानात्वकथनरूपेण तृतीयस्थले गाथासूत्रं गतं । इति पञ्चास्तिकाय
षड्द्रव्यप्रतिपादकप्रथममहाधिकारमध्ये गाथासप्तकेन स्थलत्रयेणाकाशास्तिकायव्याख्यानरूप
सप्तमोऽन्तराधिकारः समाप्तः । तदनन्तरमष्टगाथापर्यंतं पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यचूलिकाव्याख्यानं
करोति । तत्र गाथाद्वयमध्ये चेतनाचेतनमूर्तामूर्तत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आगास" इत्यादि
गाथासूत्रमेकं, अथ सक्रियनिष्क्रियत्वमुख्यत्वेन "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादि सूत्रमेकं,
पुनश्च प्रकारान्तरेण मूर्तामूर्तत्वकथनमुख्यत्वेन "जे खलु इंदियगेज्झा" इत्यादि सूत्रमेकं,
अथ नवजीर्णपर्यायादिस्थितिरूपो व्यवहारकालः जीवपुद्गलादीनां पर्यायपरिणतेः सहकारिकारण
भूतः कालाणुरूपो निश्चयकाल इति कालद्वयव्याख्यानमुख्यत्वेन "कालो परिणामभवो" इत्यादि
गाथाद्वयं, तदनन्तरं कालस्य द्रव्यलक्षणसंभवात् द्रव्यत्वं द्वितीयादिप्रदेशाभावादकायत्वमिति
प्रतिपादनमुख्यत्वेन "एदे कालागासा" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ पञ्चास्तिकायान्तर्गतस्य केवल-
ज्ञानदर्शनरूपशुद्धजीवास्तिकायस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिपरिणतिकाले निश्चयमोक्षमार्गभूतस्य

और [अन्यत्व] निश्चयनयकी अपेक्षा ये तीनों अपनी जुदी २ सत्ताके द्वारा भेद-
भावको [कुर्वन्ति] करते हैं । इसप्रकार इन तीनों द्रव्योंके व्यवहार निश्चय नयसे
अनेक विलास जानने ॥ ९६ ॥ यह आकाशास्तिकायका व्याख्यान पूर्ण हुवा ।
आगे द्रव्योंके मूर्त्त व अमूर्त्तत्व चेतनत्व अचेतनत्व इसप्रकार चार भाव दिखाते
हैं —[आकाशकालजीवा] आकाशद्रव्य कालद्रव्य और जीवद्रव्य [च]
और [धम्माधम्मा] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य [मूर्तिपरिहीना] स्पर्श रस

धर्मे, निष्क्रियोऽधर्म निष्क्रिय काल । जीवाना सक्रियत्वस्य बहिरङ्गसाधनं कर्मनोक-र्मोपचयरूपा पुद्गला इति । ते पुद्गलकरणा । तदभावान्निष्क्रियत्वं सिद्धानां । पुद्गलानां सक्रियत्वस्य बहिरङ्गसाधनं परिणामनिर्वर्तकः काल इति ते कालकरणा । नच कर्मादीनामिव कालस्याभाव । ततो न सिद्धानामिव निष्क्रियत्व पुद्गलानामिति ॥ ९८ ॥

मूर्तामूर्तलक्षणाख्यानमेतत् ।—

जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं हुंति ते मुत्ता ।
सेसं हवदि अमुत्तं चित्तं उभयं समादियदि ॥ ९९ ॥

स्वशरीरस्थापि परिणतेर्निः क्रियाविकारशुद्धात्मानुभूतिभावनाच्युतैर्जीवैर्यं समुपार्जिता कर्मनोकर्मपुद्गलास्त एव कारणं निमित्तं येषां ते जीवा पुद्गलकरणा भण्यते खंदा स्कन्धा स्कन्धशब्देनात्र स्कन्धाणुभेदभिन्नाद्विधा पुद्गला गृह्यते । ते च कथभूता । सक्रिया । कै कृत्वा । कालकरणाहिं परिणामनिर्वर्तककालाणुद्रव्यैः खलु स्फुट । अत्र यथा शुद्धात्मानुभूतिबलेन कर्मक्षये जाते कर्मनोकर्मपुद्गलानामभावात्सिद्धानां निःक्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात् । कालस्य सर्वदैव धणवत्या मूर्त्या रहितत्वादमूर्त विद्यमानत्वादिति भावार्थ ॥ ९८ ॥ एव सक्रियनिःक्रियत्वमुख्यत्वेन गाथा गता । अथ पुनरपि प्रकारान्तरेण मूर्तामूर्तस्वरूपं कथ-

---

और [स्कन्धा] पुद्गलस्कंध हैं वे [खलु] निश्चय करके [कालकरणा] कालद्रव्यके निमित्तसे क्रियावंत होकर नाना प्रकारकी अवस्थाको धरते हैं । भावार्थ— एक प्रदेशसे प्रदेशान्तरमें जो गमन करना उसका नाम क्रिया है सो षट्द्रव्योंमेंसे जीव और पुद्गल ये दोनों द्रव्य प्रदेशसे प्रदेशान्तरमें गमन करते हैं और कंपरूप अवस्थाको धरते हैं इसकारण क्रियावंत कहे जाते हैं और शेषके चार द्रव्य निष्क्रिय निष्कम्प हैं जीव द्रव्यकी क्रियाको निमित्त बहिरंगमें कर्म नोकर्मरूप पुद्गल हैं इनकी ही संगतिसे जीव अनेक विकाररूप होकर परिणमता है । और जब काल पायकर पुद्गलमयी कर्म नोकर्मका अभाव होता है तब साहजिक निष्क्रिय निष्कंप स्वाभाविक अवस्थारूप सिद्ध पर्यायको धरता है इसकारण पुद्गलका निमित्त पाकर जीव क्रियावान् जानना । और कालका बहिरंग कारण पाकर पुद्गल अनेक स्कंधरूप विकारको धारण करता है । इस कारण काल पुद्गलकी क्रियाको सहकारी कारण जानना । परंतु इतना विशेष है कि जीवद्रव्यकी तरह पुद्गल निष्क्रिय कभी भी नहीं होता । जीव शुद्ध हुये उपरांत क्रियावान् किसी कालमें भी नहीं होयगा पुद्गलका यह नियम नहीं है । सदा क्रियावान् परसहायसे रहता है ॥ ९८ ॥ आगें मूर्तअमूर्तका लक्षण कहते हैं,—[ये] जो [जीवै:]

---

१ जीवा २ पुद्गलकरणाभावात् ३ निष्पादक ४ अत्र यथा शुद्धात्मानुभूतिबलेन कर्मपुद्गलानामभावात्सिद्धानां निष्क्रियत्वं भवति न तथा पुद्गलानां । कस्मात्कालस्यैव सर्वत्रैव विद्यमानत्वादित्यर्थ ।

कालो जीवपुद्गलपरिणामेन निश्चीयते, निश्चयकालस्तु तत्परिणामान्यथानुपपत्त्येति । तत्र क्षणभङ्गी व्यवहारकालः, सूक्ष्मपर्य्यायस्य तावन्मात्रत्वात् । नित्यो निश्चयकालः स्वगुणपर्य्यायाधारद्रव्यत्वेन सर्वदैवाऽविनश्वरत्वादिति ॥ १०० ॥

नित्यक्षणिकत्वेन[3] कालविभागख्यापनमेतत्,—

कालो त्ति य ववदेसो सब्भावपरूवगो हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥ १०१ ॥

त्पुद्गलपरिणामस्तु शीतकाले पाठकस्याग्निवत् कुम्भकारचक्रभ्रमणविषयेऽधस्तनशिलावद्बहिरङ्ग सहकारिकारणभूतेन कालाणुरूपद्रव्यकालेनोत्पन्नत्वाद्द्रव्यकालसंभूत **दोण्ह एससहाओ** द्वयो निश्चयव्यवहारकालयोरेष पूर्वोक्त स्वभाव । स किंरूप व्यवहारकाल । पुद्गलपरिणामेन व्यज्यमानत्वात्परिणामजन्य । निश्चयकालस्तु परिणामजनक **कालो खणभंगुरो**—समयरूपो व्यवहारकाल क्षणभङ्गुर **णियदो** स्वकीयगुणपर्यायाधारत्वेन सर्वदैवाविनश्वरत्वाद्द्रव्यकालो नित्य इति । अत्र यद्यपि काललब्धिवशेन भेदाभेदरत्नत्रयलक्षण मोक्षमार्गं प्राप्य जीवो रागादिरहितनित्यानन्दैकस्वभावमुपादेयभूत पारमार्थिकसुख साधयति तथा जीवस्तस्योपादानकारण न च काल इत्यभिप्राय । तथा चोक्त । आत्मोपादानसिद्धमित्यादिरिति ॥ १०० ॥ अथ नित्यक्षणिकत्वेन पुनरपि कालभेद दर्शयति,—**कालोत्ति य ववदेसो** काल इति व्यपदेश सज्ञा । स च

[द्रव्यकालसंभूत.] निश्चयकालाणुरूप द्रव्यकालसे उत्पन्न है । **[द्वयो]** निश्चय और व्यवहार कालका **[एष.]** यह **[स्वभाव]** स्वभाव है । **[कालः]** व्यवहारकाल **[क्षणभंगुर]** समय समय विनाशीक है और **[नियत]** निश्चयकाल जो है सो अविनाशी है । **भावार्थ**—जो क्रमसे अतिसूक्ष्म हुवा प्रवर्ते है वह तो व्यवहारकाल है और उस व्यवहारकालका जो आधार है सो निश्चयकाल कहाता है । यद्यपि व्यवहारकाल है सो निश्चयकालका पर्याय है तथापि जीवपुद्गलके परिणामोंसे वह जाना जाता है । इसकारण जीवपुद्गलोंके नवजीर्णतारूप परिणामोंसे उत्पन्न हुवा कहा जाता है । और जीव पुद्गलोंका जो परिणमन है सो बाह्यमें द्रव्यकालके होतेसते समयपर्यायमें उत्पन्न है। इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि समयादिरूप जो व्यवहारकाल है सो तो जीवपुद्गलोंके परिणामोंसे प्रगट किया जाता है और निश्चयकाल जो है सो समयादि व्यवहारकालसे अविनाभावसे अस्तित्वको धरे है क्योंकि पर्यायसे पर्यायीका अस्तित्व ज्ञात होता है । इनमेंसे व्यवहारकाल क्षणविनाशर है क्योंकि पर्यायस्वरूपसे सूक्ष्म पर्याय इतने मात्र ही है जितने कि समयादिक हैं । और निश्चयकाल जो है सो नित्य है क्योंकि अपने गुणपर्यायस्वरूप द्रव्यसे सदा अविनाशी है ॥ १०० ॥ आगे कालद्रव्यका स्वरूप नित्यानित्यका भेद करके दिखाया जाता है,—

---

१ निश्चयः, २ व्यवहारः, ३ [illegible] निश्चयकाल ४ [illegible] व्यवहारकालः ।

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंस्यपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥ १०१ ॥

यो हि द्रव्यविशेष 'अयं कालः, अयं कालः,' इति सदा व्यपदिश्यते स खलु स्वस्य सद्भावमावेदयन् भवति नित्यः । यस्तु पुनरुत्पन्नमात्र एव प्रध्वस्यते स खलु तस्यैव द्रव्यविशेषस्य समयाख्यः पर्याय इति । स तूत्सङ्गितक्षणभङ्गोऽप्युपदर्शितस्वसंतानो नयबलाद्दीर्घान्तरस्थाय्युपगीयमानो न दुष्यति । ततो न खल्वाऽऽवलिकापल्योपमसागरोपमादिव्यवहारो विप्रतिषिध्यते । तदत्र निश्चयकालो नित्यः द्रव्यरूपत्वात् । व्यवहारकालः क्षणिकः पर्यायरूपत्वादिति ॥ १०१ ॥

किं करोति । सब्भावपरूवगो हवदि काल इत्यक्षरद्वयेन वाचकभूतेन स्वकीयवाच्य परमार्थकालसद्भाव निरूपयति । क इव किं निरूपयति । सिंहशब्द इव सिंहस्वरूप सर्वज्ञशब्द इव सर्वज्ञस्वरूपमिति । एव स्वकीयस्वरूप निरूपयन् कथभूतो भवति । णिच्चो यद्यपि काल इत्यक्षरद्वयरूपेण नित्यो न भवति तथापि कालशब्देन वाच्य यद्द्रव्यकालस्वरूप तेन नित्यो भवतीति निश्चयकालो ज्ञातव्य , अवरो अपरो व्यवहारकाल । स च किंरूप । उप्पण्णप्पद्धंसी यद्यपि वर्तमानसमयापेक्षयोत्पन्नप्रध्वंसी भवति तथापि पूर्वापरसमयसंतानापेक्षया व्यवहारनयेन दीहंतरट्ठाई आवलिकापल्योपमसागरोपमादिरूपेण दीर्घान्तरस्थायी च घटते नास्ति दोष । एवं नित्यक्षणिकरूपेण निश्चयव्यवहारकालो ज्ञातव्य । अथवा प्रकारान्तरेण निश्चयव्यवहारकालस्वरूप कथ्यते । तथाहि—अनाद्यनिधन समयादिकल्पनाभेदरहित कालाणुद्रव्यरूपेण व्यवस्थितो वर्णादिमूर्तिरहितो निश्चयकाल , तस्यैव पर्यायभूत सादिसनिधन समयनिमिषघटिकादि

[च] और [काल इति] काल ऐसा जो [व्यपदेश] नाम है सो निश्चयकाल [नित्य] अविनाशी है। भावार्थ—जैसें सिंहशब्द दो अक्षरका है सो सिंह नामा पदार्थका दिखानेवाला है जब कोई सिंहशब्दको कहै तब ही सिंहका ज्ञान होता है उसी प्रकार काल ये दो अक्षरके कहनेसे नित्य कालपदार्थ जाना जाता है । जिस प्रकार अन्य जीवादि द्रव्य हैं उस प्रकार एक कालद्रव्य भी निश्चयनयसे है [अपर] दूसरा जो समयरूप व्यवहारकाल है सो [उत्पन्नप्रध्वंसी] उपजता और विनशता है । तथा [दीर्घान्तरस्थायी] समयोंकी परंपरासे बहुत स्थिरतारूप भी कहा जाता है । भावार्थ—व्यवहारकाल सबसे सूक्ष्म समय नामवाला है सो उपजै भी है विनशै भी है और निश्चयकालका पर्याय है पर्याय उत्पादव्ययरूप सिद्धान्तमें कहा गया है उस समयकी अतीत अनागत वर्तमानरूप जो परंपरा लियी जाय सो आवली पल्योपम सागरोपम इत्यादि

---

१ स्वकीयस्य अभिधानम् २ कथमपि स्थिरो भवति । अत्र दृष्टान्त । यथा—यो हि अक्षरद्वयात्मा सिंहशब्द स स्वस्य सिंहनाम्न निरन्तरे सद्भावमस्तित्वमावेदयन् नित्यो भवति ४ व्यवहारकाल समयावलिपल्योपमसंतान वा क्रमेण समयोत्पन्नसंतान ।

नैमर्थतोऽर्थितयाऽनुयायैव जीवास्तिकायानन्तसमाभानं स्फुटमेवात्मनो विशुद्धं निखिलमात्र निथिल परस्परकार्यकारणीभूतानादिरागद्वेषपरिणामकर्मबन्धसन्ततिसमारोपितस्वरूपविकार तदात्वेऽनुभूयमानमवलोक्य तत्कालोन्मीलितविवेकज्योतिः कर्मबन्धसन्ततिप्रवर्तिका रागद्वेष परिणतिमत्यस्यति स खलु जीर्यमाणस्नेहो जघन्यस्नेहगुणाभिमुखपरमाणुरद्भाविबन्धपराङ्मुखः पूर्वबन्धात्प्रच्यवमानः शिखितप्तोदकदौस्थ्यानुकारिणो दुःखस्य परिमोक्षं विगाहत इति॥१०३॥

एवं विज्ञाय । किं करोति । जो मुयदि य जो मुञ्चति । कौ कर्मतापन्नौ । रायदोसे अनन्तज्ञानादिगुणसहितवीतरागपरमात्मनो विलक्षणौ हर्षविषादलक्षणौ भाविरागादिदोषोत्पादककर्मास्रवजनकौ च रागद्वेषौ द्वौ सो स पूर्वोक्त ध्याता गाहदि गाहते प्राप्नोति । क । दुक्खपरिमोक्खं निर्विकारात्मोपलब्धिभावनोत्पन्नपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतविपरीतस्य नानाप्रकार

अनिष्ट पदार्थोमें प्रीति और द्वेषभावको [मुञ्चति] छोडता है [सः] वह पुरुष [दुःखपरिमोक्षं] संसारके दुःखोंमे मुक्ति [गाहते] प्राप्त होता है । **भावार्थ**—द्वादशांगवाणीके अनुसार जितने सिद्धांत हैं तिनमें कालसहित पंचास्तिकायका निरूपण है और किसी जगह कुछ भी छूट नहीं किया है, इसलिये इस पंचास्तिकायमें भी यह निर्णय है इसकारण यह पंचास्तिकाय प्रवचन जो है सो भगवान्के प्रमाणवचनोंमें सार है । समस्त पदार्थोंका दिखानेवाला जो यह ग्रंथ समयसार पंचास्तिकाय है इसको जो कोई पुरुष शब्द अर्थकर भलीभांति जानेगा वह पुरुष षड्द्रव्योंमें उपादेयस्वरूप जो आत्मब्रह्म आत्मीय चैतन्यस्वभावसे निर्मल है चित्त जिसका ऐसा निश्चयसे अनादि अविद्यासे उत्पन्न रागद्वेषपरिणाम आत्मस्वरूपमें विकार उपजानेहारे हैं उनके स्वरूपको जानता है कि ये मेरे स्वरूप नहीं इसप्रकार जब इसको भेदविज्ञान होता है तब इसके परमविवेक ज्योति प्रगट होती है और कर्मबंधको उपजानेवाली रागद्वेषपरिणति नष्ट हो जाती है, तब इसके आगामी बंधपद्धति भी नष्ट होती है । जैसें परमाणु बंधकी योग्यतासे रहित अपने जघन्य स्नेहभावको परिणमता आगामी बंधसे रहित होता है उसी प्रकार यह जीव रागभावके नष्ट होनेसे आगामी बंधका कर्त्ता नहीं होता, पूर्वबंध अपना रसविपाक देकर खिर जाता है तब यह चतुर्गति दुःखसे निवर्ति होकर मोक्षपदको पाता है । जैसें परद्रव्यरूप अग्निके संबंधसे जल तप्त होता है वही जल काल पाकर तप्त विकारको छोडकर स्वकीय सीतलभावको प्राप्त होता है, उसी प्रकार भगवद्वचनको अंगीकार करके

१ परमार्थेन २ कार्यतया ३ वर्तमानकाले ४ त्यजति ५ पूर्वोक्त जीव ६ क्षीयमाणस्नेहो मोह यस्य एवंभूत सन् ७ यथा जघन्यस्नेहजघन्यस्निग्धगुणेन अभिमुखसहितपरमाणुः बध्यते पूर्वबंधात्प्रच्यवते च जघन्यस्निग्धत्वात् । स्नेहस्य जघन्यावस्थादित्यर्थः ८ अग्नितप्तोदक दौस्थ्य जाज्वल्यमान तप्तभाव अनुकारि सदृश नाशयत तन्दुःखस्य दुःखस्याभाव लभते । तद्यथा जलस्य शीतलस्वभावोऽस्ति परंतु अग्निसंयोगात्तस्य विकारभाव प्राप्नोति । पुनः कर्मबंधवत् यदाऽग्निसंयोगो विघटते तदा शुद्धस्वभाव सम्यक् शीतलस्वभाव लभत एव । तथाहि—यदा कर्मबंधरहित स आत्मा भवति तदा दुःखस्य अभाव लभते ।

दुःखविमोक्षकरणक्रमाख्यानमेतत्,—

मुणिऊण एतदट्ठं तदणुगमणुज्झदो णिहदमोहो ।
पसमियरागद्दोसो हवदि हदपरावरो जीवो ॥ १०४ ॥

ज्ञात्वैतदर्थं तदनुगमनोद्यतो निहतमोहः ।
प्रशमितरागद्वेषो भवति हतपरापरो जीवः ॥ १०४ ॥

एतस्य शास्त्रस्यार्थभूतं शुद्धचैतन्यस्वभावमात्मानं कश्चिज्जीवस्तावज्जानीते । ततस्तमे-वानुगन्तुमुद्यमते । ततोऽस्य क्षीयते दृष्टिमोहः । ततः स्वरूपपरिचयादुन्मज्जति ज्ञानज्यो

शारीरमानसरूपस्य चतुर्गतिदुःखस्य परिमोक्षं मोचनं विनाशमित्यभिप्रायः ॥ १०३ ॥ अथ दुःखमोक्षकारणस्य क्रमं कथयति,—**मुणिऊण** मत्वा विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा तावत् । कं । एदं इमं प्रत्यक्षीभूतं नित्यानंदैकशुद्धजीवास्तिकायलक्षणं अ थ अर्थं विशिष्टपदार्थं तमणु त शुद्धजीवास्तिकायलक्षणमर्थं अनुलक्षणीकृत्य समाश्रित्य **गमणुज्जुदो** गमनोद्यत तन्मयत्वेन परिणमनोद्यतः **णिहदमोहो** शुद्धात्मैवोपादेय इति रुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वप्रतिबंधकदर्शनमोहा भावात्तदनंतरं निहतमोहो नष्टदर्शनमोहः **पसमिददरागदोसो** निश्चलात्मपरिणतिरूपनि श्चयचारित्रप्रतिबंधकचारित्रमोहोदयाभावात्तदनंतरं प्रशमितरागद्वेषः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण सम्यग्द र्शने सति शुद्धात्मरुचिरूपे सम्यक्त्वे तथैव शुद्धात्मस्थितिरूपे चारित्रे च सति पश्चात् **हवदि** भवति । कथंभूत । **हदपरावरो** हतपरापरः । अत्र परमानन्दज्ञानादिगुणाधारत्वात्परशब्दन

ज्ञानी जीव कर्मविकारके आतापको नष्टकर आत्मीक शांतरसगर्भित सुखको पाता है ॥ १०३ ॥ आगे दुःखोंके नष्ट करनेका क्रम दिखाते हैं अर्थात् किस क्रमसे जीव संसारसे रहित होकर मुक्त होता सो दिखाते हैं,—[यः] जो पुरुष [एतदर्थं] इस ग्रंथके रहस्य शुद्धात्मपदार्थको [ज्ञात्वा] जानकर [तदनु-गमनोद्यतः] उस ही आत्मपदार्थमें प्रवीन होनेको उद्यमी [भवति] होता है [स जीवः] वह भेदविज्ञानी जीव [निहतमोहः] नष्ट किया है दर्शनमोह जिसने [प्रशमितरागद्वेषः] शांत होकर विला गए हैं रागद्वेष जिसमेंसे [हतपरापरः] नष्ट किया है पूर्वापर बंध जिसने ऐसा होकर मोक्षपदका अनुभवी होता है। भावार्थ—यह संसारी जीव अनादि अविद्याके प्रभावसे परभावोंमें आत्मस्वरूपत्व जानता है अज्ञानी होकर रागद्वेषभावरूप परिणमता है । जब काललब्धि पाय सर्वज्ञ वीतरागके वचनोंको अवधारन करता है तब इसके मिथ्यात्वका नाश होता है । भेदविज्ञानरूप सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट होती है । तत्पश्चात् चारित्र मोह भी नष्ट होता है । तब सर्वथा संकल्पविकल्पोंके अभावसे स्वरूपविषैं एकाग्रतासे लीन होता है । आगामी

१ दर्शनमोह २ प्रकटीभवति प्रकाशते ।

ति । ततो रागद्वेषौ प्रशाम्यत । तत उत्तरं पूर्वं च यथो निरस्यति । तत पुनर्बंहेतुत्वाभावात् स्वरूपस्थो नित्य प्रतपतीति ॥ १०४ ॥

इति समयव्याख्यायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायामन्तर्नीतषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायवर्णनात्मक प्रथम श्रुतस्कन्ध समाप्त ॥ १ ॥

अथ नवपदार्थाधिकारः ॥ २ ॥

"द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेन शुद्ध बुधानामिह तत्त्वमुक्तम् ।
पदार्थभङ्गेन कृतावतार प्रकीर्त्यते सम्प्रति वर्त्म तस्य ॥ १ ॥"

आप्तस्तुतिपुरस्सरा प्रतिज्ञेयम्,—

अभिवंदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं ।
तेसिं पयत्थभंगं मग्गं मोक्खस्स वोच्छामि ॥ १०५ ॥

मोक्षो भण्यते परशब्देनाभ्यामोक्षादपरो भिन्न परापर संसार इति हतो विनाशित परापरो येन स भवति हतपरापरो नष्टसंसार । स क । जीवो भव्यजीव ॥ १०४ ॥ इति पञ्चास्तिकायपरिज्ञानफलप्रतिपादनरूपेण पञ्चमस्थले गाथाद्वय गत । एव प्रथममहाधिकारमध्ये गाथाष्टकेन पञ्चभि स्थलैश्चूलिकासज्ञोऽष्टमोऽन्तराधिकारो ज्ञातव्य । अत्र पञ्चास्तिकायप्राभृतग्रन्थे पूर्वोक्तक्रमेण सप्तगाथाभि समयशब्दपीठिका, चतुर्दशगाथाभिर्द्रव्यपीठिका, पञ्चगाथाभिर्निश्चयव्यवहारकालमुख्यता, त्रिपञ्चाशद्गाथाभिर्जीवास्तिकायव्याख्यान, दशगाथाभि पुद्गलास्तिकायव्याख्यान सप्तगाथाभिर्धर्माधर्मास्तिकायद्वयविवरण, सप्तगाथाभिराकाशास्तिकायव्याख्यान, अष्टगाथाभिश्चूलिकामुख्यत्वमित्येकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टान्तराधिकारा गता ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ **पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादन** नाम प्रथमो महाधिकार समाप्त ॥ १ ॥

इत ऊर्ध्वं "अभिवंदिऊण सिरसा" इति इमा गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पञ्चाशद्गाथापर्यन्त टीकाभिप्रायेणाष्टाधिकचत्वारिंशद्गाथापर्यंत वा जीवादिनवपदार्थप्रतिपादको द्वितीयमहाधिकार

बंधका भी निरोध हो जाता है पिछला कर्मबंध अपना रस देकर गिर जाता है तब वह ही जीव निर्बंध अवस्थाको धारणपूर्वक मुक्त होकर अनतकालपर्यंत स्वरूपगुप्त अनतसुखका भोक्ता होता है ॥ १०४ ॥

इति श्रीपाडे **हेमराज**कृत पचास्तिकायसमयसार ग्रथकी बालबोधभाषाटीकामें षड्द्रव्यपचास्तिकायका व्याख्याननामक**प्रथमश्रुतस्कध** पूर्ण हुवा ॥ १ ॥

पूर्वकथनमें केवल मात्र शुद्ध तत्त्वका कथन किया है । अब नव पदार्थके भेद कथन करके मोक्षमार्ग कहते हैं जिसमें प्रथम ही भगवान्की स्तुति

---

१ पञ्चास्तिकायव्याख्यायाम् २ पदार्थावकल्पनेन भङ्गेन वा विवरणेन ३ शुद्धात्मतत्त्वस्य ।

अभिवन्द्य शिरसा अपुनर्भवकारणं महावीरं ।
तेषां पदार्थभङ्गं मार्गं मोक्षस्य वक्ष्यामि ॥ १०५ ॥

अमुना हि प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य मूलकर्तृत्वेनाऽपुनर्भवकारणस्य भगवतः परमभट्टारकमहादेवाधिदेवश्रीवर्द्धमानस्वामिनः सिद्धिनिबन्धनभूतां भावस्तुतिमासूत्र्य, कालकलितपञ्चास्तिकायानां पदार्थविकल्पो मोक्षस्य मार्गश्च वक्तव्यत्वेन प्रतिज्ञात इति ॥ १०५ ॥

प्रारभ्यते। तत्र तु दशान्तराधिकारा भवन्ति। तेषु दशाधिकारेषु मध्ये प्रथमतस्तावन्नमस्कारगाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयपर्यंतं व्यवहारमोक्षमार्गमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोतीति प्रथमांतराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि। अन्तिमतीर्थकरपरमदेवं नत्वा पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यसंबंधिनवपदार्थभेदं मोक्षमार्गं च वक्ष्यामीति प्रतिज्ञापुरःसरं नमस्कारं करोति,—**अभिवदिऊण सिरसा अपुणब्भवकारणं महावीरं** अभिवन्द्य प्रणम्य। केन। शिरसा। कं। अपुनर्भवकारणं महावीरं। ततः किं करोमि। **वोच्छामि** वक्ष्यामि। कं। **तेसिं पयत्थभंगं** तेषां पञ्चास्तिकायषड्द्रव्याणां नवपदार्थभेदं। न केवलं नवपदार्थभेदं। **मग्गं मोक्खस्स** मार्गं मोक्षस्येति। तद्यथा। मोक्षसुखसुधारसपानपिपासितानां भव्यानां पारंपर्येणानन्तज्ञानादिगुणफलस्य मोक्षकारणं महावीराभिधानमन्तिमजिनेश्वरं रत्नत्रयात्मकस्य प्रवर्तमानमहाधर्मतीर्थस्य प्रतिपादकत्वात्प्रथमत एव प्रणमामीति गाथापूर्वार्धेन मंगलार्थमिष्टदेवतानमस्कारं करोति प्रथकार, तदनंतरमुत्तरार्धेन च शुद्धात्मरुचिप्रतीतिनिश्चलानुभूतिरूपस्याभेदरत्नत्रयात्मकस्य निश्चयमोक्षमार्गस्य परंपरया कारणभूतं व्यवहारमोक्षमार्गं तस्यैव व्यवहारमोक्षमार्गस्यावयवभूतयोर्दर्शनज्ञानयोर्विषयभूतान्नवपदार्थांश्च प्रतिपादयामीति प्रतिज्ञां च करोति। अत्र यद्यप्यग्रे चूलिकायां मोक्षमार्गस्य विशेषव्याख्यानमस्ति तथापि नवपदार्थानां संक्षेपसूचनार्थमत्रापि भणितं। कथं संक्षेपसूचनमितिचेत्। नवपदार्थव्याख्यानं तावदत्र प्रस्तुतं। ते च कथंभूताः। व्यवहारमोक्षमार्गे

करते हैं क्योंकि जिसका वचन प्रमाण है सो पुरुष प्रमाण है और पुरुषप्रमाणसे वचनकी प्रमाणता है;—मैं कुन्दकुन्दाचार्य जो हूं सो [**अपुनर्भवकारणं**] मोक्षके कारणभूत [**महावीरं**] वर्द्धमान तीर्थंकर भगवान्‌को [**शिरसा**] मस्तक द्वारा [**अभिवन्द्य**] नमस्कार करके [**मोक्षस्य मार्गं**] मोक्षके मार्ग अर्थात् कारणस्वरूप [**तेषां**] उन षड्द्रव्योंके [**पदार्थभङ्गं**] नवपदार्थरूप भेदको [**वक्ष्यामि**] कहूंगा। **भावार्थ**—यह जो वर्तमान पंचमकाल है इसमें धर्मतीर्थके कर्ता भगवान परम भट्टारक देवाधिदेव श्रीवर्द्धमानस्वामीकी मोक्षमार्गकी साधनहारी स्तुति करके मोक्षमार्गके दिखानेवाले षड्द्रव्योंके विकल्प नवपदार्थरूप भेद दिखानेयोग्य है,

१ सूत्रम्।

मोक्षमार्गस्यैव तावत्सूचनेयम्,—

सम्मत्तणाणजुत्तं चारित्तं रागदोसपरिहीणं ।
मोक्खस्स हवदि मग्गो भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥ १०६ ॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं चारित्रं रागद्वेषपरिहीनं ।
मोक्षस्य भवति मार्गो भव्यानां लब्धबुद्धीनां ॥ १०६ ॥

सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव नासम्यक्त्वज्ञानयुक्तं, चारित्रमेव नाचारित्रं, रागद्वेषपरिहीणमेव न रागद्वेषापरिहीणम्, मोक्षस्यैव न भावतो बंधस्य, मार्ग एव नामार्ग, भव्यानामेव

विषयभूता इत्यभिप्रायः ॥ १०५ ॥ अथ प्रथमतस्तावन्मोक्षमार्गस्य संक्षेपसूचनां करोति;— **सम्मत्तणाणजुत्तं** सम्यक्त्वज्ञानयुक्तमेव न च सम्यक्त्वज्ञानरहितं **चारित्तं** चारित्रमेव न चाचारित्रं **रागदोसपरिहीणं** रागद्वेषपरिहीनमेव न च रागद्वेषसहितं **मोक्खस्स हवदि** स्वात्मोपलब्धिरूपस्य मोक्षस्यैव भवति न च शुद्धात्मानुभूतिप्रच्छादकबंधस्य **मग्गो** अनंतज्ञानादिगुणामौल्यरत्नपूर्णस्य मोक्षनगरस्य मार्ग एव नैवामार्गः **भव्वाणं** शुद्धात्मस्वभावरूपव्यक्तियोग्यतासहितानां भव्यानामेव न च शुद्धात्मरूपव्यक्तियोग्यतारहितानामभव्यानां **लद्धबुद्धीणं** एव्यनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपबुद्धीनामेव न च मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपविषयानंदस्वसंवेदनकुबुद्धिसहितानां, क्षीणकषायशुद्धात्मोपलंभे सत्येव भवति न च सकषायाशुद्धात्मोपलंभे भवतीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामष्टविधनियमोऽत्र द्रष्टव्यः । अन्वयव्यतिरेकलक्षणं कथ्यते । तथाहि—सति संभवोऽन्वयलक्षणं असत्यसंभवो व्यतिरेकलक्षणं, तत्रोदाहरणं—निश्चयव्यवहारमोक्षकारणे सति

ऐसी श्रीकुंदकुंदस्वामीने प्रतिज्ञा कीनी ॥ १०५ ॥ आगें मोक्षमार्गका संक्षेप कथन करते हैं;—[**सम्यक्त्वज्ञानयुक्तं**] सम्यक्त्व कहिये श्रद्धान और यथार्थ वस्तुका परिच्छेदनकर सहित जो [**चारित्रं**] आचरण है सो [**मोक्षस्य मार्गः**] मोक्षका मार्ग [**भवति**] है अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र इन तीनोंहीका जब एकवार परिणमन होता है तब ही मोक्षमार्ग होता है । कैसा है दर्शनज्ञानयुक्त चारित्र [**रागद्वेषपरिहीनं**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेषरहित समतारसगर्भित है। ऐसा मोक्षमार्ग किनके होता है ? [**लब्धबुद्धीनां**] प्राप्त भई है स्वपरविवेकभदरि ज्ञानबुद्धि जिनको ऐसे [**भव्यानां**] मोक्षमार्गके सन्मुख जे जीव हैं तिनके होता है। **भावार्थ**—चारित्र वही है जो दर्शन ज्ञानसहित है दर्शनज्ञानके विना जो चारित्र है सो मिथ्या चारित्र है । जो चारित्र है वह ही चारित्र है न कि मिथ्याचारित्र चारित्र होता है । और चारित्र वही है जो रागद्वेषरहित समतारसमयुक्त है । जो कषायकर मलीन है सो चारित्र नहीं है कषायरूप है । जो ऐसा चारित्र है सो रागद्वेषरहित-

---

१ [illegible] २ पु० [illegible] ।

यापादिताश्रद्धानाभावस्वभावं, भावातरश्रद्धानं, सम्यग्दर्शनं शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्ववि-
निश्चयबीजम् । तेषामेव मिथ्यादर्शनोदयान्नौयानसंस्कारादिस्वरूपविपर्ययेणाध्यवसीयमा-
नाना तन्निवृत्तौ समञ्जसाध्यवसायः । सम्यग्ज्ञानं मनाक् ज्ञानचेतनाप्रधानात्मतत्त्वो
पलम्भबीजम् । सम्यग्दर्शनज्ञानसन्निधानादमार्गेभ्य समग्रेभ्य परिच्युत्य स्वतत्त्वे विशेषा
रूढमार्गाणा सतामिन्द्रियानिन्द्रियविषयभूतेष्वर्थेषु, रागद्वेषपूर्वकविकाराभावान्निर्विकारा
बोधस्वभाव समभावश्चारित्र तदात्वायतिरमणीयमनणीयसोऽपुनर्भवसौख्यस्यैकबीजम् ।

संवित्ति । भावाण पचास्तिकायषड्द्रव्यविकल्परूप जीवाजीवद्वय जीवपुद्गलसयोगपरिणामोत्पन्न
स्रवादिपदार्थसप्तक चेत्युक्तलक्षणाना भावाना जीवादिनवपदार्थाना । इद तु नवपदार्थविषयभूत
व्यवहारसम्यक्त्व । किंविशिष्ट । शुद्धजीवास्तिकायरुचिरूपस्य निश्चयसम्यक्त्वस्य छद्मस्थावस्थाया
आत्मविषयस्वसवेदनज्ञानस्य परपरया बीज, तदपि स्वसवेदनज्ञान केवलज्ञानबीज भवति ।
चारित्त चारित्र भवति । स क । समभावो समभाव । केषु । विषयेषु इन्द्रियमनोगतसु
खदु खोपत्तिरूपशुभाशुभविषयेषु । केषा भवति । विरूढमग्गाण पूर्वोक्तसम्यक्त्वज्ञान
बलेन समस्तान्यमार्गेभ्य प्रच्युत्य विशेषेण रूढमार्गाणा परिज्ञातमोक्षमार्गाणा । इद तु

प्रतीतिपूर्वक दृढता सो [सम्यक्त्व] सम्यग्दर्शन है [तेषां] उन ही पदार्थोंका
जो [अधिगम] यथार्थ अनुभवन सो [ज्ञान] सम्यग्ज्ञान है [विषयेषु]
पचेन्द्रियोंके विषयोंमें [अविरूढमार्गाणां] नहीं की है अति दृढतासे प्रवृत्ति
जिन्होंने ऐसे भेद विज्ञानी जीवोंका जो [समभाव] रागद्वेषरहित शान्तस्वभाव
सो [चारित्र] सम्यक्चारित्र है । **भावार्थ**—जीवोंके अनादि अविद्याके उदयसे
विपरीत पदार्थोंकी श्रद्धा है । काललब्धिके प्रभावसे मिथ्यात्व नष्ट होय तब पदार्थोंकी
जो यथार्थ प्रतीति होय उसका नाम सम्यग्दर्शन है । वही सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्यस्व-
रूप आत्मपदार्थके निश्चय करनेका बीजभूत है । मिथ्यात्वके उदयसे सशय विमोह
विभ्रमस्वरूप पदार्थोंका ज्ञान होता है जैसें नावपर चढते हैं तो बाहरके स्थिर पदार्थ
चलतेहुये दिखाई देते हैं इसीको विपरीतज्ञान कहते हैं सो जब मिथ्यात्वका नाश हो
जाता है तब यथार्थ पदार्थोंका ग्रहण होता है । उसी यथार्थ ज्ञानका हो नाम सम्यग्ज्ञान

१ कथभूत सम्यग्दर्शन शुद्धचैतन्यस्वरूपात्मतत्त्वविनिश्चयबीजम् २ नवपदार्थानामेव ३ यथा नौयान
संस्कारात्स्वरूपविपर्ययेणस्थनेन नापि स्थितस्य वृक्षस्य गमन न दृश्यते । अ यथा स्थिरीभूताना सर्वेषा
वृक्षपर्वतादीना गमन दृश्यते। पुन स्वसंस्कारात्स्वरूपविपर्ययात्। अनेन संस्कारात्स्वरूपविपर्ययेण अध्यवसी
यमानाना निश्चीयमानाना तथा मिथ्यादर्शनोदयात् स्वरूपविपर्ययेण गृहीताना नवपदार्थानाम् ४ पुन
तन्निवृत्तौ मिथ्यात्वस्य निवृत्तौ सत्याम् ५ सम्यग्निर्णय ६ कथभूत सम्यग्ज्ञान मनाक् ज्ञानचेतनाया
प्रधानात्मतत्त्वोपलम्भबीजम् ७ मार्ग अन्यमार्गा तेभ्य ८ कथभूत चारित्र तदात्वायतिरमणीय वर्तमाने
उत्तरकाले च रमणीय सुखदायक । पुन कीदृशम् अनणीयस अपुनर्भवसौख्यस्यैकबीज । अनणीयस महत
अपुनर्भवसौख्यस्य मोक्षस्य एक बीजम् ।

जीवपुद्गलसंयोगपरिणामनिर्वृत्ताः सप्तान्ये च पदार्थाः । शुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानां च पुण्यम् । अशुभपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामः पुद्गलानां च पापम् । मोहरागद्वेषपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां चास्रवः । मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो जीवस्य, तन्निमित्तः कर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां च संवरः । कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्बृंहितशुद्धोपयोगो जीवस्य, तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानां च निर्जरा । मोहरागद्वेषस्निग्धपरिणामो जीवस्य, तन्निमित्तेन कर्मत्वप

दानपूजाषडावश्यकादिरूपो जीवस्य शुभपरिणामो भावपुण्यं भावपुण्यनिमित्तेनोत्पन्नः सद्वेद्यादिशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपरमाणुपिंडो द्रव्यपुण्यं, मिथ्यात्वरागादिरूपो जीवस्याशुभपरिणामो भावपापं तन्निमित्तेनासद्वेद्याद्यशुभप्रकृतिरूपः पुद्गलपिंडो द्रव्यपापं, निरास्रवशुद्धात्मपदार्थविपरीतो रागद्वेषमोहरूपो जीवपरिणामो भावास्रवः, भावनिमित्तेन कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानां योगद्वारेणागमनं द्रव्यास्रवः, कर्मनिरोधे समर्थो निर्विकल्पकात्मोपलब्धिपरिणामो भावसंवरः तेन भावनिमित्तेन नवतरद्रव्यकर्मागमनिरोधो द्रव्यसंवरः, कर्मशक्तिशातनसमर्थो द्वादशतपोभिर्वृद्धिं गतः शुद्धोपयोगः संवरपूर्विका भावनिर्जरा तेन शुद्धोपयोगेन नीरसीभूतस्य चिरन्तनकर्मण एकदेशगलनं द्रव्यनिर्जरा,

---

अजीव पदार्थ [**पुण्यं**] एक पुण्य पदार्थ [**च**] और [**पापं**] एक पाप पदार्थ [**तयोः**] उन दोनों पुण्यपापोंका [**आस्रवं**] आत्मामें आगमन सो एक आस्रव पदार्थ [**संवरनिर्जरबंधाः**] संवर निर्जरा और बंध ये तीन पदार्थ हैं । [**च**] और [**मोक्षः**] एक मोक्ष पदार्थ है इसप्रकार जो हैं [**ते**] वे [**अर्थाः**] नव पदार्थ [**भवन्ति**] होते हैं । **भावार्थ**—जीव १ अजीव २ पुण्य ३ पाप ४ आस्रव ५ संवर ६ निर्जरा ७ बंध ८ और मोक्ष ९ ये नव पदार्थ जानने । चेतना लक्षण है जिसका सो **जीव** है । चेतनारहित जड पदार्थ **अजीव** हैं सो पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और कालद्रव्य ये पांच प्रकार अजीव हैं । ये जीव अजीव दोनों ही पदार्थ अपने भिन्नस्वरूपके अस्तित्वसे मूलपदार्थ हैं इनके अतिरिक्त जो सात पदार्थ हैं वे जीव और पुद्गलोंके संयोगसे उत्पन्न हुये हैं । सो दिखाये जाते हैं जो जीवके शुभपरिणाम होय तो उस शुभपरिणामके निमित्तसे पुद्गलके शुभकर्मरूप शक्ति होय उसको **पुण्य** कहते हैं । जीवके अशुभपरिणामोंके निमित्तसे पुद्गल वर्गणाओंमें अशुभकर्मरूप परिणतिशक्ति होय उसको **पाप** कहते हैं । मोहरागद्वेषरूप जीवके परिणामोंके निमित्तसे मनवचनकायरूप योगद्वारा पुद्गलकर्म

---

१ भावपुण्यम् २ तदेव भावपुण्यं निमित्तं कारणं यस्य सः ३ [illegible] द्रव्यपुण्यं ४ वर्धित—
५ तस्य शुद्धोपयोगस्य अनुभावः प्रभावः तेन कारणेन रसरहितानां समुपात्तकर्मपुद्गलानां च निर्जरा ज्ञातव्या ।

ष्पितानां जीवस्य सद्धायो यस्संश्लेषः पुद्गलानाम् बन्धः । अत्यन्तशुद्धात्मोपलम्भो जीवस्य जीवेन सद्धात्यन्तविश्लेषः कर्मपुद्गलानां च मोक्ष इति ॥ १०८ ॥

अथ जीवपदार्थानां व्याख्यानं प्रपञ्चनीयम् । जीवस्वरूपोपदेशोऽयम्,—

जीवा संसारत्था णिव्वादा चेदणप्पगा दुविहा ।
उवओगलक्खणा वि य देहादेहप्पवीचारा ॥ १०९ ॥

जीवाः संसारस्था निर्वृत्ताः चेतनात्मका द्विविधाः ।
उपयोगलक्षणा अपि च देहादेहप्रवीचाराः ॥ १०९ ॥

जीवा हि द्विविधाः । संसारस्था अशुद्धा निर्वृत्ताः शुद्धाश्च । ते खलूभयेऽपि चेतन

प्रहण्यास्मि रूपपरमात्मपदार्थप्रतिकूलो मिथ्यात्वरागादिस्निग्धपरिणामो भावबन्धः भावबन्धनिमित्तेन तन्मूर्तिशरीरे मूर्तिपरजीवकर्मप्रदेशानामन्योन्यसंश्लेषो द्रव्यबन्धः, कर्मनिर्मूलनसमर्थः शुद्धात्मोपलब्धिरूपजीवपरिणामो भावमोक्षः भावमोक्षनिमित्तेन जीवकर्मप्रदेशानां निरवशेषः पृथग्भावो द्रव्यमोक्ष इति सूत्रार्थः ॥ १०८ ॥ एवं जीवाजीवादिनवपदार्थानां नामनिर्देशसूचनमुख्यत्वेन गाथासूत्रमेकं गतं । तदनंतरं पञ्चदशगाथापर्यन्तं जीवपदार्थाधिकारः कथ्यते । तत्र पञ्चदशगाथासु मध्ये प्रथमतस्तावज्जीवपदाधिकारसूचनमुख्यत्वेन "जीवा संसारत्था" इत्यादि गाथासूत्रमेकं अथ पृथ्वीकायादिस्थावरैकेन्द्रियपञ्चमुख्यत्वेन "पुढवीय" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ विकलेन्द्रियत्रयव्याख्यानमुख्यत्वेन "संवुक्क" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिचतुष्टयविशिष्टपञ्चेन्द्रियकथनरूपेण "सुरणर" इत्यादि पाठक्रमेण गाथाचतुष्टयं, अथ भेदभावनामुख्यत्वेन हिताहितकर्तृत्वा

वर्गणाओंका जो आगमन सो **आस्रव** है । और जीवके मोहरागद्वेष परिणामोंके रोकनेवाला जो भाव होय उसका निमित्त पाकर योगोंके द्वारा पुद्गल वर्गणाओंके आगमनका निरोध होना सो **संवर** है । कर्मोंकी शक्तिके घटानेको समर्थ बहिरंग अतरंग तपोंसे बढ़मान ऐसे जो जीवके शुद्धोपयोगरूप परिणाम, तिनके प्रभावसे पूर्वोपार्जित कर्मोंका नीरस भाव होकर एकदेश क्षय हो जाना उसका नाम **निर्जरा** है । और जीवके मोहरागद्वेषरूप स्निग्ध परिणाम होंय तो उनके निमित्तसे कर्मवर्गणारूप पुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंसे परस्पर एक क्षेत्रावगाह करके संबंध होना सो **बंध** है । जीवके अत्यंत शुद्धात्मभावकी प्राप्ति होय उसका निमित्त पाकर जीवसे सर्वथा प्रकार कर्मोंका छूटजाना सो **मोक्ष** है ॥ १०८ ॥ आगें जीवपदार्थका व्याख्यान किया जाता है जिसमें जीवका स्वरूप नाममात्रकर दिखाया जाता

१ एकदेशमहृय २ संसारी ३ द्रव्यबंध ३ आस्रवति इति वा पाठ ४ संसारस्थाः निवृत्त तत्र संसारस्था अशुद्धा ज्ञातव्याः पुनः निवृत्ता शुद्धा ज्ञातव्या इत्यर्थः ।

स्वभावा । चेतनपरिणामलक्षणेनोपयोगेन लक्षणीया । ता संसारस्था देहप्रवीचारा । निर्वृत्ता अदेहप्रवीचारा इति ॥ १०९ ॥

पृथिवीकायादिपञ्चभेदोद्देशोऽयम्,—

पुढवी य उदगमगणी वाउवणप्फदिजीवसंसिदा काया (?) ।
देंति खलु मोहबहुलं फासं बहुगा वि ते तेसिं ॥ ११० ॥

पृथिवी चोदकमग्निर्वायुर्वनस्पती जीवसंश्रिता काया ।
ददति खलु मोहबहुलं स्पर्शं बहुका अपि ते तेषां ॥ ११० ॥

पृथिवीकाया, अप्काया, तेजःकाया, वायुकाया, वनस्पतिकाया, इत्येते पुद्गल

भोक्तृत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन च "ण हि इंदियाणि" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ जीवपदार्थोपसंहारमुख्यत्वेन तथैव जीवपदार्थप्रारम्भमुख्यत्वेन च "एवमभिगम्म जीवं" इत्यादि सूत्रमेकं । एवं पंचदशगाथाभिः षट्स्थलैर्द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तथाहि । जीवस्वरूपं निरूपयति,—जीवा भवंति । किंविशिष्टाः । **संसारत्था णिव्वादा** संसारस्था निर्वृताश्चैव **चेदणप्पगा दुविहा** । चेतनात्मका उभयेपि कर्मचेतनाकर्मफलचेतनात्मकाः संसारिणः शुद्धचेतनात्मका मुक्ता इति **उवओगलक्खणा वि य** उपयोगलक्षणा अपि च । आत्मनश्चैतन्यानुविधायिपरिणाम उपयोगः केवलज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा मुक्ता क्षायोपशमिका अशुद्धोपयोगयुक्ताः संसारिणः **देहा देहप्पवीचारा** देहा देहप्रवीचाराः अदेहास्तद्विपरीता देहप्रवीचाराः अदेहाः सिद्धा इति सूत्रार्थः ॥ १०९ ॥ एवं जीवाधिकारसूचनगाथारूपेण प्रथमस्थलं गतं । अथ पृथिवीकायादिपञ्चभेदान् प्रतिपादयति,—पृथिवीजलाग्निवायुवनस्पतिजीवान् कर्मतापन्नान् संश्रिताः कायाः ददति प्रयच्छंति खलु स्फुटं । कं । मोहबहुलं स्पर्शविषयं बहुका अतर्भेदैर्बहुसंख्या अपि ते

है,—[जीवा:] आत्मपदार्थ हैं ते [द्विविधा:] दो प्रकारके हैं । एक तो [संसारस्था] संसारमें रहनेवाले अशुद्ध हैं दूसरे [निर्वृत्ता:] मोक्षावस्थाको प्राप्त होकर शुद्ध हुये सिद्ध हैं । वे जीव कैसे हैं? [चेतनात्मका] चैतन्यस्वरूप हैं [उपयोगलक्षणा] ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोग (परिणाम) वाले हैं । [अपि] निश्चयसे [च] फिर कैसे हैं वे दो प्रकारके जीव? [देहादेहप्रवीचारा:] एक तो देहकरके संयुक्त भोगनेवाले संसारी हैं । एक देहरहित हैं वे मुक्त हैं ॥ १०९ ॥

आगे पृथिवीकायादि पांच थावरोंके भेद दिखाते हैं—[पृथिवी] पृथिवीकाय [च] और [उदकम्] जलकाय [अग्नि] अग्निकाय [वायुवनस्पती] वायु और वनस्पतिकाय [कायाः] ये पांच थावरकायके भेद जानने [ते] वे

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible]
[illegible]

जीवत्वं निश्चीयते, तेन प्रकारेणैकेन्द्रियाणामपि उभयेषामपि बुद्धिपूर्वकव्यापारादर्शनस्य समानत्वादिति ॥ ११३ ॥

द्वीन्द्रियप्रकारसूचनेयम्,—

संबुक्कमादुवाहा संखा सिप्पी अपादगा य किमी ।
जाणंति रसं फासं जे ते बे इंदिया जीवा ॥ ११४ ॥

शंबूकमातृवाहाः शंखाः शुक्तयोऽपादकाः च कृमयः ।
जानन्ति रसं स्पर्शं ये ते द्वीन्द्रिया जीवाः ॥ ११४ ॥

मूर्छागताश्च यादृशा ईहापूर्वव्यवहाररहिता भवन्ति तादृशा एकेन्द्रियजीवा ज्ञेया इति । तथाहि—यथाण्डजादीनां शरीरपुष्टिं दृष्ट्वा बहिरंगव्यापाराभावेपि चैतन्यास्तित्वं गम्यते म्लानतां दृष्ट्वा नास्तित्वं च ज्ञायते तथैकेन्द्रियाणामपि । अयमत्र भावार्थ । परमार्थेन स्वाधीनानन्तज्ञानसुख सहितोपि जीवः पश्चादज्ञानेन पराधीनेन्द्रियसुखासक्तो भूत्वा यत्कर्म बध्नाति तेनात्मानमेकेन्द्रियजं दुःखितं चात्मानं करोतीति ॥ ११३ ॥ एवं पंचस्थावरव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतं । अथ द्वीन्द्रियभेदान् प्ररूपयति,—शंबूकमातृवाहा शंखा

दिखाते हैं,—[यादृशाः] जिसप्रकार [अंडेषु] पक्षियोंके अंडोंमें [प्रवर्द्धमानाः] बढतेहुये जो जीव हैं [तादृशाः] उसीप्रकार [एकेन्द्रियाः] एकेन्द्रियजातिके [जीवाः] जीव [ज्ञेयाः] जानने । भावार्थ—जैसें अंडमें जीव बढता है परन्तु ऊपरसे उसके उस्वासादिक वा जीव मालूम नहीं होता उसीप्रकार एकेन्द्रिय जीव प्रगट नहीं जाना जाता परन्तु अंतर गुप्त जानलेना—जैसें वनस्पति अपनी हरितादि अवस्थाओंसे जीवत्वभावका अनुमान जताती है। तैसें सब स्थावर अपने जीवनगुणगर्भित हैं [च] तथा [यादृशाः] जैसें [गर्भस्थाः] गर्भमें रहतेहुये जीव ऊपरसे मालूम नहीं होते जैसें जैसें गर्भ बढता है तैसें तैसें उसमें जीवका अनुमान किया जाता है तथा [मूर्च्छां गताः] मूर्च्छाको प्राप्त हुये [मानुषाः] मनुष्य जैसें मृतकसदृश दीखते हैं परंतु अंतरविषै जीव गर्भित हैं। उसीप्रकार पांच प्रकारके स्थावरोंमें भी ऊपरसे जीवकी चेष्टा मालूम नहीं होती परंतु आगमसे तथा [illegible] जीवोंकी प्रफुल्लित अवस्थाओंसे चैतन्य मालूम होता है ॥ ११३ ॥

आगे द्वीन्द्रिय जीवोंके भेद दिखाते हैं—[ये] जो [शंबूकमातृवाहाः] सबूक ([illegible]) और मातृवाह तथा [शंखाः शुक्तयः] शंख सीपें [च अपादकाः कृमयः] पांवरहित [illegible] कृमि [illegible] [illegible] जीव हैं वे [रसं स्पर्शं] रस और स्पर्श [illegible] अर्थात् जीभसे स्वाद और [illegible]

1 आत्म व निश्चीयते [illegible]
पक्षा

एते स्पर्शनरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसयोः परिच्छेत्तारो द्वीन्द्रिया अमनसो भवन्तीति ॥ ११४ ॥

त्रीन्द्रियप्रकारसूचनेयम्,—

जूगागुंभीमक्कणपिपीलिया विच्छियादिया कीडा ।
जाणंति रस फास गंध तेइंदिया जीवा ॥ ११५ ॥

यूकाकुंभीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः कीटाः ।
जानन्ति रसं स्पर्शं गंधं त्रींद्रिया जीवाः ॥ ११५ ॥

एते स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति, स्पर्शरसगंधानां परिच्छेत्तारस्त्रीन्द्रिया अमनसो भवन्तीति ॥ ११५ ॥

त्त्यपादगङ्कमयः कर्तारः स्पर्शरसद्वयं जानन्त्येते जीवा यतस्ततो द्वीन्द्रिया भवन्तीति । तद्यथा । शुद्धनयेन द्वीन्द्रियस्वरूपात्पृथग्भूतं केवलज्ञानदर्शनद्वयादपृथग्भूतं यत् शुद्धजीवास्तिकायस्वरूपं तद्भावनोत्थसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादरहितैः स्पर्शनरसनेन्द्रियादिविषयसुखरसास्वादसहितैर्जीवैर्यदुपार्जितं द्वीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयकाले वीर्यांतरायस्पर्शरसनेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नोइन्द्रियावरणोदये च सति द्वीन्द्रिया अमनसो भवन्तीति सूत्रार्थः ॥ ११४ ॥ अथ त्रीन्द्रियभेदान् प्रदर्शयति,—यूकामत्कुणकुंभीपिपीलिका पर्णवृश्चिकाश्च गणकीटकादयः कर्तारः स्पर्शरसगंधत्रयं जानन्ति यतस्ततः कारणात् त्रीन्द्रिया भवन्तीति । तथाहि—विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसमुत्पन्नवीतरागपरमानंदैकलक्षणसुखामृतरसानुभवच्युतैः स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियादिविषयसुखमूर्च्छितैर्जीवैर्यद्बद्धं त्रीन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयाधीनत्वेन वीर्यांतरायस्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभात् शेषेन्द्रियावरणोदये नो

शीतोष्णादिकको **[जानन्ति]** जानते हैं, इसकारण **[ते]** वे **[जीवाः]** जीव **[द्वीन्द्रियाः]** दो इन्द्रिय संयुक्त जानने । **भावार्थ**—स्पर्श रसना इन्द्रियोंके आवरणका जब क्षयोपशम होय और बाकी इन्द्रियों और मनआवरणके उदयमें स्पर्श रसनाइन्द्रियसंयुक्त दो इन्द्रियोंके द्वारासे सुखदुःखके अनुभवी मनरहित द्वइन्द्रिय जानने ॥ ११४ ॥ अब तेइन्द्रिय जीवके भेद दिखाते हैं,—**[यूकाकुम्भीमत्कुणपिपीलिका वृश्चिकादयः]** जूं कुंभी खटमल चींटी बिच्छू आदि जो **[कीटाः]** जीव हैं वे **[रसं स्पर्शं]** रस और स्पर्श तथा **[गंधं]** गंध इन तीन विषयोंको **[जानन्ति]** जानते हैं, इसकारण ये सब जीव **[त्रींद्रियाः]** सिद्धान्तमें तेइन्द्रिय कहे गये हैं । **भावार्थ**—जब इन संसारी जीवोंके स्पर्शन रसना नासिका इन तीन इन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम होय और अन्य इन्द्रियोंके

शरसगन्धवर्णशब्दानां परिच्छेत्तारः पञ्चेन्द्रिया भवन्ति । तेषु नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमात् समनस्काश्च भवन्ति । तत्र देवमनुष्यनारकाः समनस्का एव, तिर्यञ्च उभय जातीया इति ॥ ११७ ॥

इन्द्रियभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धित्वेनोपसंहारोऽयम्,—

देवा चउण्णिकाया मणुया पुण कम्मभोगभूमीया ।
तिरिया बहुप्पयारा णेरइया पुढविभेयगदा ॥ ११८ ॥

देवाश्चतुर्णिकाया मनुजाः पुनः कर्मभोगभूमिजाः ।
तिर्यञ्चः बहुप्रकाराः नारकाः पृथिवीभेदगताः ॥ ११८ ॥

अत पञ्चेन्द्रियजीवा भवन्ति तेषु च मध्ये ये तिर्यञ्चः केचन जलचरस्थलचरखचरा बलिनश्च भवन्ति । ते च के । जलचरमध्ये ग्राहसंज्ञाः स्थलचरेषु अष्टापदाद्याः खचरेषु भेरुण्डा इति । तद्यथा—निर्दोषिपरमात्मध्यानोत्पन्ननिर्विकारनिजानन्दैकलक्षणसुखविपरीतं यदिन्द्रियसुखं तदा-सक्तैर्बहिर्मुखजीवैर्यदुपार्जितं पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्म तदुदयं प्राप्य वीर्यान्तरायस्पर्शनरसनघ्राणच-क्षुःश्रोत्रेन्द्रियावरणक्षयोपशमलाभान्नोइन्द्रियावरणोदये सति केचन शिक्षालापोपदेशग्राहकत्वरहिता पञ्चेन्द्रिया असंज्ञिनो भवन्ति, केचन पुनर्नोइन्द्रियावरणस्यापि क्षयोपशमलाभात्संज्ञिनो भवन्ति तेषु च मध्ये नारकमनुष्यदेवाः संज्ञिन एव, तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रियाः संज्ञिनोऽसंज्ञिनो भवन्ति एके-न्द्रियादिचतुरिन्द्रियपर्यंता असंज्ञिन एव । कश्चिदाह । क्षयोपशमविकल्परूपं हि मनो भण्यते तत्तेषामप्यस्तीति कथमसंज्ञिनः । परिहारमाह । यथा पिपीलिकाया गन्धविषये जातिस्वभावेनैवाहा-रादिसंज्ञारूपं पटुत्वमस्ति न चान्यत्र कार्यकारणव्याप्तिज्ञानविषये अन्येषामप्यसंज्ञिनां तथैव मनः पुनर्जगत्त्रयकालत्रयविषयव्याप्तिज्ञानरूपकेवलज्ञानप्रणीतपरमात्मादितत्त्वानां परोक्षपरिच्छि-त्तिरूपेण परिच्छेदकत्वात्केवलज्ञानसमानमिति भावार्थः ॥ ११७ ॥ तथैकेन्द्रियादिभेदेनोक्तानां जीवानां चतुर्गतिसंबन्धित्वेनोपसंहारः कथ्यते,—भवनवासिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकभेदेन देवा-

---

पञ्चेन्द्रिय **[जीवा]** जीव हैं जो कि **[जलचरस्थलचरखचरा]** जलचर भूमिचर व आकाशगामी हैं और **[वर्णरसस्पर्शगंधशब्दज्ञा]** वर्ण रस गंध स्पर्श शब्द इन पांचों विषयोंके ज्ञाता हैं तथा **[बलिन]** अपनी क्षयोपशम शक्तिसे बलवान् हैं । **भावार्थ**—जब ससारी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके आवरणका क्षयोपशम होय तब पांचों विषयके जाननहारे होते हैं । पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं एक सैनी, एक असैनी, जिन पंचेन्द्रिय जीवोंके मनआवरणका उदय होय वे तो मनरहित असैनी हैं । और जिनके मनआवरणका क्षयोपशम होय वे मनसहित सैनी पंचेन्द्रिय जीव होते हैं अर्थात् तिर्यञ्च गतिमें मनसहित और मनरहित भी होते हैं। इसप्रकार इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीवोंकी जातिका भेद कहा ॥११७॥ अब इनही पांच जातिके जीवोंको चारगतिसंबंधी स्वरूप कथन किया जाता है,—**[देवा]** देव देवगतिनामा कर्मके उदयसे

क्षीणे पूर्वनिबद्धे गतिनाम्नि आयुषि च तेऽपि खलु ।
प्राप्नुवन्ति चान्या गतिमायुष्कं स्वलेश्यावशात् ॥ ११९ ॥

क्षीयते हि क्रमेणारब्धफलो गतिनामविशेषायुर्विशेषश्च जीवानाम् । एवमपि तेषां गत्यन्तरस्यायुरन्तरस्य च कषायानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या बीजं ततस्तदुचितमेव गत्यन्तरमायुरन्तरञ्च ते प्राप्नुवन्ति । एवं क्षीणाक्षीणाभ्यामपि पुनः पुनर्नवीभूताभ्यां गतिनामायुःकर्मभ्यामनात्मस्वभावभूताभ्यामपि चिरमनुगम्यमानाः संसरन्त्यात्मानमचेतयमाना जीवा इति ॥ ११९ ॥

एवेति तन्निषेधार्थ,—क्रमेण दत्तफले क्षीणे सति । कस्मिन् । पूर्वनिबद्धे पूर्वोपार्जिते गतिनामकर्मण्यायुषि च तेपि खलु ते जीवाः कर्तारः खलु स्फुटं प्राप्नुवन्ति । किम् । अन्यदपूर्वं मनुष्यगत्यपेक्षया देवगत्यादिकं भवान्तरे गतिनामायुष्कं च । कथंभूताः सन्तः । स्वकीयलेश्यावशाः स्वकीयपरिणामाधीना इति । तद्यथा । "चंडो ण मुअइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहियो । दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स" इत्यादिरूपेण कृष्णादिषड्लेश्यालक्षणं गोम्मटशास्त्रादौ विस्तरेण भणितमास्ते तदत्र नोच्यते । कस्मात् । अध्यात्मग्रन्थत्वात् । तथा संक्षेपेणात्र कथ्यते । कषायोदयानुरञ्जिता योगप्रवृत्तिर्लेश्या सा च गतिनामकर्मणश्च बीजं कारणं भवति तेन कारणेन तद्विनाशः कर्तव्यः । कथमिति चेत् । क्रोधमानमायालोभरूपकषायोदयचतुष्टयभिन्ने अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यचतुष्कादभिन्ने परमात्मनि यदा भावना क्रियते तदा कषायोदयविनाशो भवति तद्भावनाबलेन शुभाशुभमनोवचनकायव्यापारपरिहारे सति योगत्रयाभावश्चेति कषायोदयरञ्जितयोगप्रवृत्तिरूपलेश्याविनाशात्तदभावे गतिनामायुःकर्मणोरभावस्तयोरभावेऽक्षयानन्त

भाव दिखाते हैं,—[पूर्वनिबद्धे] पूर्वकालमें बांधा हुवा [गतिनाम्नि] गतिनामका कर्म [च] और [आयुषि] आयुनामा कर्मके [क्षीणे] अपना रस देकर खिर जानेपर [खलु ते अपि] निश्चय करकें वे ही जीव [स्वलेश्यावशात्] अपनी कषायगर्भित योगोंकी प्रवृत्तिरूप लेश्याके प्रभावसे [अन्यां गतिं] अन्यगतिको [च] और [आयुष्कं] आयुको [प्राप्नुवन्ति] पाते हैं । भावार्थ—जीवोंके गति और आयु जो बंधता है सो कषाय और योगोंकी परिणतिसे बंधती है यह अनादिकालसे नियम चला जाता है अर्थात् एक गति और आयु कर्म खिरता है और दूसरा गति और आयुकर्म बंधता है इसीकारण संसारमार्ग कभी नहीं होता—जीव इसीप्रकार अनादि कालसे भ्रमते रहते हैं ॥ ११९ ॥

१ [illegible]

उक्तजीवप्रपञ्चोपसंहारोऽयम् ,—

> एदे जीवणिकाया देहप्पविचारमस्सिदा भणिदा ।
> देहविहूणा सिद्धा भव्वा संसारिणो अभव्वा य ॥ १२० ॥
>
> एते जीवनिकाया देहप्रवीचारमाश्रिता भणिता ।
> देहविहीना सिद्धा भव्या: संसारिणोऽभव्याश्च ॥ १२० ॥

एते ह्युक्तप्रकाराः सर्वे संसारिणो देहप्रवीचाराः अदेहप्रवीचारा भगवन्तः सिद्धाः शुद्धा जीवाः । तत्र देहप्रवीचारत्वादेकप्रकारत्वेऽपि संसारिणो द्विप्रकाराः । भव्या अभव्याश्च । ते शुद्धस्वरूपोपलम्भशक्तिसद्भावासद्भावाभ्यां पाच्यापाच्यमुद्गवदभिधीयन्त इति ॥ १२० ॥

शुद्धादिगुणस्य मोक्षलाभ इति सूत्राभिप्रायः ॥ ११९ ॥ अथ पूर्वोक्तजीवप्रपञ्चस्य संसारिमुक्तभेदेनोपसंहारव्याख्यानं करोति,— एते जीवनिकायाः निश्चयेन शुद्धात्मस्वरूपास्तिना अपि व्यवहारेण कर्मजनितदेहप्रवीचाराश्रिता भणिताः देहे प्रवीचारो वर्तना देहप्रवीचारः निश्चयेन केवलज्ञानदेहस्वरूपा अपि कर्मजनितदेहविहीना भवन्ति । ते के । शुद्धात्मोपलब्धियुक्ता सिद्धाः, संसारिणस्तु भव्या अभव्याश्चेति । तथाहि—केवलज्ञानादिगुणव्यक्तिरूपा या शुद्धिस्तस्याः शक्तिर्भव्यत्वं भण्यते तद्विपरीतमभव्यत्वं च । किंच । पाक्यापाक्यमुद्गवत् सुवर्णेतरपाषाणवद्वा शुद्धिशक्तियासौ सम्यक्त्वग्रहणकाले व्यक्तिमासादयति अशुद्धशक्तियासौ व्यक्तिः सा चाशुद्धिरूपा पूर्वमेव तिष्ठति तेन कारणेनानादिरित्यभिप्रायः ॥ १२० ॥ एवं गाथाचतुष्टयपर्यन्त

आगें फिर भी इनका विशेष दिखाते हैं,—[एते] पूर्वोक्त [जीवनिकायाः] चतुर्गतिसंबंधी जीव [देहप्रवीचारं] देहके पलटनभावको [आश्रिताः] प्राप्त हुए हैं ऐसा वीतराग भगवान्ने [भणिताः] कहा है । और जो [देहविहीनाः] देहरहित हैं वे [सिद्धाः] सिद्ध जीव कहाते हैं । तथा [संसारिणः] संसारी जीव हैं ते [भव्याः] मोक्षअवस्था होने योग्य [च] और [अभव्याः] शुद्धभावकी प्राप्तिके अयोग्य हैं । भावार्थ—जीव दो प्रकारके हैं । एक देहधारी और एक देहरहित । देहधारी तो संसारी हैं [illegible] सिद्धपर्यायके अनुभवी हैं । संसारी जीवोंके [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

व्यवहारजीवत्वैकान्तप्रतिपत्तिनिरासोऽयम्;—

ण हि इंदियाणि जीवा काया पुण छप्पयार पण्णत्ता ।
जं हवदि तेसु णाणं जीवो त्ति य तं परूवंति ॥ १२१ ॥

नहीन्द्रियाणि जीवा काया पुन षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ताः ।
यद्भवति तेषु ज्ञानं जीव इति च तत्प्ररूपयन्ति ॥ १२१ ॥

य इमे एकेन्द्रियादयः पृथिवीकायिकादयश्चानादिजीवपुद्गलपरस्परावगाहमवलोक्य, व्यवहारनयेन जीवप्राधान्याज्जीवा इति प्रज्ञाप्यन्ते । निश्चयनयेन तेषु स्पर्शनादीन्द्रियाणि, पृथिव्यादयश्च कायाः जीवलक्षणभूतचैतन्यस्वभावाभावान्न जीवा भवन्तीति ।

पचेन्द्रियव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थलं गतं । अत्र पचेन्द्रिया इत्युपलक्षणं तेन कारणेन गौणवृत्त्या "णिरिया बहुप्पयार।" इति पूर्वोक्तगाथाखण्डेनैकेन्द्रियादिव्याख्यानमपि ज्ञातव्यं । उपलक्षणविषये दृष्टान्तमाह । काकेभ्यो रक्षतां सर्पिरित्युक्ते मार्जारादिभ्योपि रक्षणीयमिति । अथेन्द्रियाणि पृथिव्यादिकायाश्च निश्चयेन जीवस्वरूपं न भवन्तीति प्रज्ञापयति,—इन्द्रियाणि जीवा न भवन्ति। न केवलमिन्द्रियाणि । पृथिव्यादिकायाः षट्प्रकाराः प्रज्ञप्ता ये परमागमे तेपि । तर्हि किं जीवः यद्भवति तेषु मध्ये ज्ञानं जीव इति तत्प्ररूपयन्तीति । तद्यथा । अनुपचरितासद्भूतव्यवहारेण स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियाणि तथाशुद्धनिश्चयेन लब्ध्युपयोगरूपाणि भावेंद्रियाणि यद्यपि जीवा भ

आगें सर्वथा प्रकार व्यवहारनयाश्रित ही जीवोंको नहीं कहे जाते कथंचित् अन्य प्रकारभी हैं सो दिखाते हैं,—[**इन्द्रियाणि**] स्पर्शादि इन्द्रियें [**जीवा**] जीवद्रव्य [**न हि**] निश्चय करके नहीं है । [**पुनः**] फिर [**षट्प्रकारा**] छहप्रकार [**कायाः**] पृथिवीआदिक काय [**प्रज्ञप्ता**] कहे हैं वे भी निश्चय करके जीव नहीं है । तब जीव कौन है ? [**यत्**] जो [**तेषु**] तिन इन्द्रिय और शरीरोंमें [**ज्ञानं**] चैतन्यभाव [**भवति**] है [**तत्**] उसको ही [**जीव इति**] जीव इस नामका द्रव्य [**प्ररूपयंति**] महापुरुष कहते हैं । **भावार्थ**—जो एकेन्द्रियादिक और पृथिवीकायादिक व्यवहारनयनकी अपेक्षा जीवके मुख्य कथनसे जीव कहे जाते हैं वे अनादि पुद्गल जीवके सम्बन्धसे पर्याय होते हैं । निश्चयनयसे विचारा जाय तो स्पर्शनादि इन्द्रिय, पृथिवीकायादिक काया चैतन्यलक्षणी जीवके स्वभावसे भिन्न हैं जीव नहीं हैं उन ही पाच इन्द्रिय षट्कायोंमें जो स्वपरका जाननहारा है अपने ज्ञान गुणसे यद्यपि गुणगुणीभेदसंयुक्त है तथापि कथंचित् अभेदसंयुक्त है । वह अविनाशी अचल निर्मल चैतन्यस्वरूप जीव पदार्थ जानना । अनादि अविद्यासे देहधारी होकर पंच इन्द्रिय विषयोंका भोक्ता है । मोही होकर

---

१ ससारिजीवेषु ।

तेनाधारेणपर्यायेणातिभिन्नरूपेण प्रकाशमानं ज्ञानं तदेव गुणगुणिनो कथंचिदभेदाज्जीवत्वेन प्ररूप्यत इति ॥ १२१ ॥

अथ ज्ञातृत्वादिकार्याणां जीवस्यैवान्यत्र नेत्याह,—

जाणदि पस्सदि सव्वं इच्छदि सुक्खं विभेदि दुक्खादो ।
कुव्वदि हिदमहिदं वा भुंजदि जीवो फलं तेसिं ॥ १२२ ॥

जानाति पश्यति सर्वमिच्छति सौख्यं बिभेति दुःखात् ।
करोति हितमहितं वा भुङ्क्ते जीवः फलं तयोः ॥ १२२ ॥

चैतन्यस्वभावत्वात् कर्तृस्थायाः क्रियायाः ज्ञप्तेर्दृशेश्च जीव एव कर्ता न तत्संबंधः पुद्गलो यथाकाशादि। सुखाभिलाषक्रियाया दुःखोद्वेगक्रियायाः स्वसंवेदितहिताहितनिर्वर्तनक्रिया

ध्यानं तेन ध्यानाग्नेन पृथिव्यादिद्रव्याणाम तथापि शुद्धनिश्चयेन यदतीन्द्रियममूर्त केवलज्ञाना-नन्तगुणादिगुणसंयुक्त स जीव इति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १२१ ॥ अथ ज्ञातृत्वादि कार्य जीवस्य संभवतीति निश्चिनोति;—जानाति पश्यति । किं । सर्व वस्तु, इच्छति । किं । सौख्य बिभेति । कस्मात् । दुःखात्, करोति । किं । हितमहित वा, भुङ्क्ते । स कः कर्ता । जीव । किं । फलं । कयोः । तयोर्हिताहितयोरिति । तथाहि—पदार्थपरिच्छित्तिरूपाया क्रियाया ज्ञप्तेः च जीव एव कर्ता न तत्संबंध पुद्गल कर्मनोकर्मरूप सुखपरिणतिरूपाया इच्छाक्रियाया स एव दुःखपरिणतिरूपाया भीतिक्रियाया स एव च हिताहितपरिणतिरूपाया कर्तृक्रिया

मन पुष्पको समान परद्रव्यमें ममत्वभाव करता है मोक्षके सुखसे पराङ्मुख है ऐसा जो ससारी जीव है उसका जो स्वाभाविक भावसे विचार किया जाय तो निर्मल चैतन्यविलासी आत्माराम है ॥१२१॥ आगें अन्य अचेतनद्रव्योंमें न पायी जाय ऐसी कौन २ करतूत है एसा कथन करते हैं,—[जीव] आत्मा [सर्वं] समस्त ही [जानाति] जानता है [पश्यति] सबको देखता है [सौख्य] सुखको [इच्छति] चाहता है और [दुःखात्] दुःखसे [बिभेति] डरता है [हित] शुभाचारको [वा] अथवा [अहित] अशुभाचारको [करोति] करता है और [तयो] उन शुभ अशुभ क्रियाओंके [फल] फलको [भुङ्क्ते] भोगता है । भावार्थ—ज्ञानदर्शनक्रियाका कर्ता जीव ही है जीवका चैतन्यस्वभाव है इस कारण यह ज्ञानदर्शक्रियासे तन्मय है उसहीका सबधी जो यह पुद्गल है सो चैतन्य क्रियाका कर्ता नहीं है जैसें आकाशादि चारि अचेतनद्रव्यभी कर्त्ता नहीं है । सुखकी अभिलाषा दुःखसे डरना शुभाशुभ प्रवर्तन इत्यादि क्रियाओंमें सकल्पविकल्पका कर्ता जीव ही है । इष्ट अनिष्ट

१ इन्द्रियकायेषु २ कथभूताया क्रियाया कर्तृस्थाया । कर्तरि तिष्ठति इति कर्तृस्था तस्या कर्तृस्थाया ३ अनादिकर्मबंधत्वात् तत्संबध जीवसंबध पुद्गल कथ्यते । स पुद्गलो ज्ञप्तिक्रियायाश्च कर्ता दृशिक्रियायाश्च नेति तात्पर्यम् ।

याश्च चैतन्यविवर्तनरूपसंकल्पप्रभवास्ता स एव कर्ता नान्य । शुभाशुभकर्मकलभूताया इष्टानिष्टविषयोपभोगक्रियायाश्च सुखदुःखस्वरूपस्वपरिणामक्रियाया इव स एव कर्ता नान्य । एतेनासाधारणकार्यानुमेयत्व पुद्गलव्यतिरिक्तस्यात्मनो द्योतितमिति ॥ १२२ ॥

जीवाजीवव्याख्योपसहारोपक्षेपसूचनेयम्,—

एवमभिगम्म जीवं अण्णेहिं वि पज्जएहिं बहुगेहिं ॥
अभिगच्छदु अज्जीवं णाणंतरिदेहिं लिंगेहिं ॥ १२३ ॥

एवमभिगम्य जीवमन्यैरपि पर्यायैर्बहुकै ।
अभिगच्छत्वजीव ज्ञानांतरितैर्लिङ्गै ॥ १२३ ॥

एवमनया दिशा व्यवहारनयेन कर्मग्रन्थप्रतिपादितजीवगुणमार्गणास्थानादिप्रपञ्चित विचित्रविकल्परूपै , निश्चयनयेन मोहरागद्वेषपरिणतिसंपादितविश्वरूपत्वात्कदाचिदशुद्धै

याश्च स एव सुखदुःखफलानुभवनरूपाया भोक्तृक्रियायाश्च स एव कर्ता भवतीत्यसाधारणकार्येण जीवास्तित्व ज्ञातव्य । तच्च कर्तृत्वमशुभशुभशुद्धोपयोगरूपेण त्रिधा भिद्यते, अथवानुपचरितासद्भूतव्यवहारेण द्रव्यकर्मकर्तृत्व तथैवाशुद्धनिश्चयेन रागादिविकल्परूपभावकर्मकर्तृत्व शुद्धनिश्चयेन तु केवलज्ञानादिशुद्धभावाना परिणमनरूप कर्तृत्व नयत्रयेण भोक्तृत्वमपि तथैवेति सूत्रतात्पर्य ॥ तथा चोक्त । "पुग्गलकम्मादीण कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो । चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाण" ॥ १२२ ॥ एव भेदभावनामुख्यत्वेन प्रथमगाथा जीवस्यासाधारणकार्यकथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन पचमस्थल गत । अथ गाथापूर्वार्धेन जीवाधिकारव्याख्यानोपसहारमुत्तरार्धेन चाजीवाधिकारप्रारभ करोति,—एवमभिगम्य ज्ञात्वा । क । जीव अन्यैरपि पर्यायैर्बहुकै पश्चादभिगच्छतु जानातु । क । अजीव ज्ञानांतरितैर्लिङ्गैरिति ।

पदार्थोंकी भोगक्रियाका, अपने सुखदुःखरूप परिणामक्रियाका कर्त्ता एक जीव पदार्थको ही जानना इनका कर्त्ता और कोई नहीं है । ये जो क्रियायें कहीं हैं वे सब शुद्ध अशुद्ध चैतन्यभावमयी हैं इसकारण ये क्रियायें पुद्गलकी नहीं हैं आत्माकी ही हैं ॥ ॥ १२२ ॥ आगें जीवअजीवका व्याख्यान सक्षेपतासे दिखाते है,-[एव] इसप्रकार [अन्यै अपि] अन्य भी [बहुकै पर्यायै] अनेक पर्यायोंसे [जीव] आत्माको [अभिगम्य] जानकरके [ज्ञानांतरितैर्लिङ्गै] ज्ञानसे भिन्न स्पर्शरसगधवर्णादिचिन्होंसे [अजीव] पुद्गलादिक पाच अजीव द्रव्योंको [अभिगच्छतु] जानो । भावार्थ—जैसें पूर्वमें जीवकी करतूतें दिखाई वैसें ही व्यवहारनयसे कर्मपद्धतिके विचारमें जीवसमास गुणस्थान मार्गणास्थान इत्यादि अनेकप्रकार पर्यायविलासकी विचित्रतामें जीवपदार्थ जान लेना । और अशुद्ध निश्चयनयसे कदाचित् मोहरागद्वेषपरिणतिसे

१ पर्यायरूपै २ जीव ३ इतरस्थोऽयं कियाया कर्ता न स्यादित्यनेन ४ गोमटसारादिकर्मग्रन्थाः सन्ति विर्धत एव वा अन्या अपि कर्मपद्धतय सन्त्येव त प्रतिपादित ।

कदाचित्तदभावाच्छुद्धैश्चैतन्यविवर्तग्रन्थिरूपैर्बहुभि पर्य्यायै जीवमधिगच्छेत् । अधिगम्य चैवमचैतन्यस्वभावत्वात् ज्ञानादर्थान्तरभूतैरितैः प्रपद्यमानैर्लिङ्गैर्जीवसंबद्धमसंबद्धं वा स्वतो भेदबुद्धिप्रसिद्ध्यर्थमजीवमधिगच्छेदिति॥१२३॥इति जीवपदार्थव्याख्यानं समाप्तम्।

अथाजीवपदार्थव्याख्यानम् । आकाशादीनामेवाजीवत्वे हेतूपन्यासोऽयम्,—

आगासकालपुग्गलधम्माधम्मेसु णत्थि जीवगुणा ।
तेसिं अचेदणत्तं भणिदं जीवस्स चेदणदा ॥ १२४ ॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु न सन्ति जीवगुणा ।
तेषामचेतनत्वं भणितं जीवस्य चेतनता ॥ १२४ ॥

आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु चैतन्यविशेषरूपा जीवगुणा नो विद्यते । आकाशादीना

तद्यथा—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जीवपदार्थमधिगम्य । कै । पर्यायै । कथंभूतै । पूर्वोक्त न केवल पूर्वोक्तै व्यवहारेण गुणस्थानमार्गणास्थानभेदगतनामकर्मोदयादिजनितस्वकीयस्वकीयमनुष्यादिशरीरसंस्थानसंहननप्रभृतिबहिरङ्गाकारैर्निश्चयनयाभ्यन्तरे रागद्वेषमोहरूपैरशुद्धैरन्यैश्च वीतरागनिर्विकल्पचिदानन्दैकस्वभावात्मपदार्थसंवित्तिसंजातपरमानन्दसुखस्थितसुखामृतरसानुभवनसमरसीभावपरिणतमनोरूपैः शुद्धध्यानैश्चेति । पश्चात् किं करोतु । जानातु । कं । अजीवं पदार्थं । कैः । लिंगैः चिह्नैः । किंविशिष्टैरपि वक्ष्यमाणैर्ज्ञानातिरिक्तत्वात् जडैश्चेति सूत्राभिप्राय ॥ ॥ १२३ ॥ एवं जीवपदार्थव्याख्यानोपसंहार तथैवाजीवव्याख्यानप्रारंभ इत्येकसूत्रेण पष्ठस्थलं गतं । इति पूर्वोक्तप्रकारेण "जीवाजीवा भावा" इत्यादि नवपदार्थानां नामकथनरूपं स्वतन्त्रगाथासूत्रमेकं, तदनन्तरं जीवादिपदार्थव्याख्यानेन षट्स्थलैः पंचदशसूत्राणि समुदा

उत्पन्न अनेकप्रकार अशुद्ध पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है । और कदाचित् मोह जनित अशुद्ध परणतिके विनाश होनेसे शुद्ध चेतनामयी अनेक पर्यायोंसे जीव पदार्थ जाना जाता है—इत्यादि अनेक भगवत्प्रणीत आगमके अनुसार नयविलाससे जीव पदार्थको जानो और अजीवपदार्थोंका स्वरूप जानो सो अजीवद्रव्य जडस्वभावोंकेद्वारा जाने जाते हैं अर्थात् ज्ञानसे भिन्न अन्य स्पर्शरसगंधवर्णादिक चिह्नोंसे जीवसे बंधहुये कर्म नोकर्मादिरूप तथा नहीं बंधेहुये परमाणु आदिक सब ही अजीव हैं । जीव अजीव पदार्थोंका इसप्रकार भेद जो किया जाता है सो एकमात्र भेदविज्ञानकी सिद्धिके निमित्त है । इसप्रकार यह जीवपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुआ ॥ १२३ ॥ आगे अजीवपदार्थका व्याख्यान किया जाता है—[आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेषु] आकाशद्रव्य कालद्रव्य पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इन पांचों द्रव्योंमें [जीवगुणा] गुणसमस्त बोध चेतना आदि जीवके गुण [न] नहीं [सन्ति] हैं [यतः] इन

१ तथा च जीवाजीवानाम्ब २ १२१ पर्व के समय

तेषामचेतनत्वसामान्यत्वात् । अचेतनत्वसामान्यञ्चाकाशादीनामेव । चेतनता जीवस्यैव । चेतनत्वसामान्यादिति ॥ १२४ ॥

आकाशादीनामचेतनत्वसामान्ये पुनरनुमानमेतत्,—

सुहदुक्खजाणणा वा हिदपरियम्मं च अहिदभीरुत्तं ।
जस्स ण विज्जदि णिच्चं तं समणा विंति अज्जीवं ॥ १२५ ॥

सुखदुःखज्ञानं वा हितपरिकर्म चाहितभीरुत्वं ।
यस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा विंदत्यजीवं ॥ १२५ ॥

येन षोडशगाथाभिर्नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये "द्वितीयांतराधिकार" समाप्त । अथ भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममतिज्ञानादिविभावगुणनरनारकादिविभावपर्यायरहितं केवलज्ञानाद्यनंतगुणस्वरूपो जीवादिनवपदार्थांतर्गतो भूतार्थपरमार्थरूपः शुद्धसमयसाराभिधान उपादेयभूतो योऽसौ शुद्धजीवपदार्थस्तस्मात्सकाशाद्विलक्षणस्वरूपस्याजीवपदार्थस्य गाथाचतुष्टयेन व्याख्यानं क्रियते । तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये अजीवत्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन "आयासकाल" इत्यादि पाठक्रमेण गाथात्रयं, तदनंतरं भेदभावनार्थं देहगतशुद्धजीवप्रतिपादनमुख्यत्वेन "अरसमरूव" इत्यादि सूत्रमेकं, एवं गाथाचतुष्टयपर्यंतं स्थलद्वयेनाजीवाधिकारव्याख्याने समुदायपातनिका । तद्यथा । अथाकाशादीनामजीवत्वे कारणं प्रतिपादयति;—आकाशकालपुद्गलधर्माधर्मेष्वनंतज्ञानदर्शनादयो जीवगुणाः संति न ततः कारणात्तेषामजीवत्वं भणितं । कस्मात् तेषां जीवगुणा न संतीतिचेत् । युगपज्जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थपरिच्छेदकत्वेन जीवस्यैव चेतकत्वादिति सूत्राभिप्रायः ॥ १२४ ॥ अथाकाशादीनामेवाचेतनत्वे साध्ये पुनरपि कारणं कथयामीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—सुखदुःखज्ञातृता वा हितपरिकर्म च तथैवाहितभीरुत्वं यस्य पदार्थस्य न विद्यते नित्यं तं श्रमणा ब्रुवंत्यजीवमिति । तदेव कथ्यते । अज्ञानिनां हितं स्रग्वनिताचंदनादि तत्कारणं दानपूजादि, अहितमहिविषकंटकादि । संज्ञानिनां पुनरक्षयानंतसुखं तत्कारणभूतं निश्चयरत्नत्रयपरिणतं परमात्मद्रव्यं च हितमहितं पुनराकुलत्वोत्पादकं दुःखं तत्कार

आकाशादि पांच द्रव्योंके [अचेतनत्वं] चेतनारहित जड़भाव [भणितं] वीतराग भगवानने कहा है [चेतनता] चैतन्यभाव [जीवस्य] जीवद्रव्यके ही कहा गया है । भावार्थ—आकाशादि पांच द्रव्य अचेतन जानने क्योंकि इनमें एक जड़ ही धर्म है । जीवद्रव्यमात्र एक चेतन है ॥ १२४ ॥ आगें आकाशादिकमें निश्चय करके चैतन्य है ही नहीं ऐसा अनुमान दिखाते हैं,—[यस्य] जिस द्रव्यके [सुखदुःखज्ञानं] सुखदुःखको जानना [वा] अथवा [हितपरिकर्म] उत्तम कार्यमें प्रवृत्ति [च] और [अहितभीरुत्वं] दुःखदायक कार्यसे भय [न विद्यते] नहीं है [श्रमणाः] गणधरादिक [तं नित्यं] सदैव उस द्रव्यको [अजीवं] अजीव ऐसा तत्व [विंदंति] जानते हैं । भावार्थ—जिन द्रव्योंमें सुखदुःखका जानना

पुद्गलस्यानन्तर हिताहितपरिणमनोद्यमशीलत्वस्य चेति, चैत विशेषाणां नित्यमनुपल भेरविद्यमानत्वान्यगामान्या पवाकाशादयोऽजीवा इति ॥ १२५ ॥

जीवपुद्गलयो सयोगेऽपि भेदनिबन्धनस्वरूपाख्यानमेतत्,—

संठाणा संघादा वण्णरसप्फासगंधसद्दा य ।
पोग्गलदव्वप्पभवा होंति गुणा पज्जया य बहू ॥ १२६ ॥
अरसमरूवमगंधमव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १२७ ॥

संस्थानानि संघाता वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दाश्च ।
पुद्गलद्रव्यप्रभवा भवन्ति गुणा पर्यायाश्च बहव ॥ १२६ ॥
अरसमरूपमगन्धमव्यक्त चेतनागुणमशब्द ।
जानीह्यलिङ्गग्रहण जीवमनिर्दिष्टसंस्थान ॥ १२७ ॥

पभूत मिथ्यात्वरागादिपरिणमनमात्मद्रव्य च एव हिताहितादिपरीक्षारूपचैतन्यविशेषाणामभा वादचेतना आकाशादय पचेति भावार्थ ॥ १२५ ॥ अथ संस्थानादिपुद्गलपर्याया जीवेन सह क्षीरनीरन्यायेन तिष्ठन्ति निश्चयेन जीवस्वरूप न भवतीति भेदज्ञान दर्शयति,—समचतुर-स्रादिषट्संस्थानानि औदारिकादिशरीरसंबन्धिन पचसघाता वर्णरसस्पर्शगन्धशब्दाश्च सस्थानादि पुद्गलविकाररहितकेवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयसहितात्परमात्मपदार्थान्निश्चयेन भिन्नत्वात्ते सर्वे च पुद्गलद्रव्यप्रभवा । एतेषु मध्ये के गुणा के पर्याया इति प्रश्ने सति प्रत्युत्तरमाह—वर्णरसस्पर्श-गन्धगुणा भवन्ति सस्थानादयस्तु पर्यायास्ते च प्रत्येक बहव इति सूत्राभिप्राय ॥ १२६ ॥ एव पुद्गलादिपचद्रव्याणामजीवत्वकथनमुख्यतया गाथात्रयेण प्रथमस्थल गत । अथ यदि सस्था नादयो जीवस्वरूप न भवन्ति तर्हि किं जीवस्वरूपमिति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह;—अरसं रसगुण सहितपुद्गलद्रव्यरूपो न भवति रसगुणमात्रो वा न भवति रसग्राहकपौद्गलिकजिह्वाभिधानद्रव्य

नहीं है और जिन द्रव्योंमें इष्ट अनिष्ट कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, उन द्रव्योंके विष यमें ऐसा अनुमान होता है कि वे चेतना गुणसे रहित हैं सो वे आकाशादिक ही पाच द्रव्य हैं ॥ १२५ ॥ आगें यद्यपि जीवपुद्गलका सयोग है तथापि आपसमें लक्षणभेद है ऐसा भेद दिखाते हैं,—[संस्थानानि] जीवपुद्गलके सयोगमें जो समचतुरस्रादि षट संस्थान हैं और [संघाता] वज्रवृषभ नाराच आदि संहनन हैं [च] और [वर्ण-रसस्पर्शगंधशब्दा] वर्ण ५ रस ५ स्पर्श ८ गंध २ और शब्दादि [पुद्गलद्रव्य प्रभवा] पुद्गलद्रव्यसे उत्पन्न [बहव] बहुत जातिके [गुणा] सहभू वर्णादि गुण [च] और [पर्याया] संस्थानादि पर्याय [भवन्ति] होते हैं और [जीव] जीवद्रव्यको [अरस] रसगुणरहित, [अरूप] वर्णरहित [अगंध] गंधर-हित [अव्यक्त] अप्रगट[चेतनागुण] ज्ञानदर्शन गुणवाला [अशब्द] शब्दपर्यायर-

अथ पुण्यपापपदार्थव्याख्यानम् । पुण्यपापयोग्यभावस्वभावख्यापनमेतत्,—

मोहो रागो दोसो चित्तपसादो य जस्स भावम्मि ।
विज्जदि तस्स सुहो वा असुहो वा होदि परिणामो ॥ १३१ ॥

मोहो रागो द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य भावे ।
विद्यते तस्य शुभो वा अशुभो वा भवति परिणामः ॥ १३१ ॥

इह हि दर्शनमोहनीयविपाककलुषपरिणामता मोहः । विचित्रचारित्रमोहनीयविपाक-प्रत्यये प्रीत्यप्रीती रागद्वेषौ । तस्यैव मन्दोदये विशुद्धपरिणामता चित्तप्रसादपरिणामः । एवमिमे यस्य भावे भवन्ति, तस्यावश्यं भवति शुभोऽशुभो वा परिणामः । तत्र यत्र प्रश

चतुष्टयस्य कर्ता ज्ञानी तु सम्वरादिपदार्थत्रयस्येति भावार्थः ॥ १२८ । १२९ । १३० ॥ एवं नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये पुण्यादिसप्तपदार्थाः जीवपुद्गलसंयोगवियोगपरिणामेन निर्वृत्ता इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थांतराधिकारः समाप्तः । *अथ पुण्यपापाधिकारे* गाथाचतुष्टयं भवति तत्र गाथाचतुष्टयमध्ये प्रथमं तावत्परमानंदैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भि-न्नस्य भावपुण्यपापयोग्यपरिणामस्य सूचनमुख्यत्वेन "मोहो व रागदोसो" इत्यादिगाथासूत्रमेकं । अथ शुद्धबुद्धैकस्वभावशुद्धात्मनः सकाशाद्भिन्नस्य हेयस्वरूपस्य द्रव्यभावपुण्यपापद्वयस्य व्याख्या-नमुख्यत्वेन "सुहपरिणामो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ नैयायिकमतनिराकरणार्थं पुण्यपापद्वयस्य मूर्तत्वसमर्थनरूपेण "जह्मा कम्मस्स फलं" इत्यादि सूत्रमेकं, अथ चिरंतनागतुकयोर्मूर्तयोः कर्म-णोः स्पृष्टत्वबद्धत्वस्थापनार्थं शुद्धनिश्चयेनामूर्तस्यापि जीवस्यानादिबंधसंतानापेक्षया व्यवहारनयें-न मूर्तत्वं मूर्तजीवेन सह मूर्तकर्मणो बंधप्रतिपादनार्थं च "मुत्तो फासदि" इत्यादि सूत्रमेकमिति गाथाचतुष्टयेन पंचमांतराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा । अथ पुण्यपापयोग्यभावस्वरूपं कथ्यते,—मोहो वा रागो वा द्वेषश्चित्तप्रसादश्च यस्य जीवस्य भावे मनसि विद्यते तस्य शुभो शुभो वा भवति परिणाम इति । इतो विशेषः—दर्शनमोहोदये सति निश्चयशुद्धात्मरुचिरहितस्य

पाकर जीवके अशुद्ध परिणाम होते हैं, और उन अशुद्ध परिणामोंके निमित्तसे पुद्गलप रिणाम होते हैं ॥ १२८।१२९।१३० ॥ आगें पुण्यपापपदार्थका व्याख्यान करते हैं सो प्रथम ही पुण्यपापपदार्थोंके योग्य परिणामोंका स्वरूप दिखाते हैं,—[**यस्य**] जिसके [**भावे**] भावोंमें [**मोह**] गहलरूप अज्ञानपरिणाम [**राग**] परद्रव्योंमें ... परिणाम [**द्वेष**] अप्रीतिरूप परिणाम [**च**] और [**चित्तप्रसाद**] चित्तकी प्रसन्नता [**विद्यते**] प्रवर्ते है [**तस्य**] उस जीवके [**शुभ**] शुभ [**वा**] । अथवा [**अशुभ वा**] अशुभ ऐसा [**परिणाम**] परिणमन [**भवति**] होता है **भावार्थ**—इस लोकमें जीवके निश्चयसे जब दर्शनमोहनीय कर्मका उदय होता है तब

---

१ निर्मलपरिणाम २ परिणामप्रत्यय ३ यस्मिन् जाव ।

मूर्त्तं स्पृशति मूर्त्तं मूर्त्तो मूर्त्तेन बंधमनुभवति ।
जीवो मूर्तिविरहितो गाहति तानि तैरवगाह्यते ॥ १३४ ॥

इह हि संसारिणि जीवेऽनादिसंतानेन प्रवृत्तमास्ते मूर्तकर्म । तत्स्पर्शादिमत्त्वादागामि मूर्तकर्म स्पृशति । ततस्तन्मूर्तं तेन सह स्नेहगुणवशाद्बंधमनुभवति । एष मूर्तयोः कर्मणोर्बंधप्रकारः । अथ निश्चयनयेनाऽमूर्तो जीवोऽनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन्, विशिष्टतया मूर्तानि कर्माण्यवगाहते । तत्परिणामनिमित्तलब्धात्मपरिणामैः मूर्तकर्मभिरपि विशिष्टतयाऽवगाह्यते च । अयं त्वन्योन्यावगाहात्मको जीवमूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारः ।

चिरंतनाभिनवमूर्तकर्मणोस्तथैवामूर्तजीवमूर्तकर्मणोश्च नयविभागेन बंधप्रकारं कथयति । अथवा मूर्तरहितो जीवो मूर्तकर्माणि कथं बध्नाति नैयायिकादिमतानुसारिणा शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति नयविभागेन परिहारं ददाति,—**मुत्तो** निर्विकारशुद्धात्मसंवित्तिभावेनोपार्जितमनादिसंतानेनागतं मूर्तं कर्म तावदास्ते जीवे । तच्च किंकरोति । **फासदि मुत्तं** स्वयं स्पर्शादिमत्त्वेन मूर्तत्वादभिनवं स्पर्शादिमत्संयोगमात्रेण मूर्तं कर्म स्पृशति । न केवलं स्पृशति । **मुत्तो मुत्तेण बंधमणुहवदि** अमूर्तातीन्द्रियनिर्मलात्मानुभूतिविपरीतं जीवस्य मिथ्यात्वरागादिपरिणामं निमित्तं लब्ध्वा पूर्वोक्तं मूर्तं कर्म नवतरमूर्तकर्मणा सह स्वकीयस्निग्धरूक्षपरिणत्युपादानकारणेन संश्लेषरूपं बंधमनुभवति इति मूर्तकर्मणोर्बंधप्रकारो ज्ञातव्यः । इदानीं पुनरपि मूर्तजीवमूर्तकर्मणोर्बंधः कथ्यते । **जीवो मुत्तिविरहिदो** शुद्धनिश्चयेन जीवो मूर्तिविरहितोऽपि व्यवहारेण अनादिकर्मबंधवशान्मूर्तः सन् । किं करोति । **गाहदि ते** अमूर्तातीन्द्रियनिर्विकारसदानंदैकलक्षणसुखरसास्वादविपरीतेन मिथ्यात्वरागादिपरिणामेन परिणतः सन् तान् कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलान् गाहते परस्परानुप्रवेश

करते हैं,—[**मूर्त्तं**] बंधपर्यायकी अपेक्षा मूर्तीक संसारी जीवके कर्मपुंज [**मूर्त्तं**] मूर्त्तीक कर्मको [**स्पृशति**] स्पर्शन करता है इसकारण [**मूर्त**] मूर्तीक कर्मपिंड जो है सो [**मूर्त्तेन**] मूर्त्तीक कर्मपिण्डसे [**बंध**] परस्पर बंधावस्थाको [**अनुभवति**] प्राप्त होता है । [**मूर्त्तिविरहित.**] मूर्तिभावसे रहित [**जीव**] जीव [**तानि**] उन कर्मोंके साथ बंधावस्थाओंको [**गाहति**] प्राप्त होता है । [**तै.**] उन ही कर्मोंसे [**"जीव"**] आत्मा जो है सो [**अवगाह्यते**] एकक्षेत्रावगाह कर बंधता है । **भावार्थ**—इस संसारी जीवके अनादि कालसे लेकर मूर्तीक कर्मोंसे संबंध है वे कर्म स्पर्शरसगंधवर्णमयी हैं । इससे आगामी मूर्त्तकर्मोंसे अपने स्निग्धरूक्ष गुणोंके द्वारा बंधता है, इसकारण मूर्त्तीक कर्मसे मूर्त्तीकका बंध होता है । फिर निश्चयनयकी अपेक्षा जीव अमूर्त्तीक है अनादिकर्मसंयोगसे रागद्वेषादिक भावोंसे स्निग्धरूक्षभावपरिणया हुवा नवीन कर्मपुंजको आस्रव करता है उन कर्मसे पूर्वबद्ध-

१ आत्मनिमूर्तकर्म—२ निश्चयनयेन जीव अमूर्तोऽस्ति परंतु अनादिमूर्तकर्मनिमित्तरागादिपरिणामस्निग्धः सन् विशिष्टतया मूर्तानि कर्माणि अवगाहते ।

प्रशस्तरागस्वरूपाख्यानमेतत्,—

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा ।
अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ १३६ ॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे या च खलु चेष्टा ।
अनुगमनमपि गुरूणां प्रशस्तराग इति ब्रुवन्ति ॥ १३६ ॥

अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिर्धर्मे व्यवहारचारित्रानुष्ठाने वासना प्रधाना चेष्टा । गुरूणामाचार्यादीनां रसिकत्वेनानुगमनम् । एष प्रशस्तो रागः प्रशस्तविषयत्वात् । अयं हि स्थूललक्ष्यतया केवलभक्तिप्रधानस्य ज्ञानिनो भवति । उपरितनभूमिकायामलब्धास्पदस्या-

---

पुण्णं जीवस्स आसवदि यस्येत्थं पूर्वोक्ता त्रय शुभपरिणामा सन्ति तस्य जीवस्य द्रव्यपुण्यास्रवकारणभूतं भावपुण्यमास्रवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ १३५ ॥ एवं शुभास्रवे सूत्रगाथा गता । अथ प्रशस्तरागस्वरूपमावेदयति,—अर्हत्सिद्धसाधुषु भक्तिः **धम्मम्हि जा च खलु चेट्ठा** धर्मे शुभरागचरित्रे या खलु चेष्टा **अणुगमणंपि** अनुगमनमनुव्रजनमनुकूलवृत्तिरित्यर्थः । केषां । **गुरूणं** गुरूणां **पसत्थरागोत्ति उच्चति** एते सर्वे पूर्वोक्ताः शुभभावाः परिणामाः प्रशस्तरागा इत्युच्यते । तथाहि—निर्दोषिपरमात्मनः प्रतिपक्षभूतं यदार्तरौद्ररूपध्यानद्वयं तेनोपार्जिता या ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतयस्तासां रागादिविकल्परहितधर्मध्यानशुक्लध्यानद्वयेन विनाशं कृत्वा क्षुधाद्यष्टादशदोषरहिताः केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयसहिताश्च जाता एतेऽर्हन्तो भण्यन्ते । लौकिकाञ्जनसिद्धादिविलक्षणा ज्ञानावरणाद्यष्टकर्माभावेन सम्यक्त्वाद्यष्टगुणलक्षणा लोकाग्रनिवासि-

---

नहीं है [**“तस्य” जीवस्य**] उस जीवके [**पुण्यं**] पुण्य [**आस्रवति**] आता है । **भावार्थ**—शुभ परिणाम तीन प्रकारके हैं अर्थात्–प्रशस्तराग १ अनुकम्पा २ और चित्तप्रसाद ३ ये तीनों प्रकारके शुभपरिणाम द्रव्यपुण्यप्रकृतियोंको निमित्तमात्र हैं इस कारण जो शुभभाव हैं वे तो भावास्रव हैं तत्पश्चात् उन भावोंके निमित्तसे शुभयोगद्वारकर जो शुभ वर्गणायें आतीं हैं वे द्रव्यपुण्यास्रव हैं ॥ १३५ ॥ आगें प्रशस्तरागका स्वरूप दिखाते हैं,—[**अर्हत्सिद्धसाधुषु**] अरहंत सिद्ध और साधु इन तीन पदोंमें जो [**भक्तिः**] स्तुति वंदनादिक [**च**] और [**या**] जो [**धर्मे**] अरहंत प्रणीत धर्ममें [**खलु**] निश्चय करकें [**चेष्टा**] प्रवृत्ति, [**गुरूणां**] धर्माचरणके उपदेष्टा आचार्यादिकोंका [**अनुगमनं अपि**] भक्ति भावसहित उनके पीछें होकर चलना अथवा उनकी आज्ञानुसार चलना भी [**इति**] इसप्रकार महापुरुष [**प्रशस्तरागः**] भला राग [**ब्रुवन्ति**] कहते हैं । **भावार्थ**—अरहंतसिद्धसाधुओंमें भक्ति व्यवहार चारित्रका आचरण और आचार्यादिक महंत पुरुषोंके चरणोंमें

---

१ प्रशस्तराग ... [illegible] ... २ अप्राप्तस्थानस्यास्थानराग ... [illegible]

नुकम्पा । ज्ञानिनस्त्वधस्तनभूमिकासु विहरमाणस्य जन्मार्णवनिमग्नजगदवलोकनान्मनाग्मनः खेद इति ॥ १३७ ॥

चित्तकलुषत्वस्वरूपाख्यानमेतत्,—

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज ।
जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति ॥ १३८ ॥

क्रोधो वा यदा मानो माया लोभो वा चित्तमासाद्य ।
जीवस्य करोति क्षोभं कालुष्यमिति च तं बुधा वदन्ति ॥ १३८ ॥

क्रोध-मान-मायालोभानां तीव्रोदये चित्तस्य क्षोभः कालुष्यम् । तेषामेव मन्दोदये तस्य

कृपया **तस्सेसा होदि अणुकंपा** तस्यैषा भवत्यनुकम्पेति । तथाहि—तीव्रतृष्णातीव्रक्षुधातीव्ररोगादिना पीडितमवलोक्याज्ञानी जीवः केनाप्युपायेन प्रतीकारं करोमीति व्याकुलो भूत्वानुकम्पां करोति, ज्ञानी तु स्वस्य भावनामलभमानः सन् संक्लेशपरित्यागेन यथासंभवं प्रतीकारं करोति तं दुःखितं दृष्ट्वा विशेषसंवेगवैराग्यभावनां च करोतीति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १३७ ॥ अथ चित्तकलुषतास्वरूपं प्रतिपादयति,—**कोधो व** उत्तमक्षमापरिणतिरूपशुद्धात्मतत्त्वानुभूतेः प्रतिपक्षभूतक्रोधादयो वा **जदा माणो** निरहंकारशुद्धात्मोपलब्धेः प्रतिकूलो यदा काले मानो वा **माया** निष्प्रपञ्चात्मोपलम्भविपरीता माया वा **लोहो व** शुद्धात्मभावनोत्थलाभे प्रतिपक्षो लोभो वा **चित्तमासेज्ज** चित्तमाश्रित्य **जीवस्स कुणदि खोहं** अक्षुभितशुद्धात्मानुभूतेर्विपरीतं जीवस्य क्षोभं चित्तस्वरूपं करोति **कलुसोत्ति य तं बुधा वेंति** तं क्रोधादिजनितं चित्त

दयाभाव करके [प्रतिपद्यते] उस दुःखके दूर करनेकी क्रियाको प्राप्त होता है [तस्य] उस पुरुषके [एषा] यह [अनुकम्पा] दया [भवति] होती है। **भावार्थ**—दयाभाव अज्ञानीके भी होता है और ज्ञानीके भी होता है परंतु इतना विशेष है कि अज्ञानीके जो दयाभाव है सो किसी ही पुरुषको दुःखित देखकर तो उसके दुःख दूर करनेके उपायमें अशुद्धिसे आकुलचित्त होकर प्रवर्ते है और जो ज्ञानी जीवके गुणस्थानानमें प्रवर्ते है, उसके दयाभाव जो होता है सो जब दुःखसमुद्रमें मग्न संसारीजीवोंको जानता है तब ऐसा जानकर किसी कालमें मनको खेद उपजाता है ॥ १३७ ॥ आगे चित्तकी कलुषताका स्वरूप दिखाते हैं,—[यदा] जिस समय [क्रोधः] क्रोध [वा] अथवा [मानः] अभिमान [वा] अथवा [माया] कुटिलभाव अथवा [लोभः] इष्ट वस्तुविषे [चित्तं] मनको [आसाद्य] प्राप्त होकर [जीवस्य] जीवके [क्षोभं] अतिआकुलतारूप भाव [करोति] करता है [तं] उसको [बुधाः] ज्ञानी महंत पुरुष कहते हैं कि [कालुष्यं इति] कलुष

1 [illegible]

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा सर्वद्रव्येषु ।
नास्रवति शुभमशुभं समसुखदुःखस्य भिक्षोः ॥ १४२ ॥

यस्य रागरूपो द्वेषरूपो मोहरूपो वा समग्रपरद्रव्येषु न हि विद्यते भावः तस्य निर्विकारचैतन्यत्वात्समसुखदुःखस्य भिक्षोः शुभमशुभं च कर्म नास्रवति । किन्तु संवियत एव। तदत्र मोहरागद्वेषपरिणामनिरोधो भावसंवरः । तन्निमित्तः शुभाशुभकर्मपरिणामनिरोधो योगद्वारेण प्रविशतां पुद्गलानां द्रव्यसंवर इति ॥ १४२ ॥

विशेषेण संवरस्वरूपाख्यानमेतत्,—

जस्स जदा खलु पुण्णं जोगे पावं च णत्थि विरदस्स ।
संवरणं तस्स तदा सुहासुहकदस्स कम्मस्स ॥ १४३ ॥

यस्य यदा खलु पुण्यं योगे पापं च नास्ति विरतस्य ।
संवरणं तस्य तदा शुभाशुभकृतस्य कर्मणः ॥ १४३ ॥

यस्य योगिनो विरतस्य सर्वतो निवृत्तस्य योगे वाङ्मनःकायकर्मणि शुभपरिणामरूपं

जिस्स । स च । रागो दोसो मोहो य जीवस्य शुद्धपरिणामात् परमधर्मलक्षणाद्विपरीतो रागद्वेषपरिणामो मोहपरिणामो वा । क्व । विषयेषु । सव्वदव्वेसु शुभाशुभसमस्तद्रव्येषु णासवदि सुहं असुहं नास्रवति शुभाशुभकर्म । कस्य । भिक्खुस्स तस्य रागादिरहितशुद्धोपयोगिनः तपोधनस्य । कथंभूतस्य । समसुहदुक्खस्स समस्तशुभाशुभसंकल्परहितशुद्धात्मध्यानसमुत्पन्नपरमसुखामृततृप्तिस्वभावात्समरसीभावेन अनभिव्यक्तसुखदुःखरूपहर्षविषादविकाराभावात्समसुखदुःखस्येति । अत्र शुभाशुभसंवरसमर्थः शुद्धोपयोगो भावसंवरः भावसंवराधारेण नवतरकर्मनिरोधो द्रव्यसंवर इति तात्पर्यार्थः ॥ १४२ ॥ अथायोगिचरमसमयजिनगुणस्थानापेक्षया निरवशेषेण पुण्यपापसंवरं प्रतिपादयति,—जस्स यस्य योगिनः । कथंभूतस्य । विरदस्स

[द्वेष] द्वेषभाव [वा] अथवा [मोह] वस्तुकी अश्रद्धारूप मोह [न विद्यते] नहीं है [“तस्य”] उस [समसुखदुःखस्य] समान है सुखदुःख रस जिसके ऐसे [भिक्षोः] महामुनिके [शुभं] शुभरूप [अशुभं] पापरूप पुद्गलद्रव्य [न आस्रवति] आस्रवभावको प्राप्त नहीं होता । भावार्थ—जिस जीवके रागद्वेष मोहरूप भाव परद्रव्योंमें नहीं है उसही समरसीके शुभाशुभ कर्मास्रव नहीं होता उसके संवर ही होता है इसकारण रागद्वेषमोहपरिणामोंका निरोध सो भावसंवर कहाता है उस भावसंवरके निमित्तसे योगद्वारोंसे शुभाशुभरूप कर्मवर्गणाओंका निरोध होना सो द्रव्यसंवर है ॥ १४२ ॥ आगे संवरका विशेष स्वरूप कहते हैं—[खलु यदा] निश्चय करके जिस समय [यस्य] जिस [विरतस्य] परद्रव्यत्यागीके [योगे]

---

१ संव । भवति

पुण्यमशुभपरिणामरूप पापञ्च यदा न भवति तस्य तदा शुभाशुभभावकृतस्य द्रव्यकर्मण सवर स्वकारणभावात्प्रसिद्ध्यति । तदत्र शुभाशुभपरिणामनिरोधो भावपुण्यपापसवरो द्रव्यपुण्यपापसवरस्य हेतु प्रधानोऽवधारणीय इति ॥ १४३ ॥ इति सवरपदार्थव्याख्यान समाप्तम् ।

अथ निर्जरापदार्थव्याख्यानम् । निर्जरास्वरूपाख्यानमेतत्,—

सवरजोगेहिं जुदो तवेहिं जो चिट्ठदे बहुविहेहिं ।
कम्माण णिज्जरण बहुगाण कुणदि सो णियद ॥ १४४ ॥

सवरयोगाभ्या युक्तस्तपोभिर्यश्चेष्टते बहुविधै ।
कर्मणा निर्जरण बहुकाना करोति स नियत ॥ १४४ ॥

शुभाशुभपरिणामनिरोध सवर, शुद्धोपयोग । ताभ्या युक्तस्तपोभिरनशनावमौदय

शुभाशुभसकल्पविकल्परहितस्य **णत्थि** नास्ति **जदा** **खलु** यदा काले स्फुट स्फुट । किं नास्ति । **पुण्ण पाव च** पुण्यपापद्वय । क नास्ति । **योगे** मनोवाक्कायकर्मणि । न केवल पुण्यपापद्वय नास्ति । वस्तुतस्तु योगोपि मवरण **तस्स तदा** तस्य भगवतस्तदा सवरण भवति । कस्य सबधि । **कम्मस्स** पुण्यपापरहितानतगुणस्वरूपपरमात्मनो विलक्षणस्य कर्मण । पुनरपि किंविशिष्टस्य । **सुहासुहकदस्स** शुभाशुभकृतस्येति । अत्र निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिभावसवरस्तन्निमित्तद्रव्यकर्मनिरोधो द्रव्यसवर इति भावार्थ ॥ १४३ ॥ एव नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये सवरपदार्थव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण **सप्तमोंतराधिकार** समाप्त ॥ अथ शुद्धात्मानुभूतिलक्षणशुद्धोपयोगसाध्ये निर्जराधिकारे 'सवरजोगेहिं जुदो' इत्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका । अथ निर्जरास्वरूप कथयति,—**सवर जोगेहिं जुदो**

मनवचनकायरूप योगोंमें [**पाप**] अशुभपरिणाम [**च**] और [**पुण्य**] शुभपरिणाम [**नास्ति**] नहीं है [**तदा**] उस समय [**तस्य**] उस मुनिके [**शुभाशुभकृतस्य कर्मण**] शुभाशुभ भावोंसे उत्पन्न कियेहुये द्रव्यकर्मास्रवोंके [**सवरण**] निरोधक सवरभाव होते हैं । **भावार्थ**—जब इस महामुनिके सर्वथाप्रकार शुभाशुभ योगोंकी प्रवृत्तिसे निवृत्ति होती है तब उसके आगामी कर्मोंका निरोध होता है। मूलकारण भावकर्म हैं जब भावकर्म ही चले जाय तब द्रव्यकर्म कहासे होय ? इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि शुभाशुभ भावोंका निरोध होना भावपुण्यपापसवर होता है । यह ही भावसवर द्रव्यपुण्यपापका निरोधक प्रधान हेतु है । इसप्रकार सवरपदार्थका व्याख्यान पूर्ण हुवा ॥ १४३ ॥ अब निर्जरापदार्थका व्याख्यान किया जाता है,—

[**य**] जो भेद विज्ञानी [**सवरयोगाभ्या**] शुभाशुभास्रवनिरोधरूप सवर और शुद्धोपयोगरूप योगोंकर [**युक्त**] सयुक्त [**बहुविधै**] नाना प्रकारके [**तपोभि**] अतरग बाहरग तपोंकर द्वारा [**चेष्टते**] उपाय करता है

वृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशादिभेदाद्बहिरङ्गैः प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदादन्तरङ्गैश्च बहुविधैर्यस्तपोभिर्वर्तते स खलु बहूनां कर्मणां निर्जरणं करोति। तदत्र कर्मवीर्यशातनसमर्थो बहिरङ्गान्तरङ्गतपोभिर्बृंहितः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा। तदनुभावनीरसीभूतानामेकदेशसंक्षयः समुपात्तकर्मपुद्गलानां द्रव्यनिर्जरेति ॥१४४॥

मुख्यनिर्जराकारणोपन्यासोऽयम्,—

जो संवरेण जुत्तो अप्पट्ठपसाधगो हि अप्पाणं।
मुणिऊण झादि णियदं णाणं सो संधुणोदि कम्मरयं ॥ १४५ ॥

यः संवरेण युक्तः आत्मार्थप्रसाधको ह्यात्मानं।
ज्ञात्वा ध्यायति नियतं ज्ञानं स संधुनोति कर्मरजः ॥ १४५ ॥

संवरयोगाभ्यां युक्तः निर्मलात्मानुभूतिबलेन शुभाशुभपरिणामनिरोधः संवरः, निर्विकल्पलक्षणध्यानशब्दवाच्यशुद्धोपयोगो योगस्ताभ्यां युक्तः तवहिं जो वट्टदे बहुविहेहिं तपोभिर्वर्तते बहुविधैः अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशभेदेन शुद्धात्मानुभूतिसहकारिकारणैर्बहिरङ्गषड्विधैस्तथैव प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानभेदेन सह शुद्धात्मस्वरूपप्रतपनलक्षणैरभ्यन्तरषड्विधैश्च तपोभिरतैश्च कम्माणं णिज्जरणं बहुगाणं कुणदि सो णियदं कर्मणां निर्जरणं बहुकानां करोति स पुरुषः नियतं निश्चितमिति। अत्र द्वादशविधतपसा वृद्धिं गतो वीतरागपरमानन्दैकलक्षणः कर्मशक्तिनिर्मूलनसमर्थः शुद्धोपयोगो भावनिर्जरा तस्य शुद्धोपयोगस्य सामर्थ्येन नीरसीभूतानां पूर्वोपार्जितकर्मपुद्गलानां संवरपूर्वकभावनैकदेशसंक्षयो द्रव्यनिर्जरेति सूत्रार्थः ॥१४४॥ अथात्मध्यानं मुख्यवृत्त्या निर्जराकारणमिति प्रकाशयति;—जो संवरेण जुत्तो यः संवरेण युक्तः यः कर्ता शुभाशुभरागाद्यास्रवनिरोधलक्षण

[स] वह पुरुष [नियतं] निश्चयकरकें [बहुकानां] बहुतसे [कर्मणां] कर्मोंकी [निर्जरणं] निर्जरा [करोति] करता है। भावार्थ—जो पुरुष संवर और शुद्धोपयोगसे संयुक्त, तथा अनसन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश इन छहप्रकारके बहिरंग तप तथा प्रायश्चित्त विनय वैय्यावृत्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग और ध्यान इन छःप्रकारके अंतरंग तपकर सहित है वह बहुतसे कर्मोंकी निर्जरा करता है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि अनेक कर्मोंकी शक्तियोंके गालनेको समर्थ द्वादश प्रकारके तपोंसे बढ़ा हुवा जो शुद्धोपयोग वही भावनिर्जरा है और भावनिर्जराके अनुसार नीरस होकर पूर्वमें बंधे हुये कर्मोंका एकदेश खिर जाना सो द्रव्यनिर्जरा है ॥ १४४ ॥ आगे निर्जराका कारण विशेषताके साथ दिखाते हैं—[यः] जो पुरुष

---

१ कर्म अपना रस देकर खिर जावे उसको निर्जरा कहते हैं।
२ पाठ।

यो हि संवरेण शुभाशुभपरिणामपरमनिरोधेन युक्तः परिज्ञातवस्तुस्वरूपः परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्तबुद्धिः केवलं स्वप्रयोजनसाधनोद्यतमनाः आत्मानं स्वोपलम्भेनोपलभ्य गुणगुणिनोर्वस्तुत्वेनाभेदात्तमेव ज्ञानं स्वं स्वेनाविचलितमनास्संचेतयते स खलु नितान्तनिस्स्नेहः प्रहीणस्नेहाभ्यङ्गपरिष्वङ्गशुद्धस्फटिकस्तम्भवत् पूर्वोपात्तं कर्मरजः संधुनोति । एतेन निर्जरामुख्यत्वे हेतुत्वं ध्यानस्य द्योतितमिति ॥ १४५ ॥

ध्यानस्वरूपाभिधानमेतत्,–

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व जोगपरिकम्मो ।
तस्स सुहासुहडहणो झाणमओ जायए अगणी ॥ १४६ ॥

यस्य न विद्यते रागो द्वेषो मोहो वा योगपरिकर्म ।
तस्य शुभाशुभदहनो ध्यानमयो जायते अग्निः ॥ १४६ ॥

संवरेण युक्तः **अप्पट्ठपसाहगो हि** आत्मार्थप्रसाधकः हि स्फुटं हेयोपादेयतत्त्वं विज्ञाय परप्रयोजनेभ्यो व्यावृत्य शुद्धात्मानुभूतिलक्षणकेवलस्वकार्यप्रसाधकः **अप्पाणं** सर्वात्मप्रदेशेषु निर्विकारनित्यानन्दैकाकारपरिणतमात्मानं **मुणिदूण** मत्वा ज्ञात्वा रागादिविभावरहितस्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा **झादि** निश्चलात्मोपलब्धिलक्षणनिर्विकल्पध्यानेन ध्यायति **णियदं** निश्चितं घोरोपसर्गपरीषहप्रस्तावे निश्चलं यथा भवति । कथंभूतमात्मानं । **णाणं** निश्चयेन गुणगुणिनोरभेदादविभिन्नभेदज्ञानपरिणतत्वादात्मापि ज्ञानं **सो** स पूर्वोक्तलक्षणः परमात्मध्यानध्याता । किं करोति । **संधुणोदि कम्मरयं** संधुनोति कर्मरजो निर्जरयतीति । अत्र यदुक्तरया ध्यानं निर्जराकारणं व्याख्यातमिति सूत्रतात्पर्यं ॥ १४५ ॥ अथ पूर्वं यन्निर्जराकारणं भणितं ध्यानं तस्योत्पत्तिसा-

[संवरेण युक्तः] संवरभावोंकर संयुक्त है तथा **[आत्मार्थप्रसाधकः]** आत्मीक स्वभावका साधनहारा है । **[सः]** वह पुरुष **[हि]** निश्चय करके **[आत्मानं]** शुद्ध चिन्मात्र आत्मस्वरूपको **[ज्ञात्वा]** जान करके **[नियतं]** सदैव **[ज्ञानं]** आत्माके सर्वस्वको **[ध्यायति]** ध्याता है वही पुरुष **[कर्मरजः]** कर्मरूपी धूलिको **[संधुनोति]** उड़ा देता है । भावार्थ—जो पुरुष कर्मोंके निरोधकर संयुक्त है, आत्मस्वरूपका जाननहारा है, सो परकार्यसे निवृत्त होकर आत्मकार्यका उद्यमी होता है, तथा अपने स्वरूपको पाकर गुणगुणीके अभेद कथनकर अपने ज्ञानगुणको आपसे अभेद निश्चल अनुभवै है, वह पुरुष सर्वथाप्रकार वीतराग भावोंके द्वारा पूर्वकालमें बंधे हुए कर्मरूपी धूलिको उड़ा देता है अर्थात् कर्मोंको खपा देता है । जैसे चिकनाईरहित शुद्धस्फटिकका थंभ निर्मल होता है उसीप्रकार निर्जराका मुख्य हेतु ध्यान है अर्थात् निर्जराका कारण है ॥१४५॥ अब ध्यानका स्वरूप कहते हैं,–**[यस्य]** जिस जीवके

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible]
[illegible]

तथा चोक्तम्—"अज्जवि तियरणसुद्धा, अप्पा झाएवि लहइ इदत्त। लोयंतियदेवत्त तत्थ चुया णिव्वुदिं जंति" ॥ अतो णत्थि सुंईण कालो थोओ वय च दुम्मेहा। तण्णवरि सिक्खियव्व ज जरमरण खइ कुणइ" ॥ १४६ ॥ इति निर्जरापदार्थव्याख्यान समासम्।

णाणिस्स त अप्पसहावविदे ण हु मण्णइ सो दु अण्णाणी" "अज्जवि तियरणसुद्धा अप्पा णाए वि लहहि इदत्त लोयंतियदेवत्त तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंति"। तत्र युक्तिमाह। पंचमकाले यथा ख्यातसंज्ञ निश्चयचारित्र नास्ति तर्हि सरागचारित्रसंज्ञमपहृतसंयममाचरतु तपस्विन। तथा चोक्त तत्त्वानुशासनध्यानग्रंथे "चरितारो न सन्त्यद्य यथाख्यातस्य सम्प्रति। तत्किमन्ये यथा शक्तिमाचरन्तु तपोधनाः"। यच्चोक्त सकलश्रुतधारिणा ध्यान भवति तदुत्सर्गवचन, अपवादव्याख्याने तु पंचसमितित्रिगुप्तिप्रतिपादकश्रुतिपरिज्ञानमात्रेणैव केवलज्ञान जायते यद्येव न भवति तर्हि "तुसमास घोसतो सिवभूदी केवली जादो" इत्यादि वचन कथ घटते। तथा चोक्त चारित्रसारादिग्रंथे पुलाकादिपंचनिर्ग्रंथव्याख्यानकाले। मुहूर्तादूर्ध्वं ये केवलज्ञानमुत्पादयन्ति ते निर्ग्रंथा भण्यते क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनस्तेषामुत्कृष्टेन श्रुत चतुर्दशपूर्वाणि जघन्येन पुन पंचसमितित्रिगुप्तिसंज्ञा अष्टौ प्रवचनमातर। यदप्युक्त वज्रवृषभनाराचोत्तमसंहननो ध्यान भवति तदप्युत्सर्गवचन अपवादव्याख्यान पुनरपूर्वादिगुणस्थानवर्तिनां उपशमक्षपकश्रेण्योर्यच्छुक्लध्यान तदपेक्षया स नियम अपूर्वादधस्तनगुणस्थानेषु धर्मध्याने निषेधक न भवति। तदप्युक्त तत्रैव तत्त्वानुशासने "यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वच। श्रेण्योर्ध्यान प्रतीत्योक्त तन्नाधस्तान्निषेधक॥" एव स्तोकश्रुतेनापि ध्यान भवतीति ज्ञात्वा किमपि शुद्धात्मप्रतिपादक संवरनिर्जराकारण जरमरणहर सारोपदेश गृहीत्वा ध्यान कर्तव्यमिति भावार्थ। उक्त च। "अतो णत्थि सुदीण कालो थोओ वय च दुम्मेहा तण्णवरि सिक्खियव्व ज जरमरण खय कुणइ" ॥ १४६ ॥ एव नवपदार्थप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये निर्जराप्रतिपादकमुख्यत्वेन गाथात्रयेणाष्टमोऽन्तराधिकार समाप्त ॥ अथ निर्विकारपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्च

गर्भित ध्यानका अनुभवी है, इसकारण परमात्मपदको पाता है[1]। इसप्रकार निर्जरा पदार्थका व्याख्यान पूरा हुआ ॥ १४६ ॥ अब बन्ध पदार्थका व्याख्यान किया जाता

---

१ अद्यापि त्रिरत्नशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभन्ते इन्द्रत्वम्। [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ॥ १ ॥

१ [illegible] इसको इस काल [illegible]
[illegible]

द्रव्यबन्धस्य हेतुमाख्यानमेतत् ।—

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा ।
सो तेण हवदि बंधो पोग्गलकम्मेण विविहेण ॥ १४७ ॥

यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा ।
स तेन भवति बद्धः पुद्गलकर्मणा विविधेन ॥ १४७ ॥

यदि अन्यद्रव्यसंयोगाश्रयणज्ञानादिरक्तः कर्मोदयप्रभावत्वादुदीर्णं शुभमशुभं वा भावं करोति, तदा स आत्मा तेन निमित्तभूतेन भावेन पुद्गलकर्मणा विविधेन बद्धो भवति । तदत्र मोहरागद्वेषस्निग्धः शुभोऽशुभो वा परिणामो जीवस्य भावबन्धः । तन्निमित्तेन शुभाशुभकर्मत्वपरिणतानां जीवेन सहान्योन्यमूर्च्छनं पुद्गलानां द्रव्यबन्ध इति ॥ १४७ ॥

यदिदानीं द्व्यबन्धकारणमाख्यानमेतत् ।—

जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो ।
भावणिमित्तो बंधो भावो रदिरागदोसमोहजुदो ॥ १४८ ॥

धर्मोऽस्माकमिति ज्ञान बन्धाधिकारे “जं सुह” मित्यादि गाथात्रयेण समुदायपातनिका । अथ बन्धस्वरूपं कथयति—जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा यं शुभाशुभमुदीर्णं भावं रक्तः करोति यद्यात्मा यद्ययमात्मा निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोऽपि व्यवहारेणानादिबन्धनोपाधिवशाद्रक्तः सन् निर्मलज्ञानानन्दादिगुणास्पदशुद्धात्मस्वरूपपरिणतेः पृथग्भूतामुदयागतं शुभमशुभं वा स्वसंवित्तिच्युतो भूत्वा भावं परिणामं करोति सो तेण हवदि बंधो तदा स आत्मा तेन रागपरिणामेन कर्तृभूतेन बद्धो भवति । केन करणभूतेन । पोग्गलकम्मेण विविहेण कर्मवर्गणारूपपुद्गलकर्मणा विविधेनेति । अत्र शुद्धात्मपरिणतेर्विपरीतशुभाशुभपरिणामो भावबन्धः तन्निमित्तेन तैलम्रक्षितानां मलबन्ध इव जीवेन सह कर्मपुद्गलानां संश्लेषो द्रव्यबन्ध इति सूत्राभिप्रायः ॥ १४७ ॥ अथ बहिरंगान्तरङ्गबन्धकारणमुपदिशति;—

है,—[यदि] जो [रक्तः] अज्ञानभावमें रागी होकर [आत्मा] यह जीवद्रव्य [यं] जिस [शुभं अशुभं] शुभाशुभरूप [उदीर्णं] प्रकट हुये [भावं] भावको [करोति] करता है [सः] वह जीव [तेन] तिस भावसे [विविधेन पुद्गलकर्मणा] अनेक प्रकारके पौद्गलीक कर्मोंसे [बद्धः भवति] बँध जाता है । भावार्थ—जो यह आत्मा परद्रव्य सम्बन्ध अनादि अविनाश सहित होकर कर्मके उदयसे जिस शुभाशुभ भावको करता है तब यह आत्मा उसही कालमें उस अशुद्ध उपयोगरूप भावका निमित्त पाकरके पौद्गलिक कर्मोंसे बँधता है । इससे यह बात भी सिद्ध हुई कि इस आत्माके जो रागद्वेषमोहरूप स्निग्ध शुभअशुभ परिणाम हैं उनका नाम तो भावबन्ध है उस भावबन्धका निमित्त पाकर शुभअशुभरूप कर्मवर्गणामयी पुद्गलोंका जीवके साथ आपसमें परस्पर बंध होना जिसका नाम द्रव्यबंध है ॥ १४७ ॥ आगे बंधके

योगनिमित्तं ग्रहणं योगो मनोवचनकायसंभूतः ।
भावनिमित्तो बन्धो भावो रतिरागद्वेषमोहयुतः ॥ १४८ ॥

ग्रहणं हि कर्मपुद्गलानां जीवप्रदेशवर्तिकर्मस्कन्धानुप्रवेशः । तत् खलु योगनिमित्तं । योगो वाङ्मनःकायकर्मवर्गणालम्बनात्मप्रदेशपरिस्पन्दः । बन्धस्तु कर्मपुद्गलानां विशिष्टशक्तिपरिणामेनावस्थानम् । स पुनर्जीवभावनिमित्तः । जीवभावः पुनः रतिरागद्वेषमोहयुतः । मोहनीयविपाकसंपादितविकार इत्यर्थः । तदत्र पुद्गलानां ग्रहणहेतुत्वाद्बहिरङ्गकारणं योगः । विशिष्टशक्तिस्थितिहेतुत्वादन्तरङ्गकारणं जीवभाव एवेति ॥ १४८ ॥

योगनिमित्तेन ग्रहणं कर्मपुद्गलादानं भवति । योग इति कोऽर्थः । **जोगो मणवयणकायसंभूदो** योगो मनोवचनकायसंभूतः निष्क्रियनिर्विकारचिज्ज्योतिःपरिणामाद्भिन्नो मनोवचनकायवर्गणालंबनरूपो व्यापारः आत्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणो वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितः कर्मादानहेतुभूतो योगः **भावणिमित्तो बंधो** भावनिमित्तो भवति । स कः । स्थित्यनुभागबन्धः । भावः कथ्यते । **भावो रदिरागदोसमोहजुदो** रागादिदोषरहितचैतन्यप्रकाशपरिणतेः पृथग्भूताः कषायादिदर्शनचारित्रमोहनीयत्रीणि द्वादशभेदात् पृथग्भूतो भावो रतिरागद्वेषमोहयुक्तः । अत्र रतिशब्देन हास्यादिनोकषायान्तर्भूता रतिर्ग्राह्या, रागशब्देन तु मायालोभरूपो रागपरिणाम इति, द्वेषशब्देन तु क्रोधमानारतिशोकभयजुगुप्सारूपो द्वेषपरिणामो षट्प्रकारो भवति, मोहशब्देन दर्शनमोहो गृह्यते इति । अत्र यतः कारणात्कर्मादानरूपेण प्रकृतिप्रदेशबन्धहेतुत्वात

बहिरंग अन्तरंग कारणोंका स्वरूप दिखाते हैं,—[**योगनिमित्तं ग्रहणं**] योगोंका निमित्त पाकर कर्मपुद्गलोंका जीवके प्रदेशोंमें परस्पर एक क्षेत्रावगाहकर ग्रहण होता है [**योगः मनोवचनकायसंभूतः**] योग जो है सो मनवचनकायकी क्रियासे उत्पन्न होता है । [**बंधः भावनिमित्तः**] ग्रहण तो योगोंसे होता है और बंध एक अशुद्धोपयोगरूप भावोंके निमित्तसे होता है और [**भावः**] वह भाव जो है सो कैसा है कि [**रतिरागमोहयुतः**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रतिरागद्वेष मोह करके संयुक्त होता है । **भावार्थ**—जीवोंके प्रदेशोंमें कर्मोंका आगमन तो योगपरिणतिसे होता है पूर्वकी बंधीहुई कर्मवर्गणाओंका अवलंबन पाकर आत्मप्रदेशोंका प्रकंपन होना उसका नाम योगपरिणति है । और विशेषतया निज शक्तिके परिणामसे जीवके प्रदेशोंमें पुद्गलकर्मपिंडोंका रहना उसका नाम बंध है । वह बंध मोहनीयकर्मजनित अशुद्धोपयोगरूप भावके विना जीवके कदाचित् नहीं होता । यद्यपि योगोंके द्वारा भी बंध होता है तथापि स्थिति अनुभागके विना जानकर उसका नाम मात्र ही ग्रहण होता है क्योंकि बंध उसहीका नाम है जो स्थिति अनुभागकी विशेषता लिये हो, इसकारण यह बात सिद्ध हुई

---

१ बन्धः २ योगात् प्रकृतिप्रदेशबन्धौ ।

भवत्यास्रवभावाभावः । आस्रवभावाभावे भवति कर्माभावः । कर्माभावेन भवति सार्वज्ञं सर्वदर्शित्वमव्याबाधमिन्द्रियव्यापारातीतमनन्तसुखत्वञ्चेति । स एष जीवन्मुक्तिनामा भावमोक्षः । कथमिति चेत् । भावः खल्वत्र विवक्षितः कर्मावृतचैतन्यस्य क्रमप्रवर्तमानज्ञप्तिक्रियारूपः । स खलु संसारिणोऽनादिमोहनीयकर्मोदयानुवृत्तिवशादशुद्धो द्रव्यकर्मास्रवहेतुः । स तु ज्ञानिनो मोहरागद्वेषानुवृत्तिरूपेण प्रहीयते । ततोऽस्य आस्रवभावो निरुध्यते । ततो निरुद्धास्रवभावस्यास्य मोहक्षयेणात्यन्तनिर्विकारमनादिमुद्रितानन्तचैतन्य-

चिन्ता भावास्रवस्वरूपेण विना **जायदि कम्मस्स दु णिरोधो** मोहनीयादिघातिचतुष्टयरूपस्य कर्मणो जायते निरोधो विनाशः । इति प्रथमगाथा । **कम्मस्साभावेण य** घातिकर्मचतुष्टयस्याभावेन च **सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य** सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च सन् । किं करोति । **पावदि** प्राप्नोति । किं । सुहं सुखं । किं विशिष्टं । **इंदियरहिदं अव्वाबाहमणंतं** अतीन्द्रियमव्याबाधमनन्तं चेति । इति संक्षेपेण भावमोक्षो ज्ञातव्यः । तद्यथा । कोसौ भावः कथं मोक्ष इति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह—भावः स त्वत्र विवक्षितः कर्मावृतसंसारिजीवस्य क्षायोपशमिकज्ञानविकल्परूपः । स चानादिमोहोदयवशेन रागद्वेषमोहरूपेणाशुद्धो भवतीति । इदानीं तस्य भावस्य मोक्षः कथ्यते । यदायं जीवः आगमभाषया कालादिलब्धिरूपमध्यात्मभाषया शुद्धात्माभिमुखपरिणामरूपं स्वसंवेदनज्ञानं लभते तदा प्रथमतस्तावन्मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनामुपशमेन क्षयोपशमेन च सरागसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा पंचपरमेष्ठिभक्त्यादिरूपेण पराश्रितधर्म्यध्यानबहिरंगसहकारि-

आस्रवभावका अभाव **[जायते]** होता है **[तु]** और **[आस्रवभावेन विना]** कर्मका आगमन न होनेसे **[कर्मणः]** ज्ञानावरणादि कर्मबंधका **[निरोधः]** अभाव **[जायते]** होता है । **[च]** और **[कर्मणाम्]** ज्ञानावरणादि कर्मोंका **[अभावेन]** विनाश करके **[सर्वज्ञः]** सबका जाननहारा **[च]** और **[सर्वलोकदर्शी]** सबका देखनहारा होता है तब वह **[इन्द्रियरहितं]** इन्द्रियाधीन नहीं और **[अव्याबाधं]** बाधारहित **[अनन्तं]** अपार ऐसे **[सुखं]** आत्मीक सुखको **[प्राप्नोति]** प्राप्त होता है । **भावार्थ**—जीवके आस्रवका कारण मोहरागद्वेषरूप परिणाम है जब इन तीन अशुद्ध भावोंका विनाश होय तब ज्ञानी जीवके अवश्य ही आस्रवभावोंका अभाव होता है । जब ज्ञानीके आस्रवभावका अभाव होता है तब कर्मका नाश होता है कर्मोंके नाश होनेपर निरावरण सर्वज्ञपद तथा सर्वदर्शीपद प्रगट होता है । और अखंडित अतीन्द्रिय अनन्त सुखका अनुभवन होता है इस पदका नाम जीवन्मुक्त भावमोक्ष कहा जाता है इसप्रकार जीव रहता हुआ भावकर्मरहित सर्वथा शुद्ध भावसंयुक्त मुक्त है इसकारण जीव मुक्त कहाते हैं । जो कोई पूछे कि किसप्रकार जीव मुक्त होते हैं सो कहते हैं कि कर्मकर आच्छादित जो भाव क्रमसे प्रवर्ते है जो ज्ञान क्रियारूप भाव सो संसारी जीवके अनादि मोहनीयकर्मके बलसे अशुद्ध है द्रव्यकर्मके आस्रव

वीर्यस्य शुद्धज्ञप्तिक्रियारूपेणान्तर्मुहूर्तमतिवाह्य युगपज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयेण कथञ्चित् कूटस्थज्ञानतामवाप्य ज्ञप्तिक्रियारूपे क्रमप्रवृत्त्यभावाद् भावकर्म विनश्यति । ततः कर्माभावे स हि भगवान्सर्वज्ञः सर्वदर्शी व्युपरतेन्द्रियव्यापारोऽव्याबाधानन्तसुखश्च नित्यमेवावतिष्ठते । इत्येष भावकर्ममोक्षप्रकारः द्रव्यकर्ममोक्षहेतुः परमसंवरप्रकारश्च ॥ १५०।१५१॥

द्रव्यकर्ममोक्षहेतुपरमनिर्जराकारणध्यानाख्यानमेतत्,—

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं ।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स ॥ १५२ ॥

रित्वेनानन्तज्ञानादिस्वरूपोऽहमित्यात्मभावनास्वरूपमाश्रित्य धर्मध्यानं प्राप्य आगमकथितक्रमेणासंयतसम्यग्दृष्ट्यादिगुणस्थानचतुष्टयमध्ये क्वापि गुणस्थाने दर्शनमोहक्षयेण क्षायिकसम्यक्त्वं कृत्वा तदनन्तरमपूर्वादिगुणस्थानेषु प्रकृतिपुरुषनिर्मलविवेकज्योतीरूपप्रथमशुक्लध्यानमनुभूय रागद्वेषरूपचारित्रमोहोदयाभावेन निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिरूपं चारित्रमोहविध्वंसनसमर्थं वीतरागचारित्रं प्राप्य मोहक्षपणं कृत्वा मोहक्षयानन्तरं क्षीणकषायगुणस्थानेऽन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा द्वितीयशुक्लध्यानेन ज्ञानदर्शनावरणान्तरायकर्मत्रयं युगपदन्त्यसमये निर्मूल्य केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयस्वरूपं भावमोक्षं प्राप्नोतीति भावार्थः ॥ १५० । १५१ ॥ एवं भावमोक्षस्वरूपकथनरूपेण गाथाद्वयं गतं । अथ वेदनीयादिशेषाघातिकर्मचतुष्टयविनाशरूपायाः सकलद्रव्यनिर्जरायाः कारणं ध्यानं

वका कारण है सो भावज्ञानी जीवके मोहरागद्वेषरूपी प्रवृत्तिसे कमी होता है अतएव इस भेदविज्ञानीके आस्रवभावका निरोध होता है । जब इसके मोहकर्मका क्षय होता है तब इसके अनन्त निर्विकार वीतराग चारित्र प्रगट होता है अनादिकालसे आस्रव आवरण द्वारा अनन्त चैतन्यशक्ति इस आत्माकी मुद्रित (ढकीहुई) है वही इस ज्ञानीके शुद्ध-क्षायोपशमिक निर्मोहज्ञानक्रियाके होतेसते अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त रहता है तत्पश्चात् एक ही समयमें ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय कर्मके क्षय होनेसे कथंचित्प्रकार कूटस्थ अचल केवलज्ञान अवस्थाको प्राप्त होता है उससमय ज्ञानक्रियाकी प्रवृत्ति क्रमसे नहीं होती क्योंकि भावकर्मका अभाव है सो ऐसी अवस्थाके होनेसे वह भगवान् सर्वज्ञ सर्वदर्शी इन्द्रियव्यापाररहित अव्याबाध अनन्त सुखसंयुक्त सदाकाल थिरस्वभावसे स्वरूपगुप्त रहते हैं । यह भावकर्मसे मुक्तका स्वरूप दिखाया, और यह ही द्रव्यकर्मसे मुक्त होनेका कारण परम संवरका स्वरूप है । जब यह जीव केवलज्ञानदशाको प्राप्त होता है तब इसके चार अघातिया कर्म जलीहुई जेवडीकी तरह द्रव्यकर्म रहते हैं । उन द्रव्यकर्मोंके नाशको अनन्त चतुष्टय परम संवर कहते हैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥ आगे द्रव्यकर्म मोक्षका कारण और परम निर्जराका कारण ध्यानका स्वरूप दिखाते हैं,–[**दर्शनज्ञानसमग्रं**]

१ निःसंज्ञात्वम् ।

व्यपदेशार्हमात्मन स्वरूप पूर्वसंचितकर्मणा शक्तिशातन वा विलोक्य निर्जराहेतुत्वेनोपवर्ण्यत इति ॥ १५२ ॥

द्रव्यमोक्षस्वरूपाख्यानमेतत्,—

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि ।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भव तेण सो मोक्खो ॥ १५३ ॥

य संवरेण युक्तो निर्जरन्नथ सर्वकर्माणि ।
व्यपगतवेद्यायुष्को मुञ्चति भव तेन स मोक्ष ॥ १५३ ॥

णुरिति कोऽर्थ रागादिविकल्परहिता सूक्ष्मावस्था । तस्या सूक्ष्मत्व कथमिति चेत् । इंद्रियमनोविकल्पाविषयत्वादिति भावपरमाणुशब्दस्य व्याख्यान ज्ञातव्य । अयमत्र भावार्थ —प्राथमिकानां चित्तस्थिरीकरणार्थं विषयाभिलाषरूपध्यानवञ्चनार्थं च परपरया मुक्तिकारण पचपरमेष्ठ्यादिपरद्रव्य ध्येय भवति दृढतरध्यानाभ्यासेन चित्ते स्थिरे जाते सति निजशुद्धात्मस्वरूपमेव ध्येय । तथा चोक्तम् श्रीपूज्यपादस्वामिभि निश्चयध्येयव्याख्यान । आत्मानमात्मा आत्मन्येवात्मनात्मा क्षणमुपजनयन्सन् स्वयभू प्रवृत्त । अस्य व्याख्यान क्रियते । आत्मा कर्ता आत्मान कर्मतापन्न आत्मन्येवाधिकरणभूते आत्मना करणभूतेन असौ प्रत्यक्षीभूतात्मा क्षणमन्तर्मुहूर्तमुपजनयन् धारयन् सन् स्वयभू प्रवृत्त सर्वज्ञो जात इत्यर्थ । इति परस्परसापेक्षनिश्चयव्यवहारनयाभ्या साध्यसाधकभाव ज्ञात्वा ध्येयविषये विवादो न कर्तव्य ॥ १५२ ॥ अथ सकलमोक्षमङ्ग द्रव्यमोक्षमावेदयति,—**जो** य कर्ता **संवरेण जुत्तो** परमसंवरेण युक्त । किं कुर्वन् । **णिज्जरमाणो य** निर्जरयथ । कानि । **सव्वकम्माणि** सर्वकर्माणि । पुन किंविशिष्ट । **ववगदवेदाउस्सो** व्यपगतवेदनीयायुर्नामगोत्रकर्मद्वय । एवभूत स किंकरोति । **मुअदि भव** त्यजति

नसे रहित होता है । ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके जानेपर अनन्तज्ञान अनन्त दर्शनसे शुद्धचेतनामयी होता है इसकारण अतीन्द्रिय रसका आस्वादी होकर बाह्य पदार्थोंके रसको नहीं भोगता । और वही परमेश्वर अपने शुद्ध स्वरूपमें अखडित चैतन्यस्वरूपम प्रवर्त्ते है । इसकारण कथंचित्प्रकार अपने स्वरूपका ध्यानी भी है अर्थात् परद्रव्यसयोगसे रहित आत्मस्वरूपध्यान नामको पाता है इसकारण केवलीके भी उपचारमात्र स्वरूपअनुभवनकी अपेक्षा ध्यान कहा जाता है । पूर्वबधे कर्म अपनी शक्तिकी कमीसे समय समय खिरते रहते हैं, इसकारण वहाँ ध्यान निर्जराका कारण है । यह भावमोक्षका स्वरूप जानना ॥ १५२ ॥ आगें द्रव्यमोक्षका स्वरूप कहते हैं,–[**यः**] जो पुरुष [**संवरेण युक्त**] आत्मानुभवरूप परमसंवरसे संयुक्त है [**अथ**] अथवा [**सर्वकर्माणि**] अपने समस्त पूर्वबन्ध कर्मोंको [**निर्जरन्**] अनुक्रमसे खपाता हुआ प्रवर्त्ते है । और जो पुरुष [**व्यपगतवेद्यायुष्क**] दूर गया है वेदनीय नाम गोत्र आयु

वादनिंदितं तच्चरितं, तदेव मोक्षमार्ग इति । द्विविधं हि किल संसारिषु चरितं । स्वच-रितं परचरितं च । स्वसमयपरसमयावित्यर्थः । तत्र स्वभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं स्वचरितम् । परभावावस्थितास्तित्वस्वरूपं परचरितम् । तत्र यत्स्वभावावस्थितास्तित्वरूपं परभा-वावस्थितास्तित्वव्यावृत्तत्वेनात्यन्तमनिन्दितम्, तदत्र साक्षान्मोक्षमार्गत्वेनावधारणीय-मिति ॥ १५४ ॥

भणियं चरितं च तयोर्नियतमस्तित्वमनिंदितं भणितं कथितं । किं । चारित्रं च । किं तत् । अस्तित्वं । किंविशिष्टं । तयोर्ज्ञानदर्शनयोर्नियतं स्थितं । पुनरपि किंविशिष्टं । रागादभावाद-निंदितं, इदमेव चरितं मोक्षमार्ग इति । अथवा द्वितीयव्याख्यानं । न केवलं केवलज्ञानदर्शनद्वयं जीवस्वभावो भवति किंतु पूर्वोक्तलक्षणं चरितं स्वरूपास्तित्वं चेति । इतो विस्तर:— समस्तवस्तुगतानंतधर्माणां युगपद्विशेषपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानं तथा सामान्ययुग-पत्परिच्छित्तिसमर्थं केवलदर्शनमिति जीवस्वभावः । कस्मादिति चेत् । सहजशुद्ध-सामान्यविशेषचैतन्यात्मकजीवास्तित्वात्सकाशात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि द्रव्यक्षेत्रकालभावैर-भेदादिति पूर्वोक्तजीवस्वभावादभिन्नमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिंद्रियव्यापाराभावान्निर्विकारमदूषितं चेत्येवं गुणविशिष्टस्वरूपास्तित्वं जीवस्वभावनियतचरितं भवति । तदपि कस्मात् । स्वरूपे चरणं चारित्रमितिवचनात् । तच्च द्विविधं स्वयमनाचरतोपि परानुभूतेष्टकामभोगेषु स्मरणमपध्या-नलक्षणमिति तदादि परभावपरिणमनं परचारितं तद्विपरीतं स्वचरितं । इदमेव चारित्रं परमार्थशब्द-वाच्यस्य मोक्षस्य कारणं न चान्यदित्यजानता मोक्षाद्भिन्नस्यासारसंसारस्य कारणभूतेषु मिथ्यात्वरा-गादिषु निरतानामस्माकमेवानंतकालो गतः, एवं ज्ञात्वा तदेव जीवस्वभावनियतचरितं मोक्षकारणभूतं निरंतरं भावनीयमिति सूत्रतात्पर्यं । तथाचोक्तं । "एमेव गओ कालो असारसंसारकारणरयाण ।

जो है सो [अनिन्दित] निर्मल [चारित्र] आचरणरूप चारित्रगुण [भणित] सर्वज्ञ वीतरागदेवने कहा है । भावार्थ—जीवके स्वभाव भावोंकी जो थिरता है, उसका नाम चारित्र, कहाजाता है वही चारित्र मोक्षमार्ग है । वे जीवके स्वाभाविक भाव ज्ञान दर्शन हैं और वे आत्मासे अभेद और भेदस्वरूप हैं । एक चैतन्यभावकी अपेक्षा अभेद हैं और वह ही एक चैतन्यभाव सामान्यविशेषकी अपेक्षा दो प्रकारका है दर्शन सामान्य है ज्ञानका स्वरूप विशेष है चेतनाकी अपेक्षा ये दोनो एक हैं ये ज्ञानदर्शन जीवके स्वरूप हैं, इनका जो निश्चल थिर होना अपनी उत्पादव्ययध्रुवतासे और रागादिक परिणतिके अभावसे निर्मल होना उसका नाम चारित्र है वही मोक्षका मार्ग है । इस संसारमें चारित्र दो प्रकारका है । एक स्वचारित्र और दूसरा परचारित्र है । स्वचारित्रको स्वसमय और परचारित्रको परसमय कहते हैं । जो परमात्मामें थिरभाव सो तो स्वचारित्र है और जो आत्माका परद्रव्यमें लगनरूप थिरभाव सो परचारित्र है । इनमेंसे जो आत्मा भावोंमें थिरताकर

यावत् । अथ खलु यदि कथञ्चनोद्भिन्नसम्यग्ज्ञानज्योतिर्जीवः परसमयं व्युदस्य स्वसमयमुपादत्ते तदा कर्मबन्धादवश्यं भ्रश्यति । यतो हि जीवस्वभावनियतं चरितं मोक्षमार्ग इति ॥ १५५ ॥

परचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत्,—

जो परदव्वम्मि सुहं असुहं रागेण कुणदि जदि भावं ।
सो सगचरित्तभट्ठो परचरियचरो हवदि जीवो ॥ १५६ ॥

यः परद्रव्ये शुभमशुभं रागेण करोति यदि भावं ।
स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचरो भवति जीवः ॥ १५६ ॥

यो हि मोहनीयोदयानुवृत्तिवशाद्रज्यमानोपयोगः सन्, परद्रव्ये शुभमशुभं वा भाव-

---

कर्मबंधात् तदा केवलज्ञानाद्यनंतगुणव्यक्तिरूपो मोक्षात्प्रतिपक्षभूतो योऽसौ बंधस्तस्माच्च्युतो भवति । ततो ज्ञायते स्वसंवित्तिलक्षणस्वसमयरूपं जीवस्वभावनियतचरितमेव मोक्षमार्ग इति भावार्थः ॥१५५॥ एवं स्वसमयपरसमयभेदसूचनरूपेण गाथा गता। अथ परसमयपरिणतपुरुषस्वरूपं पुनरपि व्यक्तीकरोति,—**जो परदव्वह्मि सुहं असुहं रायेण कुणदि जदि भावं** यः परद्रव्ये शुभमशुभं वा रागेण करोति यदि भावं **सो सगचरित्तभट्ठो** सः स्वकचरित्रभ्रष्टः सन् **परचरियचरो हवदि जीवो** परचरित्रचरो भवति जीव इति । तथाहि—यः कर्ता शुद्धगुणपर्याय-

---

बन्ध होनेसे **[प्रभ्रश्यति]** रहित होता है । **भावार्थ**—यद्यपि यह संसारी जीव अपने निश्चित स्वभावसे ज्ञानदर्शनमें तिष्ठै है तथापि अनादि मोहनीय कर्मके वशीभूत होनेसे अशुद्धोपयोगी होकर अनेक परभावोंको धारण करता है । इस कारण निजगुणपर्यायरूप नहीं परिणमता परसमयरूप प्रवर्तै है । इसीलिये परचारित्रके आचरनेवाला कहा जाता है । और वह ही जीव यदि काल पाकर अनादिमोहिनीयकर्मकी प्रवृत्तिको दूर करके अत्यन्त शुद्धोपयोगी होता है और अपने एक निजरूपको ही धारै है, अपने ही गुणपर्यायोंमें परिणमता है, स्वसमयरूप प्रवर्तै है तब आत्मीक चारित्रका धारक कहा जाता है । जो यह आत्मा किसी प्रकार निसर्ग अथवा अधिगमसे प्रगट हो सम्यग्ज्ञान ज्योतिमयी होता है, परसमयको त्याग कर स्वसमयको अंगीकार करता है तब यह आत्मा अवश्य ही कर्मबन्धसे रहित होता है क्योंकि निश्चल भावाके आचरणसे ही मोक्ष सधता है ॥१५५॥ आगे परचारित्ररूप परसमयका स्वरूप कहा जाता है,—**[यः]** जो अविद्या विद्याका मलीन जीव **[परद्रव्ये]** आत्मीक वस्तुसे विपरीत परद्रव्यमें **[रागेण]** मदिरापानवत् मोहरूपभावसे **[यदि]** जो **[शुभं]** दान भक्ति सयमादि भाव अथवा **[अशुभं भावं]** विषयकषायादि अशुभ भावको **[करोति]** करता है **[सः जीवः]** वह जीव **[स्वकचरित्रभ्रष्टः]** आत्मीक शुद्धाचरणसे रहित **[परचरितचरः]** परसमयका आचरणवाला **[भवति]** होता

माददाति स स्वकचरित्रभ्रष्टः परचरितचर इति उपगीयते । यतो हि स्वद्रव्ये शुद्धोपयोगवृत्तिः स्वचरितं । परद्रव्ये सोपरागोपयोगवृत्तिः परचरितमिति ॥ १५६ ॥

परचरितप्रवृत्तेर्बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिषेधनमेतत्,—

आसवदि जेण पुण्णं पावं वा अप्पणोध भावेण ।
सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवंति ॥ १५७ ॥

आस्रवति येन पुण्यं पापं वात्मनोऽथ भावेन ।
स तेन परचरित्रः भवतीति जिना प्ररूपयन्ति ॥ १५७ ॥

इह किल शुभोपरक्तो भावः पुण्यास्रवः । अशुभोपरक्तः पापास्रव इति । तत्र पुण्य

रिणतिरिजशुद्धात्मद्रव्यात्परिभ्रष्टो भूत्वा [illegible] रागभावेन परिणम्य शुभाशु भपरद्रव्योपेक्षालक्षणाच्छुद्धोपयोगाद्विपरीतः समस्तपरद्रव्येषु शुभमशुभं वा भावं करोति स ज्ञानानन्दैकस्वभावात्मा [illegible] सन् [illegible] परचरित्रचरो भवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ १५६ ॥ अथ परचरित्रपरिणतपुरुषस्य बन्धं दृष्ट्वा मोक्षं निषेधयति । अथवा पूर्वोक्तमेव परसमयस्वरूपं दृढयति [illegible],—आसवदि जेण पुण्णं पावं वा आस्रवति येन पुण्यं पापं वा येन [illegible]। किं । पुण्यं पापं वा । येन येन । भावेन परिणामेन । कस्य भावेन । अप्पणो आत्मनः अथ अहो सो तेण परचरित्तो हवदित्ति जिणा परूवेंति स जीवो [illegible]

है । भावार्थ—जो कोई पुरुष मोहकर्मके विपाकके वशीभूत होनेसे रागरूप परिणामोंसे अशुद्धोपयोगी होता है विकल्पी होकर परमें शुभाशुभ भावोंको करता है सो स्वरूपाचरणसे भ्रष्ट होकर परवस्तुका आचरण करता हुवा परसमयी है ऐसा भगवंत पुरुषोंने कहा है । आगममें प्रसिद्ध है कि आत्मीकभावोंमें शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो स्वसमय है और परद्रव्यमें अशुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होना सो परसमय है । यह [illegible] रसके भावकी पुरुषोंका विलास है ॥ १५६ ॥ आगे जो पुरुष परसमयमें प्रवर्ते है उसके बन्धका कारण है और मोक्षमार्गका निषेध है ऐसा कथन करते हैं—[येन] जिस [भावेन] अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे [आत्मनः] संसारी जीवके [पुण्यं] शुभ [अथ वा] तथा [पापं] अशुभरूप कर्मवर्गणा [आस्रवति] आस्रवण होता है [सः] वह आत्मा [तेन] तिस अशुद्धभावसे [परचरित्रः] परसमयका आचरण करता । [भवति] होता है [इति] ऐसा [जिनाः] [illegible] [प्ररूपयन्ति] कहते हैं । भावार्थ— [illegible]

[illegible]

पाप वा येन भावेनास्रवति यस्य जीवस्य यदि स भावो भवति स जीवस्तदा तेन परच-रित इति प्ररूप्यते । तत परचरितप्रवृत्तिर्बन्धमार्ग एव न मोक्षमार्ग ॥ १५७ ॥

स्वचरितप्रवृत्तस्वरूपाख्यानमेतत् ,—

जो सव्वसंगमुक्को णण्णमणो अप्पणं सहावेण ।
जाणदि पस्सदि णियदं सो सगचरियं चरदि जीवो ॥ १५८ ॥

य सर्वसङ्गमुक्त अनन्यमना आत्मानं स्वभावेन ।
जानाति पश्यति नियत स स्वकचरितं चरति जीव ॥ १५८ ॥

यं खलु निरुपरागोपयोगत्वात्सर्वसङ्गमुक्त, परद्रव्यव्यावृत्तोपयोगत्वादनन्यमना आत्मानं स्वभावेन ज्ञानदर्शनरूपेण जानाति, पश्यति, नियतमवस्थितत्वेन । स खलु

च्युतो भूत्वा त पूर्वोक्त सास्रवभाव करोति तदा स जीवस्तेन भावेन शुद्धात्मानुभूत्याचरणलक्षण-स्वचरित्राद्भ्रष्ट सन् परचरितो भवतीति निता प्ररूपयति । तत स्थित सास्रवभावेन मोक्षो न भवतीति ॥१५७॥ एव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावाच्छुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुभूतिरूपनिश्चय-मोक्षमार्गविलक्षणस्य परसमयस्य विशेषविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वय गत । अथ स्वचरितप्रवृत्त पुरुषस्वरूप विशेषेण कथयति,—"जो" इत्यादि पदखडनारूपेण व्याख्यान क्रियते—**सो** स कर्ता **सगचरियं चरदि** निजशुद्धात्मसवित्त्यनुचरणरूप परमागमभाषया वीतरागपरमसा-मायिकसज्ञ स्वचरित चरति अनुभवति । स क । **जीवो** जीव । कथभूत । **जो सव्वसंगमुक्को** य सर्वसगमुक्त जगत्त्रयकालत्रयेपि मनोवचनकायै कृतकारितानुमतैश्च कृत्वा समस्त-बाह्याभ्यतरपरिग्रहेण मुक्तो रहित शून्योपि निस्सगपरमात्मभावनोत्पन्नसुदरानदस्यदिपरमानदैक-लक्षणसुखसुधारसास्वादेन पूर्णकलशवत्सर्वात्मप्रदेशेषु भरितावस्थ । पुनरपि किंविशिष्ट । **अणण्णमणो** अनन्यमना कपोतलेश्याप्रभृतिदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाक्षादिसमस्तपरभावोत्पन्नवि-

कारण है सो जिन भावोंसे पुण्यरूप वा पापरूप कर्म आकर्षण होते हैं उनका नाम भाव आस्रव है जिस जीवके जिससमय ये अशुद्धोपयोग भाव होते हैं उस काल वह जीव उन अशुद्धोपयोग भावोंसे परद्रव्यका आचरणवाला होता है इस कारण यह बात सिद्ध हुई कि परद्रव्यके आचरणकी प्रवृत्तिरूप परसमय बंधका मार्ग है मोक्षमार्ग नहीं है । यह अर्हद्देवकथित व्याख्यान जानना ॥ १५७ ॥ आगे स्वसमयमें विचरने वाले पुरुषका स्वरूप विशेषतासे दिखाया है,—[य] जो सम्यग्दृष्टी जीव [स्वभावेन] अपने शुद्धभावसे [आत्मानं] शुद्ध जीवको [नियतं] निश्चय करके [जानाति] जानता है और [पश्यति] देखता है [स] वह [जीव.] जीव [सर्वसङ्गमुक्त.] अन्तरंग बहिरंग परिग्रहसे रहित [अनन्यमना सन्]

१ यदा कर्म २ तदा तस्य जीवस्य पुण्यपापमय ३ य खलु पुरुष ।

स्वकं चरति जीवः । यतो हि दृशिज्ञप्तिस्वरूपे पुरुषे तन्मात्रत्वेन वर्तनं स्वचरितमिति ॥ १५८ ॥

शुद्धस्वचरितप्रवृत्तिपथप्रतिपादनमेतत्,—

> चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा ।
> दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो ॥ १५९ ॥
>
> चरितं चरति स्वकं स यः परद्रव्यात्मभावरहितात्मा ।
> दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पं चरत्यात्मनः ॥ १५९ ॥

यो हि योगीन्द्रः समस्तमोहव्यूहबहिर्भूतत्वात्परद्रव्यस्वभावभावरहितात्मा सन्, स्वद्रव्यमेवाभिमुख्येनानुवर्तमानः स्वस्वभावभूतं दर्शनज्ञानविकल्पमप्यात्मनोऽविकल्पत्वेन च

कल्पजालरहितत्वेनात्मना । पुनश्च किं करोति । जाणदि जानाति समस्तरागादिविकल्परहितो पटभते पस्सदि पश्यति निर्विकल्पस्वरूपेणावलोकयति णियद निश्चितं । कं । अप्पणं निजात्मानं । केन कृत्वा । सहजेन निर्विकारचैतन्यचमत्कारप्रकाशेनेति । तत्र स्थित्वा निर्विकल्पज्ञानदर्शनलक्षणे जीवस्वभावे निश्चलावस्थानं मोक्षमार्ग इति ॥ १५८ ॥ अथ तमेव स्वसमयं प्रकारान्तरेण व्यक्तीकरोति,—चरदि चरति । किं । चरियं चरितं । कथंभूतं । सगं स्वकं सो स पुरुषः निरुपरागसदानन्दैकलक्षण निजात्मानुचरणरूपं जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखनिंदाप्रशंसादिसमताभावनानुकूलं स पुरुषः स्वकीयं चरितं चरति । स किंविशिष्टः । जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा यः परद्रव्यात्मभावरहितस्वात्मा पंचेन्द्रियविषयाभिलाषममत्वप्रभृतिनिरवशेषविकल्पजालरहित-स्वात्मा समस्तबहिरंगपरद्रव्येषु ममत्वकारणभूतेषु योगी रागभावं उपादेयबुद्धिं स्वबुद्धिं [illegible]

एकाग्रतासे चित्तके निरोधपूर्वक स्वरूपमें मगन होता हुआ [स्वकचरितं] स्वसमयके आचरणको [चरति] आचरण करता है । भावार्थ—आत्मस्वरूपमें निजगुणपर्यायके निश्चलस्वरूपमें अनुभवन करनेका नाम स्वसमय है और उसका ही नाम स्वचारित्र है ॥ १५८ ॥ आगें शुद्ध स्वचारित्रमें प्रवृत्ति है उसका मार्ग दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष [स्वकं चरितं] अपने आचरणको [चरति] आचरता है [सः] वह पुरुष [आत्मनः] आत्माके [दर्शनज्ञानविकल्पं] दर्शन और ज्ञानके निराकार साकार भेदरूप भेदको [अविकल्पं] भेदरहित [चरति] आचरे है । कैसा है वह भेद विज्ञानी? [परद्रव्यात्मभावरहितात्मा] परद्रव्य भेदभावरहित है स्वरूप जिसका ऐसा है । भावार्थ—जो वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी समस्त मोहजाल रहित है और परभावोंसे [illegible] आत्मामें स्थिर हुआ [illegible] [illegible] आत्मिक जो दर्शन ज्ञानके गुणभेद [illegible]

रति, स खलु स्वकं चरितं चरति । एवं हि शुद्धद्रव्याश्रितमभिन्नसाध्यसाधनभावं निश्चयनयमाश्रित्य मोक्षमार्गप्ररूपणम् ॥ १५९ ॥

यत्तु पूर्वमुद्दिष्टं तत्स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्य प्ररूपितम् । न चैतद्विप्रतिषिद्धं निश्चयव्यवहारयोः साध्यसाधनभावत्वात्सुवर्णसुवर्णपाषाणवत् । अत एवोभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थप्रवर्तनेति ॥

निश्चयमोक्षमार्गसाधनभावेन पूर्वोद्दिष्टव्यवहारमोक्षमार्गनिर्देशोऽयम्,—

धम्मादीसद्दहणं सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं ।
चिट्ठा तवम्हि चरिया ववहारो मोक्खमग्गोत्ति ॥ १६० ॥

ध्येति तया रहित आत्मस्वभावो यस्य स भवति परद्रव्याभावरहितात्मा । पुनरपि किं करोति य । दंसणणाणवियप्पं अवियप्पं चरदि अप्पादो दर्शनज्ञानविकल्पमविकल्पमभिन्नं चरत्यात्मनः सकाशादिति । तथाहि—पूर्वं सविकल्पावस्थायां ज्ञाताहं द्रष्टाहमिति यद्विकल्पद्वयं तन्निर्विकल्पसमाधिकालेऽनन्तज्ञानानन्दादिगुणस्वभावादात्मनः सकाशादभिन्नं चरतीति सूत्रार्थः ॥ १५९ ॥ एवं निर्विकल्पस्वसंवेदनस्वरूपस्य पुनरपि स्वसमयस्यैव विशेषव्याख्यानरूपेण गाथाद्वयं गतं । अथ

जानकर आचरण करे है । ऐसा जो कोई जीव है उसीको स्वसमयका अनुभवी कहा जाता है । वीतरागसर्वज्ञने निश्चयव्यवहारके दो भेदसे मोक्षमार्ग दिखाया है उन दोनोंमें निश्चय नयके अवलंबनसे शुद्धगुणगुणीका आश्रय लेकर अभेदभावरूप साध्यसाधनकी जो प्रवृत्ति है वही निश्चय मोक्षमार्ग प्ररूपणा कही जाती है । और व्यवहारनयाश्रित जो मोक्षमार्गप्ररूपणा है सो पहिले ही दो गाथाओंमें दिखाई गई है वे दो गाथायें "सम्मत्ते"त्यादि हैं—इन गाथाओंमें जो व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप कहा गया है सो स्वद्रव्य परद्रव्यका कारण पाकर जो अशुद्धपर्याय उपजा है उसीके अधीन भिन्न साध्यसाधनरूप है सो यह व्यवहार मोक्षमार्ग सर्वथा निषेधरूप नहीं है कथंचित् महापुरुषोंने ग्रहण किया है निश्चय और व्यवहारमें परस्पर साध्यसाधनभाव है । निश्चय साध्य है व्यवहार साधन है जैसे सोना साध्य है और जिस पाषाणमेंसे सोना निकलता है वह पाषाण साधन है । इस सुवर्णपाषाणवत् व्यवहार है । भाव शुद्धस्वर्णवत् निश्चय है एक अविरुद्ध [illegible] आश्रय है । अनेकान्तवादी ज्ञानी [illegible] इन दोनों निश्चयव्यवहाररूप मार्गोंका ग्रहण करते हैं । क्यों कि इन दोनों नयोंके ही आधीन भगवान् वीतरागदेव प्रणीतकी प्रवृत्ति जानी गई है ॥ १५९ ॥ आगे निश्चय मोक्षमार्गका साधनरूप व्यवहार मोक्षमार्गका स्वरूप दिखाते हैं —[धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं] [illegible]

---

१ पु [illegible]

धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमङ्गपूर्वगतं ।
चेष्टा तपसि चर्या व्यवहारो मोक्षमार्ग इति ॥ १६० ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः । तत्र धर्मादीनां द्रव्यपदार्थविकल्पवतां तत्त्वार्थश्रद्धानभावस्वभावं भावान्तरं श्रद्धानाख्यं सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धाननिर्वृत्तौ सत्यामङ्गपूर्वगतार्थपरिच्छित्तिर्ज्ञानम् । आचारादिसूत्रप्रपञ्चितविचित्रयतिवृत्तसमस्तसमुदयरूपे तपसि चेष्टा चर्या । इत्येषः स्वपरप्रत्ययपर्यायाश्रितं भिन्नसाध्यसाधनभावं व्यवहारनयमाश्रित्यानुगम्यमानो मोक्षमार्गः । कार्तस्वरपाषाणार्पितदीप्तजातवेदोवत्समाहितान्तरङ्गस्य प्रतिपदमुपरितनशुद्धभूमिकासु परमरम्यासु विश्रान्तिमभिन्नां निष्पादयन्, जात्यकार्तस्वर

यद्यपि पूर्वं जीवादिनवपदार्थपीठिकाव्याख्यानप्रस्तावे "सम्मत्त णाणजुदं" इत्यादि व्यवहारमोक्षमार्गो व्याख्यातः तथापि निश्चयमोक्षमार्गस्य साधकोयमिति ज्ञापनार्थं पुनरप्यभिधीयते,—धर्मादिश्रद्धानं सम्यक्त्वं भवति तेषामधिगमो ज्ञानं द्वादशविधे तपसि चेष्टा चारित्रमिति । इतो विस्तरः । वीतरागसर्वज्ञप्रणीतजीवादिपदार्थविषये सम्यक् श्रद्धानं ज्ञानं चेत्युभयं गृहस्थतपोधनयोः समानं चारित्रं तपोधनानामाचारादिचरणग्रन्थविहितमार्गेण प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोग्यं पञ्चमहाव्रतपञ्चसमितित्रिगुप्तिषडावश्यकादिरूपं, गृहस्थानां पुनरुपासकाध्ययनग्रन्थविहितमार्गेण पञ्चमगुणस्थानयोग्यं दानशीलपूजोपवासादिरूपं दार्शनिकव्रतिकाद्येकादशनिलयरूपं वा इति

वा पदार्थोंका श्रद्धान अर्थात् प्रतीति सो सो व्यवहार सम्यक्त्व है [अङ्गपूर्वगत] ग्यारह अंग चौदह पूर्वमें प्रवर्त्तनेवाला जो ज्ञान है सो [ज्ञान] व्यवहाररूप सम्यग्ज्ञान है और [तपसि] बारह प्रकारके तप वा तेरह प्रकारके चारित्रमें [चेष्टा] आचरण करना सो [चर्या] व्यवहाररूप चारित्र है [इति] इस प्रकार [व्यवहार] व्यवहारात्मक [मोक्षमार्ग] मोक्षका मार्ग कहा गया है । भावार्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता सो मोक्षमार्ग है । षट्द्रव्य पञ्चास्तिकाय सप्त तत्त्व नव पदार्थ इनका जो श्रद्धान करना सो सम्यक्त्व वा सम्यग्दर्शन है । द्वादशांगके अर्थका जानना सो सम्यग्ज्ञान है आचारादि ग्रन्थकथित यतिका आचरण सो सम्यक्चरित्र है । यह व्यवहारमोक्षमार्ग जीवपुद्गलके सम्बन्धका कारण पाकर जो पर्याय उत्पन्न हुआ है उसीके आधीन है । और साध्य भिन्न है साधन भिन्न है । साध्य निश्चय मोक्षमार्ग है साधन व्यवहार मोक्षमार्ग है । जैसें स्वर्णमय पाषाणमें दीप्यमान अग्नि जो है सो पाषाण और सोनेको भिन्न २ करती है तैसे ही जीवपुद्गलकी एकताके भेदका कारण व्यवहार मोक्षमार्ग है । जो जीव सम्यग्दर्शनादिकसे अन्तरंगमें सावधान है उस जीवके सब जगह ऊपरिके शुद्ध गुणस्थानोंमें शुद्धस्वरूपकी वृद्धिसे अतिशय मनोज्ञता है उन गुणस्थानोंमें थिरताको धारण करै है ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग है ।

श्चारित्रज्ञानदर्शनरूपत्वाज्जीवस्वभावनियतचरितत्व-लक्षणं निश्चयमोक्षमार्गत्वमात्मनो नितरामुपपन्नमिति ॥ १६२ ॥

सर्वस्यात्मनः संसारिणो मोक्षमार्गार्हत्वनिरासोऽयम्,—

> जेण विजाणदि सव्वं पेच्छदि सो तेण सोक्खमणुहवदि ।
> इदि तं जाणदि भविओ अभव्वसत्तो ण सद्दहदि ॥ १६३ ॥

> येन विजानाति सर्वं पश्यति स तेन सौख्यमनुभवति ।
> इति तज्जानाति भव्योऽभव्यसत्त्वो न श्रद्धत्ते ॥ १६३ ॥

इह हि स्वभावप्रातिकूल्याभावहेतुकं सौख्यं । आत्मनो हि दृशि-ज्ञप्ती स्वभावस्तयोर्विषयप्रतिबन्धः प्रातिकूल्यं । मोक्षे खल्वात्मनः सर्वं विजानतः पश्यतश्च तदभावः ।

निश्चयरत्नत्रयलक्षणं "दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते । स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः ॥" १६२ ॥ इति मोक्षमार्गविवरणमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतं । अथ यस्य स्वाभाविकसुखे श्रद्धानमस्ति स सम्यग्दृष्टिर्भवतीति प्रतिपादयति,—जेण अयं जीवः कर्ता येन लोकालोकप्रकाशककेवलज्ञानेन विजाणदि विशेषेण संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन जानाति परिच्छिनत्ति । किं । सव्वं सर्वं जगत्त्रयकालत्रयवर्ति वस्तुकदम्बकं । न केवलं जानाति । पेच्छदि येनैव लोकालोकप्रकाशककेवलदर्शनेन सत्तावलोकेन पश्यति सो तेण सोक्खमणुभवदि स जीवस्तेनैव केवलज्ञानदर्शनद्वयेनानवरतं ताभ्यामभिन्नं सुखमनुभवति इदि तं जाणदि भवियो इति पूर्वोक्तप्रकारेण तदनन्तसुखं जानात्युपादेयरूपेण श्रद्धाति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेणानुभवति च । स कः । भव्यः अभवियसत्तो ण सद्दहदि अभव्यजीवो न श्रद्द

कर अभेद है इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि चारित्र ज्ञानदर्शनरूप आत्मा है जो यह आत्मा जीवस्वभावमें निश्चल होकर आत्मीकभावको आचरण करै सो निश्चय मोक्षमार्ग सबप्रकार सिद्ध होता है ॥ १६२ ॥ आगें समस्त ही संसारी जीवोंके मोक्षमार्गकी योग्यताका निषेध दिखाते हैं,—[येन] जिस कारणसे [सर्वं] समस्त ज्ञेयमात्र वस्तुको [विजानाति] जानै है [सर्वं] समस्त वस्तुओंको [पश्यति] देखै है अर्थात् ज्ञानदर्शनकर संयुक्त है [सः] वह पुरुष [तेन] तिस कारणसे [सौख्यं] अनाकुल अनंत आत्मसुखको [अनुभवति] अनुभवै है । [इति] इसप्रकार [भव्यः] निकट भव्यजीव [तत्] उस अनाकुल पारमार्थिक सुखको [जानाति] उपादेयरूप श्रद्धान करै है और अपने २ गुणस्थानानुसार जानै भी है । भावार्थ—जो स्वाभाविक भावोंके आवरणके विनाश होनेसे आत्मीक शांतरस उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं । आत्माके स्वभाव ज्ञान दर्शन हैं इनके आवरणसे आत्माको दुःख है जैसे पुरुषके शरीरमें बंधनसे दुःख होता है उसी प्रकार आवरणके होनेसे

ततस्तद्धेतुकस्यानाकुलत्वलक्षणस्य परमार्थसुखस्य मोक्षेऽनुभूतिरचलिताऽस्ति । इत्येवंद्रव्य एव भावतो विजानाति । ततस्स एव मोक्षमार्गार्हः नैतदभव्य श्रद्धत्ते । तत स मोक्षमार्गार्हत्व एव इति ॥ अतः कतिपये एव ससारिणो मोक्षमार्गार्हा न सर्व एवेति ॥१६३॥

दर्शनज्ञानचारित्राणा कथचिद्बन्धहेतुत्वोपदर्शनेन जीवस्वभावे नियतचरितस्य साक्षान्मोक्षहेतुताद्योतनमेतत्,—

दसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोऽत्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहि इद भणिद तेहिं दु बधो व मोक्खो वा ॥ १६४ ॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति सेवितव्यानि ।
साधुभिरिद भणित तैस्तु बन्धो वा मोक्षो वा ॥ १६४ ॥

अमूनि हि दर्शनज्ञानचारित्राणि कियन्मात्रयापि परसमयप्रवृत्त्या मवलितानि कृशानु-

---

धाति । तद्यथा । मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीना यथासभव चारित्रमोहस्य चोपशमक्षयोपशमक्षये सति स्वकीयस्वकीयगुणस्थानानुसारेण यद्यपि हेयबुद्धया विषयसुखमनुभवति भव्यजीव तथापि निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नमतीन्द्रियसुखमेवोपादेय मन्यते न चाभव्य । कस्मादिति चेत् । तस्य पूर्वोक्तदर्शनचारित्रमोहनीयोपशमादिक न सभवति ततश्चैवाभव्य इति भावार्थ ॥ १६३ ॥ एव भव्याभव्यस्वरूपकथनमुख्यत्वेन सप्तमस्थले गाथा गता । अथ दर्शनज्ञानचारित्रैः पराश्रितैर्बन्ध स्वाश्रितैर्मोक्षो भवतीति समर्थयतीति,—**दसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गोत्ति सेविदव्वाणि** दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गो भवतीति हेतो सेवितव्यानि । इद केऽपदिष्ट । साधू

दु ख होता है मोक्षअवस्थामें उस आवरणका अभाव होता है, इसकारण मुक्तजीव सबका देखनेहारा जाननेहारा है और यह बात भी सिद्ध हुई कि निराकुल परमार्थ आत्मीकसुखका अनुभवन मोक्षमें ही निश्चल है और जगहँ नहीं है ऐसा परम भावका श्रद्धान भी भव्य सम्यग्दृष्टी जीवमें ही होता है । इसकारण भव्य ही मोक्षमार्गी होने योग्य है **[अभव्यसत्त्व]** त्रैकालिक आत्मीकभावकी प्रतीति करनेके योग्य नहीं ऐसा जीव आत्मीक सुखको **[न श्रद्धत्ते]** नहीं सरदहै है जानै भी नहीं है । **भावार्थ**—उस आत्मीक सुखका श्रद्धान करनेहारा अभव्य नहीं है क्योंकि मोक्षमार्गके साधनेकी अभव्य मिथ्यादृष्टी योग्यता नहीं रखता । इसकारण यह बात सिद्ध हुई कि केई ससारी भव्यजीव अर्थात् मोक्षमार्गके योग्य हैं केई नहीं भी हैं ॥ १६३ ॥ आगें सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रको किसीप्रकार सरागअवस्थामें आचार्यने बन्धका भी प्रकार दिखाया है इसकारण जीवस्वभावमें निश्चित जो आचरण है उसको मोक्षका कारण दिखाते हैं,—**[दर्शनज्ञानचारित्राणि]** दर्शन ज्ञान और चारित्र ये तीन रत्नत्रय **[मोक्षमार्ग.]** मोक्षमार्ग है **[इति]** इसकारण **[सेवितव्यानि]** सेवने योग्य

अज्ञानात् ज्ञानी यदि मन्यते शुद्धसंप्रयोगात् ।
भवतीति दुःखमोक्षः परसमयरतो भवति जीवः ॥ १६५ ॥

अर्हदादिषु भगवत्सु सिद्धिसाधनीभूतेषु भक्तिबलानुरञ्जिता चित्तवृत्तिरत्र शुद्धसंप्रयोगः । अथ खल्वज्ञानलवावेशाद्यदि यावज्ज्ञानवानपि ततः शुद्धसंप्रयोगान्मोक्षो भवतीत्यभिप्रायेण खिद्यमानस्तत्र प्रवर्तते तदा तावत्सोऽपि रागलवसद्भावात्परसमयरत इत्युपगीयते । अथ न किं पुनर्निरङ्कुशरागकलिकलङ्कितान्तरङ्गवृत्तिरितरो जन इति ॥ १६५ ॥

सूत्रगाथा तस्या विवरणगाथात्रयं ततश्चोपसंहारगाथैका चेति नवमस्थले समुदायपातनिका । अथ सूक्ष्मपरसमयस्वरूपं कथयति,—**अण्णाणादो णाणी जदि मण्णदि** शुद्धात्मपरिच्छित्तिविलक्षणादज्ञानात्मकांशात् ज्ञानी कर्ता यदि मन्यते । किं । **हवदित्ति दुक्खमोक्खो** स्वस्वभावोत्पन्नसुखप्रतिकूलदुःखस्य मोक्षो विनाशो भवतीति । कस्मादिति चेत् । **सुद्धसपयोगादो** शुद्धेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावेषु शुद्धबुद्धैकस्वभावाराधकेषु वार्हदादिषु संप्रयोगो भक्तिः शुद्धसंप्रयोगस्तस्मात् शुद्धसंप्रयोगात् । तदा कथंभूतो भवति । **परसमयरदो हवदि** तदा काले परसमयरतो भवति **जीवो** स पूर्वोक्तो ज्ञानी जीव इति । तद्यथा । कश्चित्पुरुषो निर्विकारशुद्धात्मभावनालक्षणे परमोपेक्षासंयमे स्थातुमीहते तत्राशक्तः सन् कामक्रोधाद्यशुद्धपरिणामवञ्चनार्थं संसारस्थितिछेदनार्थं वा यदा पञ्चपरमेष्ठिषु गुणस्तवनादिभक्तिं करोति तदा सूक्ष्मपरसमयपरिणतः सन् सरागसम्यग्दृष्टिर्भवतीति, यदि पुनः शुद्धात्मभावनासमर्थोऽपि तां त्यक्त्वा शुभोपयोगादेव मोक्षो भवतीत्येकान्तेन मन्यते तदा स्थूलपरसमयपरिणामेनाज्ञानी मिथ्यादृष्टिर्भवति ततः स्थितं अज्ञानेन जीवो नश्यतीति । तथा चोक्तं । 'केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः । केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैश्च नाशिताः' ॥१६५॥

[**अज्ञानात्**] अज्ञानभावसे [**यदि**] जो [**इति**] ऐसा [**मन्यते**] माने कि [**शुद्धसंप्रयोगात्**] शुद्ध जो अरहंतादिक तिनमें लगन भक्ति धर्मरागप्रीतिरूप शुभोपयोगसे [**दुःखमोक्षः**] सांसारिक दुःखसे मुक्ति [**भवति**] होती है [**तदा**] उस समय [**जीवः**] यह आत्मा [**परसमयरतः**] परसमयमें अनुरक्त [**भवति**] होता है । **भावार्थ**—अरहंतादिक जो मोक्षके कारण हैं उन भगवंत परमेष्ठीमें भक्तिरूप राग अंशकर जो रागरूप चित्तकी वृत्ति होय, उसका नाम शुद्धसंप्रयोग कहा जाता है परन्तु भगवान वीतरागदेवकी अनादि वाणीमें इसको भी शुभरागात्मक अज्ञानभाव कहा है इस अज्ञानभावके होने से कितने काल ताईं यद्यपि यह आत्मा ज्ञानवंत भी है तथापि शुद्ध संप्रयोगसे मोक्ष होती है ऐसा पराभावोंसे मुक्त मानके अभिप्रायसे खेद खिन्न हुवा प्रवर्ते है तब कितने काल वह ही राग अंशके अभिप्रायसे परसमयमें रत है ऐसा कहा जाता है और जिस जीवके विषयादिकके राग भावकर कलंकित अन्तरंगवृत्ति होता है, वह तो परसमयरत है ही उसकी तो बात ही क्या है क्योंकि जिस धर्मानुरागमें धर्मराग निषेध है वहां निरर्गल रागका निषेध सहजमें ही

ताया तस्याः प्रसिद्धेन सद्भावेनैर्मल्यशुद्धात्मद्रव्यविश्रान्तिरूपा पारमार्थिकी सिद्धभक्तिमनुबिभ्राणः प्रसिद्धः स्वसमयप्रवृत्तिर्भवति । तेन कारणेन स एव निःशेषितकर्मबन्धः सिद्धिमवाप्नोतीति ॥ १६९ ॥

अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तो साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परम्परया मोक्षहेतुत्वसद्भावद्योतनमेतत्, —

सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स ।
दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपओत्तस्स ॥ १७० ॥

सपदार्थं तीर्थकरमभिगतबुद्धेः सूत्ररोचिनः ।
दूरतरं निर्वाणं संयमतपःसम्प्रयुक्तस्य ॥ १७० ॥

ममो रागाद्युपाधिरहितचैतन्यप्रकाशलक्षणात्मतत्त्वविपरीतमोहोदयोत्पन्नेन ममकाराहंकारादिरूपविकल्पजालेन रहितत्वात् निर्मोहश्च निर्ममः **भविय** भूत्वा **पुणो** पुनः **सिद्धेसु** सिद्धगुणसदृशानंतज्ञानात्मगुणेषु **कुणदु** करोतु । का । **भत्ति** पारमार्थिकस्वसंवित्तिरूपा सिद्धभक्तिं । किं भवति । **तेण** तेन सिद्धभक्तिपरिणामेन शुद्धात्मोपलम्भव्यक्तिरूपं **णिव्वाणं** निर्वाणं **पप्पोदि** प्राप्नोतीति भावार्थः ॥ १६९ ॥ एवं सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानमुख्यत्वेन नवमस्थले गाथापञ्चकं गतं । अथार्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तपुरुषस्य साक्षान्मोक्षहेतुत्वाभावेऽपि परंपरया मोक्षहेतुत्वं द्योतयन् सन् पूर्वोक्तमेव सूक्ष्मपरसमयव्याख्यानं प्रकारान्तरेण कथयति, — **दूरयरं णिव्वाणं**

[च] और **[निर्म्मम]** परद्रव्यमें ममता भावसे रहित **[भूत्वा]** हो करके **[तेन]** उस कारणसे **[निर्वाण]** मोक्षको **[प्राप्नोति]** पाता है । **भावार्थ—** संसारमें इस जीवके जब रागादिक भावोंकी प्रवृत्ति होती है तब अवश्य ही संकल्प विकल्पोंसे चित्तकी भ्रामकता हो जाती है जहां चित्तकी भ्रामकता होती है तहां अवश्यमेव ज्ञानवरणादिक कर्मोंका बंध होता है, इससे मोक्षाभिलाषी पुरुषको चाहिये कि कर्मबन्धका जो मूलकारण संकल्प विकल्परूप चित्तकी भ्रामकता है उसके मूल कारण रागादिक भावोंकी प्रवृत्तिको सर्वथा दूर करै । जब इस आत्माके सर्वथा रागादिककी प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है तब यह ही आत्मा सांसारिक परिग्रहमें रहित हो निर्ममत्वभावको धारण करता है । तत्पश्चात् आत्मीक शुद्धस्वरूप स्वाभाविक निजस्वरूपमें लीन ऐसी परमात्मसिद्धपदमें भक्ति करता है तब उस जीवके स्वसमयकी सिद्धि कही जाती है इस ही कारण जो सर्वथा प्रकार कर्मबन्धसे रहित होता है वही मोक्षपदको प्राप्त होता है जबतक रागभावका अंशमात्र भी होगा तबतक वीतरागभाव प्रगट नहीं होता, इसकारण सर्वथा प्रकारसे रागभाव त्याज्य है ॥ १६९ ॥ आगे अरहन्तादिक परमेष्ठिपदोंमें जो भक्तिरूप परसमय प्रवृत्ति है उससे साक्षात् मोक्षका अभाव है तथापि परंपरायकर मोक्षका कारण है ऐसा कथन करते हैं, — **[सपदार्थं]** नवपदार्थ

य खलु मोक्षार्थमुद्यतमना समुपार्जिताचिन्त्यसंयमतपोभारोऽप्यसंभावितपरमवैराग्य-भूमिकाधिरोहणसमर्थप्रभुशक्तिः पिञ्जनलग्नतूलन्यासन्यायभयेन नवपदार्थैः सहार्हदादिरु

दूरतरं निर्वाणं भवति । कस्य । अभिगदबुद्धिस्स अभिगतबुद्धेः तद्गतबुद्धेः । कं प्रति । सपदत्थ तित्थयरं जीवादिपदार्थसहिततीर्थकरं प्रति । पुनरपि किंविशिष्टस्य । सुत्तरोचिस्स श्रुतरोचिनः आगमरुचेः । पुनरपि कथंभूतस्य । संजमतवसंपउत्तस्स संयमतपःसंप्रयुक्तस्यापीति । इतो विस्तरः । बहिरङ्गेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेन रागाद्युपाधिरहितस्य ख्यातिपूजालाभनिमित्तानेकमनोरथरूपविकल्पजालज्वालावलिरहितत्वेन निर्विकल्पस्य च चित्तस्य निजशुद्धात्मनि संयमार्थं स्थितिकरणात्संयतोऽपि अनशनाद्यनेकविधबाह्यतपश्चरणबलेन समस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणेनाभ्यन्तरतपसा च नित्यानन्दैकात्मस्वभावे प्रतपनाद्विजयनात्तपस्व्यपि यदा विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावान्निरन्तरं तत्र स्थातुं न शक्नोति तदा किं करोति । क्वापि काले शुद्धात्मभावनानुकूलजीवादिपदार्थप्रतिपादकमागमं रोचते कदाचित्पुनर्यथा कोऽपि रामदेवादि पुरुषो देशान्तरस्थसीतादिस्त्रीसमीपादागतानां पुरुषाणां तदर्थं दानसन्मानादिकं करोति तथा मुक्तिश्रीवशीकरणार्थं निर्दोषिपरमात्मनां तीर्थकरपरमदेवानां तथैव गणधरदेवभरतसगररामपाण्डवादि महापुरुषाणां चाशुभरागवञ्चनार्थं शुभधर्मानुरागेण चारितपुराणादिकं शृणोति भेदाभेदरत्नत्रय भावनारतानामाचार्योपाध्यायादीनां गृहस्थावस्थायां च पुनः पूजादिकं करोति च तेन कारणेन यद्यप्यनन्तसंसारस्थितिछेदं करोति कोऽपि चरमदेहस्तद्भवे कर्मक्षयं न करोति तथापि पुण्यास्रव परिणामसहितत्वात्तद्भवे निर्वाणं न लभते भवान्तरे पुनर्देवेन्द्रादिपदं लभते । तत्र विमान परिवारादिविभूतिं तृणवद्गणयन् सन् पञ्चमहाविदेहेषु गत्वा समवसरणे वीतरागसर्वज्ञान् पश्यति निर्दोषिपरमात्माराधकगणधरदेवादीनां च तदनन्तरं विशेषेण दृढधर्मो भूत्वा चतुर्थगुणस्थान

सहित [तीर्थंकर] अरहंतादिक पूज्य परमेष्ठीमें [अभिगतबुद्धेः] रुचि लिये श्रद्धारूप बुद्धि है जिसकी ऐसा जो पुरुष है उसको [निर्वाणं] सकल कर्मरहित मोक्षपद [दूरतरं] अतिशय दूर होता है । कैसा है वह पुरुष जो नव पदार्थ पंच परमेष्ठीमें भक्ति करता है ? [सूत्ररोचिनः] सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत सिद्धान्तका श्रद्धानी है । फिर कैसा है ? [संयमतपःसंप्रयुक्तस्य] इन्द्रियदमन और घोर उपसर्ग रूप तपसे संयुक्त है । भावार्थ —जो पुरुष मोक्षके निमित्त उद्यमी हुआ प्रवर्त्त है और मन संयमाचरण [illegible] संयमतपका भार लिया है अथवा अंगीकार किया है तथा परमवै

[illegible]

स्मात्ररागकलिकलङ्कितसान्तः साक्षान्मोक्षस्यान्तरायीभूतं विषयविषद्रुमामोदमोहितान्तरङ्गः स्वर्गलोकं समासाद्य, सुचिरं रागाङ्गारैः पच्यमानोऽन्तस्ताम्यतीति ॥ १७१ ॥

साक्षान्मोक्षमार्गसारसूचनद्वारेण शास्त्रतात्पर्योपसंहारोऽयम्,—

तह्मा णिव्वुदिकामो राग सवत्थ कुणदि मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भवियो भवसायर तरदि ॥ १७२ ॥

तस्मान्निर्वृतिकामो रागं सर्वत्र करोतु मा किंचित्।
स तेन वीतरागो भव्यो भवसागरं तरति ॥ १७२ ॥

साक्षान्मोक्षमार्गपुरस्सरं हि वीतरागत्वम्। ततः खल्वर्हदादिगतमपि रागं चन्दननगसङ्गतमग्निमिव सुरलोकादिक्लेशप्राप्त्याऽत्यन्तमन्तर्दाहाय कल्पमानमाकलय्य साक्षान्मोक्षकामो महाजनः समस्तविषयमपि रागमुत्सृज्यात्यन्तवीतरागो भूत्वा समुच्छलद्दुःखसौख्यकल्लोलं कर्माग्नितप्तकलकलोदभारप्राग्भारभयङ्करं भवसागरमुत्तीर्य, शुद्धस्वरूपपरमामृतसमुद्रमध्यास्य सद्यो निर्वाति ॥ अलं विस्तरेण। स्वस्ति साक्षान्मोक्षमार्गसारत्वेन

महाव्रतशङ्कनमानभवे पुण्यबन्ध एव भवान्तरे तु परमात्मभावनास्थिरत्वे सति नियमेन मोक्षो भवति तद्विपरीतस्य भवान्तरेऽपि मोक्षनियमो नास्तीति सूत्राभिप्रायः ॥ १७१ ॥ इत्युपरि [illegible] व्याख्यानमुख्यत्वेन दशमस्थले गाथाद्वयं गतं। अथास्य पञ्चास्तिकायप्राभृतशास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति प्रतिपादयति,—तम्हा यस्मादत्र ग्रन्थे मोक्षमार्गविषये वीतरागत्वमेव दर्शितं तस्मात्कारणात् णिव्वुदिकामो निर्वाणाभिलाषी पुरुषः राग सव्वत्थ कुणदु मा किंचि रागं सर्वत्र विषये करोतु मा किंचित् सो तेण वीयरागो स तेन रागपरिहारेण वीतरागः सन् भवियो भव्यजीवः भवसायर तरदि भवसमुद्रं तरति। तथाहि। पञ्चास्तिकायशास्त्रं मोक्षमार्गव्याख्यानविषये निरुपाधिचैतन्यप्रकाशकस्य वीतरागत्वस्य दर्शितं [illegible]

दुःखरूप विषयरूप विषवृक्षकी वासनासे मोहित चित्तवृत्तिको धरता हुआ बहुत कालपर्यन्त सरागभावरूप अंगारसे दह्यमान हुआ बहुत ही खेदखिन्न होता है ॥ १७१ ॥ आगे साक्षात् मोक्षमार्गका सार दिखानेके लिए इस शास्त्रका तात्पर्य संक्षेपसे दिखाते हैं

[तस्मात्] [illegible] [निर्वृतिकामः] [illegible] [सर्वत्र] [illegible] शुभाशुभ अवस्थाओंमें [किञ्चित्] [illegible] [रागं] [illegible] [मा करोतु] [illegible] [तेन] [illegible] [सः] [illegible] [वीतरागः] [illegible] होता भया [भव्यः] [illegible] [भवसागरं] [illegible] [तरति] [illegible] भावार्थ—

शास्त्रतात्पर्यभूताय वीतरागत्वायेति । द्विविधम् किल तात्पर्यं । सूत्रतात्पर्यं शास्त्रतात्पर्यञ्चेति । तत्र सूत्रतात्पर्यं किल प्रतिसूत्रमेव प्रतिपादितम् । शास्त्रतात्पर्यं त्विदं प्रतिपाद्यते । अस्य खलु पारमेश्वरस्य शास्त्रस्य सकलपुरुषार्थसारभूतमोक्षतत्त्वप्रतिपत्तिहेतोः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यस्वरूपप्रतिपादनेनोपदर्शितसमस्तवस्तुस्वभावस्य, नवपदार्थप्रपञ्चसूचनाविष्कृतबन्धमोक्षसम्बन्धिबन्धमोक्षायतनबन्धमोक्षविकल्पस्य, सम्यगावेदितनिश्चयव्यवहाररूपमोक्षमार्गस्य साक्षान्मोक्षकारणभूतपरमवीतरागत्वविश्रान्तसमस्तहृदयस्य परमार्थतो वीतरागत्वमेव तात्पर्यमिति । तदिदं वीतरागत्वम् व्यवहारनिश्चयाविरोधेनैवानुगम्यमानं भवति समीहितसिद्धये न पुनरन्यथा । व्यवहारनयेन भिन्नसाध्यसाधनभावमवलम्ब्यानादिभेदवासितबुद्धय

केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिरूपकार्यसमयसाराभिधानमोक्षाभिलाषी भव्योऽर्हदादिविषयेपि स्वसंवित्तिलक्षणरागं मा करोतु तेन निरुपरागचिज्ज्योतिर्भावेन वीतरागो भूत्वा अजरामरपदस्य विपरीत जातिजरामरणादिरूपविविधजलचरावर्णे वीतरागपरमानन्दैकरूपसुखरसास्वादप्रतिपक्षनारकादिदुःखरूपक्षारनीरपूर्णे रागादिविकल्परहितपरमसमाधिविनाशकपञ्चेन्द्रियविषय

जो साक्षात् मोक्षमार्गका कारण होय सो वीतराग भाव है सो अरहन्तादिकमें जो भक्ति है वा राग है वह स्वर्ग लोकादिकके क्लेशकी प्राप्ति करके अन्तरंगमें अतिशय दाहको उत्पन्न करै है । कैसे हैं ये धर्मराग । जैसें चदनवृक्षमें लगी अग्नि पुरुषको जलाती है यद्यपि चदन शीतल है अग्निके दाहका दूर करनेवाला है, तथापि चदनमें प्रविष्टहुई अग्नि आताप को उपजाती है इसीप्रकार धर्मराग भी कथंचित् दुःखका उत्पादक है इसकारण धर्मराग भी हेय (त्यागने योग्य) जानना । जो कोई मोक्षका अभिलाषी महाजन है सो प्रथम ही विषयरागका त्यागी हो हु अत्यन्त वीतराग होय कर ससारसमुद्रके पार जावहु । जो ससारसमुद्र नानाप्रकारके सुखदुखरूपी कल्लोलोंकेद्वारा आकुल व्याकुल है कर्मरूप वाडवाग्निकर बहुत ही भयको उपजाता अति दुस्तर है ऐसे ससारके पार जाकर परममुक्त अवस्थारूप अमृतसमुद्रमें मग्न होय कर तत्काल ही मोक्षपदको पाते हैं बहुत विस्तार कहांतक किया जाय, जो साक्षात् मोक्षमार्गका प्रधान कारण है समस्त शास्त्रोंका तात्पर्य है ऐसा जो वीतरागभाव सो ही जयवन्त होहु । सिद्धान्तोंमें दो प्रकारका तात्पर्य दिखाया है एक सूत्रतात्पर्य एक शास्त्रतात्पर्य जो परपराय सूत्ररूपसे चला आया होय सो तो सूत्रतात्पर्य है और समस्तशास्त्रोंका तात्पर्य वीतरागभाव है क्योंकि उस जिनेन्द्रप्रणीत शास्त्रकी उत्तमता यह है कि चार पुरुषार्थोंमें मोक्ष पुरुषार्थप्रधान है उस मोक्षकी सिद्धिका कारण एकमात्र वीतरागप्रणीत शास्त्र ही हैं क्योंकि षड्द्रव्य पचास्तिकायके स्वरूपके कथनसे जब यथार्थ वस्तुका स्वभाव दिखाया जाता है तब सहज ही मोक्षनामा पदार्थ सधता है यह सब कथन शास्त्रमें ही है नव पदार्थोंके कथन कर प्रगट किये हैं । बधमोक्षका सम्बन्ध पाकर बधमोक्षके ठिकाने और बधमोक्षके भेद,

सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः। तथाहीदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदमश्रद्धानमिदं ज्ञेयमयं ज्ञातेदं ज्ञानमिदमज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमिदमचरितेदं चरणमिदमचरणमिति कर्तव्याकर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः शनैः शनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः। कदाचिदज्ञानान्मदप्रमादतन्त्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्याय्यपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्डदण्डनीतयः। पुनः पुनर्दोषानुसारेण दत्तप्रायश्चित्ताः सन्ततोद्युक्ताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धानज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमानविमलसलिलाप्लुतविहितोषपरिष्वङ्गमलिनवाससः इव मनाङ्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्नसाध्यसाधनभावाभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहि-

* गतमूर्त्तिरमन्यशुभाशुभविकल्पजालरूपकल्लोलमालाविराजितमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुख प्रतिपक्षभूताकुलत्वोत्पादकत्वात्परागमनन्दु गमस्य ज्ञानलक्षितान्नीपिताभ्यन्तरं च समार स्वानुभूतिलक्षणात्मनाशुद्धात्मभावं प्राप्नोतीति। अत एव पूर्वोक्तप्रकारस्यास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यं ज्ञातव्यं तच्च वीतरागत्वं निश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकरूपेण

स्वरूप सब शास्त्रोंमें ही दिखाये गए हैं और शास्त्रोंमें ही निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग को भले प्रकार दिखाया गया है और जिन शास्त्रोंमें वर्णन कियेहुये मोक्षके कारण जो परम वीतराग भाव हैं, उनसे शान्तचित्त होता है इसकारण उस परमागमका तात्पर्य वीतरागभाव ही जानना सो यह वीतरागभाव व्यवहारनिश्चयनयके अविरोधकर जब भले प्रकार जाना जाता है तब ही प्रगट होता है और वांछित सिद्धिका कारण होता है अन्यप्रकारसे नहीं। आगे निश्चय और व्यवहारनयका अविरोध दिखाते हैं—जो जीव अनादि कालसे लेकर भेदभावकर वासितबुद्धि हैं वे व्यवहार नयावलम्बी होकर भिन्न साध्यसाधनभावको अंगीकार करते हैं तब सुखसे पारगामी होते हैं प्रथम ही जे जीव ज्ञानअवस्थामें रहनेवाले हैं वे तीर्थ कहाते हैं तीर्थसाधनभाव जहां है तीर्थफल शुद्ध सिद्धअवस्था साध्यभाव है तीर्थ क्या है सो दिखाते हैं,—जिन जीवोंके ऐसे विकल्प होंहिं कि यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य है यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य नहीं है, श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है, यह श्रद्धान है, इसका नाम अश्रद्धान है, यह वस्तु जानने योग्य है, यह नहीं जानने योग्य है यह स्वरूप ज्ञाताका है, यह ज्ञान है, यह अज्ञान है, यह आचरने योग्य है यह वस्तु आचरने योग्य नहीं है, यह आचारमयी भाव हैं, यह आचरण करनेवाला है, यह चारित्र है, ऐसे अनेकप्रकारके करने न करनेके कर्ताकर्मके भेद उपजते हैं, उन विकल्पोंके होतेहुए उन पुरुषोंको सुदृष्टिके बढ़नेसे बारबार उन पूर्वोक्त गुणोंके देखनेसे प्रगट उल्लासलिये उत्साह बढ़ै है। जैसें द्वितीयाके चन्द्रमाकी कला बढ़ती जाती है, तैसे ही ज्ञानदर्शनचारित्ररूप अमृतचन्द्रमाकी कलाओंका कर्त्ताकर्मभेदसे अंगोंमे उन जीवोंके वृद्धि होता है। फिर उन ही जीवोंके धीरे धीरे (हौले हौले) मो

सुखेनैवावतरन्ति तीर्थं प्राथमिकाः । तथाहीदं श्रद्धेयमिदमश्रद्धेयमयं श्रद्धातेदं श्रद्धानमिदमश्रद्धानमिदं ज्ञेयमयं ज्ञातेदं ज्ञानमिदमज्ञानमिदं चरणीयमिदमचरणीयमिदमचरितमिदं चरणमिति कर्तव्याकर्तव्यकर्तृकर्मविभागावलोकनोल्लसितपेशलोत्साहाः । शनैः शनैर्मोहमल्लमुन्मूलयन्तः । कदाचिदज्ञानान्मदप्रमादतन्त्रतया शिथिलितात्माधिकारस्यात्मनो न्याय्यपथप्रवर्तनाय प्रयुक्तप्रचण्डदण्डनीतयः । पुनः पुनर्दोषानुसारेण दत्तप्रायश्चित्ताः सन्ततोद्युक्ताः सन्तोऽथ तस्यैवात्मनो भिन्नविषयश्रद्धानज्ञानचारित्रैरधिरोप्यमाणसंस्कारस्य भिन्नसाध्यसाधनभावस्य रजकशिलातलस्फाल्यमानविमलसलिलाप्लुतविहितोपपरिष्वङ्गमलिनवाससः इव मनाग्मनाग्विशुद्धिमधिगम्य निश्चयनयस्य भिन्नसाध्यसाधनभावाभावाद्दर्शनज्ञानचारित्रसमाहि

तत्वरूपविश्रान्तसकलक्रियाकाण्डाडम्बरनिस्तरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूत्रयन्तः क्रमेण समुपजातसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति । अथैवमुक्तप्रकारेणास्य प्राभृतस्य शास्त्रस्य वीतरागत्वमेव तात्पर्यं । तच्च वीतरागत्वं निश्चयव्यवहारनयाभ्यां साध्यसाधकरूपेण

स्वरूप सब शास्त्रोंमें ही दिखाये गये हैं और शास्त्रोंमें ही निश्चय व्यवहाररूप मोक्षमार्ग को भले प्रकार दिखाया गया है और जिन शास्त्रोंमें वर्णन कियेहुये मोक्षके कारण जो परम वीतराग भाव हैं, उनसे शान्तचित्त होता है इसकारण उस परमागमका तात्पर्य वीतरागभाव ही जानना सो यह वीतरागभाव व्यवहारनिश्चयनयके अविरोधकर जब भले प्रकार जाना जाता है तब ही प्रगट होता है और वाञ्छित सिद्धिका कारण होता है अन्यप्रकारसे नहीं । आगे निश्चय और व्यवहारनयका अविरोध दिखाते हैं—जो जीव अनादि कालसे लेकर भेदभावकर वासितबुद्धि हैं वे व्यवहार नयावलम्बी होकर भिन्न साध्यसाधनभावको अंगीकार करते हैं तब सुखसे पारगामी होते हैं प्रथम ही वे जीव अज्ञानअवस्थामें रहनेवाले हैं वे तीर्थ कहाते हैं तीर्थसाधनभाव जहां है तीर्थफल शुद्ध सिद्धअवस्था साध्यभाव है तीर्थ क्या है सो दिखाते हैं—जिन जीवोंके ऐसे विकल्प होंहि कि यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य है यह वस्तु श्रद्धा करने योग्य नहीं है, श्रद्धा करनेवाला पुरुष ऐसा है यह श्रद्धान है इसका नाम अश्रद्धान है यह वस्तु जानने योग्य है यह नहीं जानने योग्य है यह स्वरूप ज्ञाताका है यह ज्ञान है यह अज्ञान है यह आचरने योग्य है यह वस्तु आचरने योग्य नहीं है यह आचारमयी भाव है यह आचरण करनेवाला है यह चारित्र है [illegible] करने न करनेके कर्ताकर्मके भेद उपजते हैं [illegible] वीतराग [illegible] वारवार [illegible] पूर्वोक्त [illegible] । [illegible] द्वितीयादिक [illegible] [illegible] विचाररूप [illegible] [illegible] [illegible]

तत्स्वरूपे विश्रान्तसकलक्रियाकाण्डाडम्बरनिस्तरङ्गपरमचैतन्यशालिनि निर्भरानन्दमालिनि भगवत्यात्मनि विश्रान्तिमासूत्रयन्तः क्रमेण समुपात्तसमरसीभावाः परमवीतरागभावमधिगम्य, साक्षान्मोक्षमनुभवन्तीति। अथ ये तु केवलव्यवहारावलम्बिनस्ते खलु भिन्नसाध्यसाधनभावावलोकनेनाऽनवरतं नितरां खिद्यमाना मुहुर्मुहुर्धर्मादिश्रद्धानरूपाध्यवसायानुस्यूतचेतसः, प्रभूतश्रुतसंस्काराधिरोपितविचित्रविकल्पजालकल्माषितचैतन्यवृत्तयः, समस्तयतिवृत्तसमुदायरूपतपःप्रवृत्तिरूपकर्मकाण्डोड्डमराचलिताः, कदाचित्किंचिद्रोचमानाः, कदाचित्किंचिद्विकल्पयन्तः, कदाचित्किंचिदाचरन्तः, दर्शनाचरणाय कदाचित्प्रशाम्यन्तः, कदाचित्संविजमानाः, कदाचिदनुकम्पमानाः, कदाचिदास्तिक्यमुद्वहन्तः, शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्सामूढदृष्टिताना

परस्परसापेक्षाभ्यामेव भवति मुक्तिसिद्धये नच पुनर्निरपेक्षाभ्यामिति वार्तिकं । तद्यथा । ये केचन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयमोक्षमार्गनिरपेक्षं केवलशुभानुष्ठानरूपं व्यवहारनयमेव मोक्षमार्गं मन्यन्ते तेन तु सुरलोकादिक्लेशपरंपरया संसार

महामलका मूल सत्तासे विनाश होता है। किस ही एक कालमें अज्ञानताके आवशर्वे प्रमादकी आधीनतासे उन्हीं जीवोंके आत्मधर्मकी सिथिलता है, फिर आत्माको न्याय मार्गमें चलानेके लिये आपको प्रचण्ड दंड देते हैं। शास्त्रन्यायसे फिर वे ही जिनमार्गी वारंवार जैसा कुछ रत्नत्रयमें दोष लगा होय उसीप्रकार प्रायश्चित्त करते हैं फिर निरन्तर उद्यमी रहकर अपनी आत्माको जो आत्मस्वरूपसे भिन्नस्वरूप श्रद्धानज्ञानचारित्ररूप व्यवहाररत्नत्रयसे शुद्धता करते हैं जैसें मलीन वस्त्रको धोबी भिन्न साध्यसाधनभावकर सिलाके ऊपरि साबन आदि सामग्रियोंसे उज्वल करता है तैसें ही व्यवहारनयका अवलम्ब पाय भिन्न साध्यसाधनभावके द्वारा गुणस्थान चढनेकी परपाटीके क्रमसे विशुद्धताको प्राप्त होता है। फिर उन ही मोक्षमार्ग साधक जीवोंके निश्चयनयकी मुख्यतासे भेदस्वरूप परअवलंबी व्यवहारमयी भिन्न साध्यसाधनभावका अभाव है इसकारण अपने दर्शन ज्ञानचारित्रस्वरूपविर्षे सावधान होकर अन्तरंग गुप्त अवस्थाको धारण करता है। और जो समस्त वहिरंग योगोंसे उत्पन्न है क्रियाकांडका आडम्बर, तिनसे रहित निरंतर संकल्प विकल्पोंसे रहित परम चैतन्य भावोंके द्वारा सुंदर परिपूर्ण आनंदवन भगवान् परब्रह्म आत्मामें स्थिरताको करै है ऐसे जे पुरुष हैं, वे ही निश्चयावलम्बी जीव हैं व्यवहारनयसे अविरोधी क्रमसे परम समरसीभावके भोक्ता होते हैं तत्पश्चात् परम वीतरागपदको प्राप्त होयकर साक्षात् मोक्षावस्थाके अनुभवी होते हैं। यह तो मोक्षमार्ग दिखाया अब जे एकान्तवादी हैं मोक्षमार्गसे पराङ्मुख हैं उनका स्वरूप दिखाया जाता है —जो जीव केवलमात्र व्यवहारनयका ही अवलंबन करते हैं उन जीवोंके परद्रव्यरूप भिन्न साध्यसाधनभावकी दृष्टि है स्वद्रव्यरूप निश्चयनयात्मक अभेदसाध्यसाधनभाव नहीं

---

१ वैराग्यमानाः ।

णाय कर्मकाण्डे सर्वशक्त्या व्याप्रियमाणा, कर्मचेतनाप्रधानत्वाद्दूरनिवारिताऽशुभकर्मप्रवृत्तयोऽपि समुपात्तशुभकर्मप्रवृत्तय, सकलक्रियाकाण्डाडम्बरोत्तीर्णदर्शनज्ञानचारित्रैक्यपरिणतिरूपा ज्ञानचेतना मनागप्यसम्भावयन्त, प्रभूतपुण्यभारमन्थरितचित्तवृत्तय, सुरलोकादिक्लेशप्राप्तिपरम्परया सुचिर संसारसागरे भ्रमन्तीति । उक्तञ्च— "चरणकरणप्पहाणा, ससमयपरमत्थमुक्कवावारा । चरणकरणस्स सार, णिच्छय सुद्ध ण जाणन्ति" । येऽत्र केवलनिश्चयावलम्बिन सकलक्रियाकर्मकाण्डाडम्बरविरक्तबुद्धयोऽर्धमीलितविलोचनपुटा किमपि स्वबुद्ध्यावलोक्य यथासुखमासते, ते खल्ववधीरितभिन्नसाध्यसाधनभावा अभिन्नसाध्यसाधनभावमलभमाना अन्तराल एव प्रमादकादम्बरीमदभ

रिन मत्तोपि रागादिविकल्परहित परमसमाधिरूप शुद्धात्मानमलभमाना अपि तपोधनाचरणयोग्य षडावश्यकाद्यनुष्ठान श्रावकाचरणयोग्य दानपूजाद्यनुष्ठान च दूषयन्ते तेऽप्युभयभ्रष्टा सतो निश्चयव्यवहारानुष्ठानयोग्यावस्थान्तरमजानन्त पापमेव बध्नन्ति । यदि पुन शुद्धात्मानुष्ठानरूप

तपमें निरन्तर उत्साह करै है प्रायश्चित विनय वैयावृत्त व्युत्सर्ग स्वाध्याय ध्यान इन छह प्रकारके अन्तरग तपकेलिये चित्तको वश करै है वीर्याचारके निमित्त कर्मकाडमें अपनी सवशक्तिसे प्रवर्त्ते है । कर्मचेतनाकी प्रधानतासे सर्वथा निवारी है अशुभकर्मकी प्रवृत्ति जिन्होंने, वे ही शुभकर्मकी प्रवृत्तिको अगीकार करते हैं समस्त क्रियाकाडके आडम्बरसे गर्भित ऐसे जे जीव हैं ते ज्ञानदर्शनचारित्ररूपगर्भित ज्ञानचेतनाको किसही कालमें भी नहीं पाते बहुत पुण्यांचरणके भारसे गर्भित चित्तवृत्तिको धरते हैं ऐसे जे केवल व्यवहारावलम्बी मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्गलोकादिक क्लेशोंकी प्राप्तिकी परंपरायको अनुभव करते हुए परमकलाके अभावमे बहुतकालपर्यन्त ससारमे परिभ्रमण करेंगे । सो कहा भी है

उक्त च—गाथा—

"चरणकरणप्पहाणा ससमयपरमत्थमुक्कवावारा ।
चरणकरणस्स सार णिच्छयसुद्ध ण जाणन्ति" ॥ १ ॥

अर्थात् । जो जीव केवल निश्चयनयके ही अवलम्बी हैं व्यवहाररूप समस्तपरमार्थी क्रियाकर्मकाडको आडम्बर मान व्रतादिकमें विरागी होय रहे हैं अर्द्ध उन्मीलित लोचनसे ऊर्ध्वमुखी होकर स्वच्छन्दवृत्तिको धारण करते हैं कोई २ अपनी बुद्धिसे ऐसा मानते हैं कि हम स्वरूपको अनुभवते हैं ऐसा मानकर सुखरूप प्रवर्ते हैं भिन्न साध्यसाधनभावरूप व्यवहारको तो मानते नहीं, निश्चयरूप अभिन्न साध्यसाधनको भी मैं ... ... नहीं, ... निश्चयको मानते हैं, ते

रालसचेतसो मत्ता इव, मूर्च्छिता इव, सुषुप्ता इव, प्रचुरघृतसितोपलपायसासादितसौहित्या इव, समुल्बणबलसञ्जनितजाड्या इव, दारुणमनोभ्रंशविहितमोहा इव मुद्रितविशिष्टचैतन्या वनस्पतय इव, मौनीन्द्रीं कर्मचेतनां पुण्यबन्धभयेनानवलम्बमाना अनासादितपरमनैष्कर्म्यरूपज्ञानचेतनाविश्रान्तयो व्यक्ताव्यक्तप्रमादतन्त्रा अरमागतकर्मफलचेतनाप्रधानप्रवृत्तयो वनस्पतय इव केवलं पापमेव बध्नन्ति। उक्तम्—"णिच्छयमालम्बन्ता णिच्छयदो णिच्छय अयाणन्ता। णासन्ति चरणकरणं बाहरिचरणालसा केई" ॥ ये तु पुनरपुनर्भवाय नित्यविहितोद्योगमहाभागा भगवन्तो निश्चयव्यवहारयोरन्यतरानवलम्बनेनात्यन्तमध्यस्थीभूताः। शुद्धचैतन्यरूपात्मतत्त्वविश्रान्तिविरचनोन्मुखाः प्रमादोदयानुवृत्तिनिवर्तिकां क्रिया

मोक्षमार्गं तत्साधकं व्यवहारमोक्षमार्गं च मन्यन्ते तर्हि चारित्रमोहोदयात् शक्त्यभावेन शुभाशुभानुष्ठानरहिता अपि यद्यपि शुद्धात्मभावनासापेक्षशुभानुष्ठानरतपुरुषसदृशा न भवन्ति तथापि सरागसम्यक्त्वादिदानव्यवहारसम्यग्दृष्टयो भवन्ति परम्परया मोक्षं च लभन्ते इति निश्चयैकान्त

व्यवहार पदको पाते हैं 'इतोभ्रष्ट उतोभ्रष्ट' होकर बीचमें ही प्रमादरूपी मदिराके प्रभावसे चित्तमें मतवाले हुये मूर्छितसे हो रहे हैं जैसे कोई बहुत घी, मिश्री दुग्ध इत्यादि गरिष्ट वस्तुके पान भोजनसे सुथिर आलसी हो रहे हैं अर्थात् अपनी उत्कृष्ट देहके बलसे जड़ हो रहे हैं महा भयानक भावसे जाना कि मनकी भ्रष्टतासे मोहित विक्षिप्त हो गये हैं चैतन्य भावसे रहित मानो कि वनस्पती ही हैं। मुनिपदवी करनेहारी कर्मचेतनाको पुण्यबंधके भयसे अवलम्बते नहीं, ध्यान और परम निःकर्मदशारूप ज्ञानचेतनाको अंगीकार करी ही नहीं, इसकारण अतिशय चपलभावोंके धारी हैं प्रगट अप्रगटरूप जो प्रमाद हैं उनके आधीन हो रहे हैं। महा अशुद्धोपयोगसे आगामी कालमें कर्मफल चेतनासे प्रधान होते हुये वनस्पतीकी समान जड़ हैं केवल मात्र पापही के बांधनेवाले हैं। सो कहा भी है।

उक्तं च गाथा—

"णिच्छयमालंबंता णिच्छयदो णिच्छय अयाणंता।
णासंति चरणकरण बाहरिचरणालसा केई" ॥ २ ॥

अर्थात्। जो कोई पुरुष मोक्षके निमित्त सदाकाल उद्यमी हो रहे हैं वे महा भाग्यवान हैं निश्चय व्यवहार इन दोनों नयोंमें किसी एकका पक्ष नहीं करते, सर्वथा मध्यस्थ भाव रखते हैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वमें स्थिरता करनेकेलिये सावधान रहते हैं। जब प्रमादभावकी प्रवृत्ति होती है तब उसको दूर करनेकेलिये शास्त्राज्ञानुसार

१ निश्चयमालम्बन्तो निश्चयतो निश्चयं अजानन्तः।
नाशयन्ति चरणकरणं बाह्यचरणालसा केऽपि ॥

काण्डपरिणतिमाहात्म्यान्निवारयन्तोऽत्यन्तमुदासीना यथाशक्त्याऽऽत्मानमात्मनाऽऽत्मनि सचेतयमाना नित्योपयुक्ता निवसन्ति ते खलु स्वतत्त्वविश्रान्त्यनुसारेण क्रमेण कर्माणि संन्यसन्तोऽत्यन्तनिष्प्रमादा नितान्तनिष्कम्पमूर्तयो वनस्पतिभिरूपमीयमाना अपि दूरनिरस्तकर्मफलानुभूतयः कर्मानुभूतिनिरुत्सुकाः केवलज्ञानानुभूतिसमुपजाततात्त्विकानन्दनिर्भरतरास्तरसा संसारसमुद्रमुत्तीर्य शब्दब्रह्मफलस्य शाश्वतस्य भोक्तारो भवन्तीति ॥ १७२ ॥

कर्तुः प्रतिज्ञानिर्व्यूढिसूचिका समापनेयम्,—

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पचोदिदेण मया ।
भणियं पवयणसारं पंचत्थियसंगहं सुत्तं ॥ १७३ ॥

मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन मया ।
भणितं प्रवचनसारं पञ्चास्तिकायसंग्रहं सूत्रं ॥ १७३ ॥

निराकरणमुख्यत्वेन वाक्यद्वयं गतं । ततः स्थितमेतन्निश्चयव्यवहारपरस्परसाध्यसाधकभावेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनैव मोक्षं लभते ॥ १७२ ॥ इति शास्त्रतात्पर्योपसंहारवाक्यं । एवं वाक्यपंचकेन कथितार्थस्य विवरणमुख्यत्वेन एकादशस्थले गाथा गता । अथ श्रीकुंदकुंदाचार्यदेवः स्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन् सन् ग्रंथं समापयति,—पंचास्तिकायसंग्रहं सूत्रं ।

क्रियाकांड परिणतिरूप प्रायश्चित्त करके अत्यन्त उदासीन भाव धारण करते हैं फिर यथा शक्ति आपको आपकेद्वारा आपमें ही वेदें हैं । सदा निजस्वरूपके उपयोगी होते हैं जो ऐसे अनेकान्त वादी साधक अवस्थाके धरनहारे जीव हैं वे अपने तत्त्वकी थिरताके अनुसार क्रमक्रमसे कर्मोंका नाश करते हैं अत्यन्त ही प्रमादसे रहित होते अडोल अवस्थाको धरते हैं । ऐसा जानो कि वनमें वनस्पती हैं दूर कीना है कर्मफल चेतनाका अनुभव जिन्होने ऐसे, तथा कर्म चेतनाकी अनुभूतिमें उत्साह रहित हैं केवल मात्र ज्ञान चेतनाकी अनुभूतिसे आत्मीक सुखसे भरपूर हैं शीघ्र ही संसार समुद्रसे पार होकर समस्त सिद्धांतके मूल शाश्वत पदके भोक्ता होते हैं ॥ १७२ ॥

अब ग्रन्थकर्त्ताने प्रतिज्ञा की थी कि मैं पञ्चास्तिकाय ग्रंथ करूंगा सो उसको संक्षेपमें ही करके समाप्त करते हैं,–[**मया**] मुझ कुन्दकुन्दाचार्यने [**पञ्चास्तिकायसंग्रहं**] कालके बिना पंचास्तिकायरूप जो पांच द्रव्य उनके कथनका संग्रह है जिसमें ऐसा जो यह [**सूत्रं**] शब्द अर्थ गर्भित संक्षेप अक्षर पद वाक्य रचना सो [**भणितं**] पूर्वाचार्योंकी परंपराय शब्दब्रह्मानुसार कहा है । कैसा है यह पञ्चास्तिकाय ग्रंथ ? [**प्रवचनसारं**] द्वादशांगरूप जिनवाणीका रहस्य है कैसा हू मैं ? [**प्रवचनभक्तिप्रचोदितेन**] सिद्धान्त कहनेकी अनुरागकर प्रेरित किया हुवा, किसलिये यह

गुणगम्यात्यन्त कृतकृत्यो भूत्वा परमनैष्कर्म्यरूपे शुद्धस्वरूपे विश्रान्त इति श्रद्धीयते ॥१७३॥

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥ १ ॥

इति श्रीपञ्चास्तिकायव्याख्यायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां नवपदार्थपुरस्सरमोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनात्मकोद्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

समाप्तेयं तत्त्वदीपिका टीका पञ्चास्तिकायस्य ।

...नस्तारानन्तरमाचाराराधनाकथितक्रमेण द्रव्यभावसल्लेखनां करोति तदा सल्लेखनाकाल, सल्ले... एतानन्तरं चतुर्विधाराधनाभावनया समाधिविधिना कालं करोति तदा स उत्तमार्थकालश्चेति । अत्रापि केचन प्रथमकालादावपि चतुर्विधाराधनां लभन्ते षट्कालनियमो नास्ति । अथवा भावार्थं "आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य । आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे" एवं प्रभृत्यागमसारार्थपदानामभेदरत्नत्रयप्रतिपादकानामनुकूलं यत्र व्याख्यानं क्रियते तदध्यात्मशास्त्रं भण्यते तदाश्रिता पञ्चास्तिकायः पूर्वं संक्षेपेण व्याख्याता । वीतरागसर्वज्ञप्रणीत... द्रव्यादिसम्यक्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठानभेदरत्नत्रयस्वरूपं यत्र प्रतिपाद्यते तदागमशास्त्रं भण्यते, तच्चाभेदरत्नत्रयात्मकस्याध्यात्मानुष्ठानस्य बहिरंगसाधनं भवति तदाश्रिता अपि पञ्चास्तिकायाः संक्षेपेण व्याख्याता, विशेषेण पुनरुभयत्रापि षट्कान्व्याख्यानं पूर्वाचार्यकथितक्रमेण यथेष्टं ज्ञातव्यं ॥

इति श्री जयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ प्रथमतस्तावदेकादशोत्तरशतगाथाभिरष्टभिरन्तराधिकारैः पञ्चास्तिकायषड्द्रव्यप्रतिपादकनामा प्रथममहाधिकारः, तदनन्तरं पञ्चाशद्गाथाभिर्दशभिरन्तराधिकारैर्नवपदार्थप्रतिपादकाभिधानो द्वितीयो महाधिकारः, तदनन्तरं विंशतिगाथाभिर्द्वादशस्थलैर्मोक्षस्वरूपमोक्षमार्गप्रतिपादकाभिधानस्तृतीयमहाधिकारश्चेत्यधिकारत्रयसमुदायेनैकाशीत्युत्तरशतगाथाभिः पञ्चास्तिकायप्राभृतः समाप्तः ॥ विक्रमसंवत् १३६९ वैशाखिनसुदि १ भौमदिने ।

समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः पञ्चास्तिकायस्य ।

प्रारंभ किया था सो समर्थ पारको प्राप्त हुए अपनी कृतकृत्य अवस्था मानी, कर्मरहित शुद्धस्वरूपमें थिरभाव किया ऐसा स्वरूप भी श्रद्धा उपजी है ॥ १७३ ॥

इति श्रीपाण्डे हेमराजकृत समयव्याख्याया भाषाटीकायां नवपदार्थपुरस्सर मोक्षमार्गप्रपञ्चवर्णनो नाम द्वितीय श्रुतस्कंध समाप्त ॥ २ ॥

समाप्ता इयं बालावबोधिनी भाषाटीका ।

(...)

॥ समाप्तो ग्रन्थः ।

॥ इति गाथानुक्रमणिका ॥

विज्ञापन ।

विदित हो कि स्वर्गवासी तत्त्वज्ञाता शतावधानी कविवर श्रीरायचन्द्रजीने अतिशय उपयोगी और अलभ्य ऐसे श्रीउमास्वाति (मी) मुनीश्वर, श्रीकुन्दकुन्दाचार्य, श्रीनेमिचन्द्राचार्य, श्रीअकलङ्कस्वामी, श्रीहरिभद्रसूरी, श्रीहेमचन्द्राचार्य आदि महान् आचार्योंके रचेहुए जैनतत्त्वग्रन्थोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करनेकेलिये श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डलकी स्थापना कीथी, जिसके द्वारा उक्त कविराजके चिरकालस्मरणार्थ रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके नामसे अनेक प्राचीन ग्रन्थ प्रगट होकर आजपर्यंत तत्त्वज्ञानाभिलाषी भव्यजीवोंको आनंदित कर रहे हैं ॥

इस शास्त्रमालाकी योजना विज्ञपाठकोंको दिगम्बरीय तथा श्वेताम्बरीय उभयपक्षके ऋषिप्रणीत सर्वसाधारणोपयोगी उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके अभिप्राय विदित होनेकेलिये कीगई है। इसलिये आत्मकल्याणके इच्छुक भव्यजीवोंसे प्रार्थना है कि इस पवित्र शास्त्रमालाके ग्रन्थोंके ग्राहक बनकर अपनी चञ्चललक्ष्मीको अचल करें और तत्त्वज्ञानपूर्ण जैनसिद्धान्तोंका पठन पाठन द्वारा प्रचारकर हमारी इस परमार्थयोजनाके परिश्रमको सफल करें। तथा प्रत्येक सरस्वती-भण्डार, सभा और पाठशालाओंमें इनका संग्रह अवश्य करना चाहिये ॥

इस शास्त्रमालाकी प्रशंसा मुनिमहाराजोंने तथा विद्वानोंने बहुत की है उसको हम स्थानाभावसे लिख नहीं सकते। और यह संस्था किसी स्वार्थकेलिये नहीं है केवल परोपकारके वास्ते है। जो द्रव्य आता है वह इसी शास्त्रमालामें उत्तमग्रन्थोंके उद्धारकेवास्ते लगाया जाता है ॥ इति शम् ॥

रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची।

१ पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषाटीका यह श्रीअमृतचन्द्रस्वामी विरचित प्रसिद्ध शास्त्र है इसमें आचारसंबंधी बडे २ गूढ रहस्य हैं विशेष कर हिंसाका स्वरूप बहुत खूबीकेसाथ दरसाया गया है, यह एक बार छपकर बिकगयाथा इसकारण फिरसे संशोधन कराके दूसरीबार छपाया गया है। न्यौ १ रु

२ पञ्चास्तिकाय संस्कृत भा टी यह श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत मूल और श्रीअमृतचन्द्रसूरीकृत संस्कृतटीकासहित पहले छपा था। अबकी बार इसकी दूसरी आवृत्तिमें एक संस्कृतटीका तात्पर्यवृत्ति नामकी जो कि श्रीजयसेनाचार्यने बनाई है अर्थकी सरलताकेलिये लगादी गई है तथा पहली संस्कृतटीकाके सूक्ष्म अक्षरोंको मोटा करादिया है और गाथासूची व विषयसूची भी देखनेकी सुगमताके लिये लगादी हैं। इसमें जीव, अजीव, धर्म, अधर्म आकाश इन पांच द्रव्योंका तो उत्तम रीतिसे वर्णन है तथा कालद्रव्यका भी संक्षेपसे

किया गया है। इसकी भाषा टीका स्वर्गीय पांडे हेमराजजीकी भाषाटीकाके अनुसार नवीन सरल भाषाटीकामें परिवर्तन कीगई है। इसपर भी न्यौ. २ रु.

३ ज्ञानार्णव भा. टी. इसके कर्ता श्रीशुभचन्द्रस्वामीने ध्यानका वर्णन बहुत ही उत्तम रीतिसे किया है। प्रकरणवश ब्रह्मचर्यव्रतका वर्णन भी बहुत दिखलाया है यह एकबार छपकर बिकगया था अब द्वितीयबार संशोधनकराके छपाया गया है। न्यौ. ४ रु.

४ सप्तभंगीतरंगिणी भा. टी. यह न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है इसमें ग्रंथकर्ता श्रीविमलदासजीने स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सप्तभंगी नयका विवेचन नव्यन्यायकी रीतिसे किया है। स्याद्वादमत क्या है यह जाननेकेलिये यह ग्रंथ अवश्य पढना चाहिये। इसकी पहली आवृत्तिमें की एकभी प्रति नहीं रही अब दूसरी आवृत्ति शीघ्र छपकर प्रकाशित होगी। न्यौ. १ रु.

५ बृहद्द्रव्यसंग्रह संस्कृत भा. टी. श्रीनेमिचन्द्रस्वामीकृत मूल और श्रीब्रह्मदेवजीकृत संस्कृतटीका तथा उसपर उत्तम बनाई गई भाषाटीका सहित है इसमें छह द्रव्योंका स्वरूप अतिस्पष्टरीतिसे दिखाया गया है। न्यौ. २ रु.

६ द्रव्यानुयोगतर्कणा इस ग्रंथमें शास्त्रकार श्रीमद्भोजसागरजीने सुगमतासे मन्दबुद्धिजीवोंको द्रव्यज्ञान होनेकेलिये 'अथ, "गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" इस महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्रके अनुकूल द्रव्य—गुण तथा अन्य पदार्थोंका भी विशेष वर्णन किया है और प्रसंगवश 'स्यादस्ति' आदि सप्तभंगोंका और दिगम्बराचार्यवर्य श्रीदेवसेनस्वामीविरचित नयचक्रके आधारसे नय, उपनय तथा मूलनयोंका भी विस्तारसे वर्णन किया है। न्यौ. २ रु.

७ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र इसका दूसरा नाम तत्त्वार्थाधिगम मोक्षशास्त्र भी है जैनियोंका यह परममान्य और मुख्य ग्रन्थ है इसमें जैनधर्मके संपूर्णसिद्धान्त आचार्यवर्य श्रीउमास्वाति (मी) जीने बडे लाघवसे संग्रह किये हैं। ऐसा कोई भी जैनसिद्धान्त नहीं है जो इसके सूत्रोंमें गर्भित न हो। सिद्धान्तसागरको एक अत्यन्त छोटेसे तत्त्वरूपी घडेमें भरदेना यह कार्य अनुपमसामर्थ्यवाले इसके रचयिताका ही था। तत्त्वार्थके छोटे २ सूत्रोंके अर्थगाम्भीर्यको देखकर विद्वानोंको विस्मित होना पडता है। न्यौ. २ रु.

८ स्याद्वादमञ्जरी संस्कृत भा. टी. इसमें छहों मतोंका विवेचन करके टीकाकर्ताने निर्दुष्ट स्याद्वादमतको पूर्णरूपसे सिद्ध किया है। न्यौ. ४ रु.

९ गोम्मटसार (कर्मकाण्ड) संस्कृत छाया और भाषाटीका सहित। यह ग्रन्थ [illegible] सिद्धान्तचक्रवर्तीका बनाया हुआ है, इसमें [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] है, [illegible] (जीवकाण्ड) [illegible] है। न्यौ. २ रु.

१० प्रवचनसार—श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वप्रदीपिका सं टी , "जो कि मुनिवर्तिटीके कोर्समें दाखिल है" तथा श्रीजयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति सं टी और बालावबोधिनी भाषा टीका इन तीन टीकाओं सहित छपाया गया है इसके मूलकर्ता श्रीकुन्दकुन्दाचार्य है। यह अध्यात्मिक ग्रंथ है। न्यों ३ रु

११ मोक्षमाळा—कर्त्ता मद्दुमशतावधानी कवी श्रीमद्राजचद्र छे आ एक स्याद्वाद तत्वावबोधवृक्षनु बीज छे आ ग्रंथ तत्व पामवानी जिज्ञासा उत्पन्न करीशके एवु एमां कइ अंशे पण दैवत रह्यु छे आ पुस्तक प्रसिद्ध करवानो मुख्य हेतु उछरता बाळ युवानो अविवेकी विधापामी जे आत्मसिद्धीथी भ्रष्ट थाय छे ते अटता अटकावबानो छे आ मोक्षमाळा मोक्षमेळववानां कारण रूप छे आ पुस्तकनी बे बे आवृत्तिओ खलास थइ गइछे अने ग्राहकोनी बहोळी मागणी थी आ त्रीजी आवृति छपानी छे कीमत आना बार

१२ भावनाबोध—आ ग्रथना कर्त्ता पण उक्त महापुरुषज छे वैराग्य ए आ ग्रथनो मुख्यविषय छे पात्रता पामवानु अने कषायमळ दूर करवानु आ ग्रंथ उत्तम साधन छे आत्मगवेषिओने आ ग्रंथ आनंदोल्लास आपनार छे आ ग्रथनी पण बे आवृतिओ खपी जवाथी अने ग्राहकोनी बहोळी मागणी थी आ त्रीनी आवृति छपावी छे कीमत आना चार आ बने ग्रथो गुजराती भाषामां अने बाळबोध टाइपमां छपावेल छे

अपूर्व दो ग्रंथोंका उद्धार।

परमात्मप्रकाश—यह ग्रंथ श्रीयोगीन्द्रदेव रचित प्राकृतदोहाओंमें है इसकी संस्कृतटीका श्रीब्रह्मदेवकृत है तथा भाषाटीका प० दौलतरामजीने की है उसके आधारसे नवीन प्रचलित हिंदीभाषा अन्वयार्थ भावार्थ पृथक् करके बनाइ गइ है। इसतरह दो टीकाओं सहित छपरहा है दिवालीतक तयार होजाइगा। ये अध्यात्मग्रन्थ निश्चयमोक्षमार्गका साधक होनेसे बहुत उपयोगी है।

गोम्मटसार (जीवकांड)—यह पहले मूलमात्र तो छप चुका था और इसका कर्मकांड भी छाया तथा संक्षिप्तभाषाटीका सहित पहले प्रकाशित हो चुका है। अब इसके 'जीवकांड' का भी भाषाटीका सहित छपानेका काय चलरहा है आशा है कि ग्राहकोंकी सेवामें एक वर्षके भीतर तयार होकर पहुच जायगा।

ग्रथोंके मिलनेका पता—

शा रेवाशंकर जगजीवन जौहरी

ऑनरैरी व्यवस्थापक श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडल

जौहरीबाजार खाराकुवा पो० न २ बंबई।